भारतीय अर्थशास्त्र

एस. चन्द् एन्ड कम्पनी
दिल्ली

भूमिका

अर्थशास्त्र का महत्व आधुनिक संसार में कौन नहीं जानता ? संसार के समस्त सभ्य देशों में अर्थशास्त्र का अध्ययन एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अर्थशास्त्र के नियम मनुष्य के जीवन के लगभग समस्त अंगों को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक देश के लिये यह अनिवार्य है कि उसके विद्यार्थी तथा युवक अर्थशास्त्र के नियमों का अध्ययन करके उस देश की परिस्थितियों पर विचार विमर्श करें और उनकी आर्थिक उन्नति में जो बाधाएं हों उनको यथा शक्ति दूर करने का प्रयत्न करें।

"भारतवर्ष एक धनवान् देश है जिसमें निर्धन रहते हैं", की सत्यता को सब मानते हैं। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, परन्तु उनमें प्रमुख यह है कि इस देश के युवकों को अर्थशास्त्र के नियमों की शिक्षा नहीं मिली है। अन्य कठिनाइयों के साथ-साथ विदेशी सरकार ने भारतीयों को भारत के विषय में कुछ जानने ही नहीं दिया। अब स्वतंत्र-भारत में इस शिक्षा का महत्व विशेषतया बढ़ गया है और देश के शिक्षा-विभाग ने ऐसे विषयों के अध्ययन का माध्यम मातृ-भाषा करके बड़ा उल्लेखनीय कार्य किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में विद्यार्थियों के भारतवर्ष की आर्थिक समस्याओं तथा भारतीय परिस्थितियों में अर्थशास्त्र के नियमों का अध्ययन करने का समावेश किया गया है। आशा है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों (जिनके लिये यह विशेषतया लिखी

गई है) के अतिरिक्त उन व्यक्तियों के लिये भी उपयोगी सिद्ध होगी जो भारत की आर्थिक दशा के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं.।

यदि वह उद्देश्य जिससे पुस्तक लिखी गई है पूर्ण हो जाते हैं तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

ग्रंथकार

विषय-सूची

भारतीय अर्थशास्त्र

: १ :

विषय प्रवेश

संसार एक कर्म क्षेत्र है। हम प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी काम में संलग्न पाते हैं। अमुक प्रयत्न को करते समय प्रत्येक व्यक्ति का चाहे जो उद्देश्य रहता हो, किन्तु हमारा अधिकतर समय आर्थिक समस्याओं को सुलझाने और जीविका कमाने में लगता है। जो शास्त्र मनुष्य के जीविका कमाने के उद्देश्य से धन सम्बन्धी कार्यों का अध्ययन करता है उसे हम अर्थशास्त्र कहते हैं। इस शास्त्र के अन्तर्गत धनोत्पत्ति, उसके उपभोग, विनियम और वितरण आदि के विषय आते हैं। यह सब आर्थिक कार्य नियमवद्ध हैं। अर्थशास्त्र के नियम भी वैज्ञानिक नियमों की भाँति कारण और परिणाम का सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इस शास्त्र में हम इस बात का अध्ययन करते हैं कि अमुक आर्थिक समस्या किन २ कारणों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुई

यदि हम निर्धनता की समस्या को ही ले लें तो हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि निर्धनता के क्या २ कारण हैं और अधिक संख्या में लोगों के निर्धन होने से क्या २ आर्थिक समस्यायें उत्पन्न हो जायँगी। यह बात अवश्य है कि अर्थशास्त्र के

अधिकतर नियम विशेष परिस्थितियों में ही अपना पूरा परिणाम दिखाते हैं। किसी देश की सामाजिक दशा वहाँ के प्राकृतिक वातावरण और लोगों के दृष्टिकोण का इन नियमों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। अर्थशास्त्र एक सामाजिक शास्त्र है। इसके नियम मनुष्य से सम्बन्ध रखते हैं। मनुष्य परिवर्तनशील है। भिन्न २ देशों के रहने वालों के रहन-सहन के ढंग, आचार-विचार आदि भिन्न होते हैं। इस कारण अर्थशास्त्र के नियम भिन्न २ परिस्थितियों में कुछ परिवर्तन के पश्चात् लागू होते हैं। इन कारणों वश भारतीय अर्थशास्त्र को एक विशेष शास्त्र मान कर उसका अलग अध्ययन करना आवश्यक है।

भारतीय अर्थशास्त्र से भिन्न २ आशय लिये जाते हैं। इन शब्दों का प्रयोग सर्वप्रथम श्री रानाडे ने १८६२ ई० में अपने एक भाषण में किया था। इसके पश्चात् दादा भाई नोरोजी, श्री आर० सी० दत्त, दीनशौ वाचा और जी० एन० जोशी ने इस पर अधिक प्रकाश डाला और भारतीय अर्थशास्त्र की परिभाषा अधिक स्पष्ट शब्दों में की। इन शब्दों के वास्तविक अर्थ में विभिन्न मत हैं। कुछ अर्थशास्त्रज्ञों के अनुसार भारतीय अर्थशास्त्र का अर्थ भारतीय आर्थिक समस्याओं के दृष्टिकोणों का ऐतिहासिक अध्ययन है। यद्यपि पुरातन भारत के प्रमुख अर्थशास्त्रज्ञों तथा हिन्दू शास्त्रों द्वारा इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण बातें मिलती हैं परन्तु पुरातन काल से वर्तमान काल तक के आर्थिक दृष्टिकोणों के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के श्रोत तथा साधनों का अभाव है। दूसरे मत के अनुसार भारतीय अर्थशास्त्र का आशय भारतवर्ष की विशेष परिस्थिति के आधीन अर्थशास्त्र के नियमों का अन्वेषण तथा विश्लेषण करना है। तीसरे मत के विद्वानों के अनुसार भारतीय अर्थशास्त्र एक सर्वथा प्रथक शास्त्र है जिस में अर्थशास्त्र के साधारण नियम

प्रयुक्त नहीं होते। परन्तु इन शब्दों से यह अर्थ नहीं लिये जाते।

वास्तव में भारतीय अर्थशास्त्र का अर्थ इस बात का अध्ययन है कि भारतवर्ष की विशेष परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए अर्थशास्त्र के नियम किन परिवर्तनों सहित लागू होते हैं। यह भारत की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन है। इस शास्त्र में हम भारत की आर्थिक उलझनों का अन्वेषण करते हैं। हम इस बात की खोज करते हैं कि इस देश के लोगों को किन २ आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और किस प्रकार इन को दूर करके देश की आर्थिक दशा को सुधारा जा सकता है। भारतवर्ष एक ऐसा देश है जो पूरा उन्नतिशील भी नहीं है और न ही उसी पुराने स्तर पर है, परन्तु अब यह परिवर्तन के बीच है। यहां की आर्थिक समस्यायें और देशों की समस्याओं से सर्वथा भिन्न हैं। भारत की सामाजिक संस्थाओं, यहां की छूत-छात, धर्म की भिन्नता और उत्तराधिकारी नियमों का आर्थिक समस्याओं पर बहुत प्रभाव पड़ा है और फल यह है कि जटिलता में समस्याएं बद्ध हो गई हैं। भारत का जलवायु और अन्य प्राकृतिक बातों से भी लोगों का आर्थिक जीवन प्रभावित हुआ है। इस देश की समस्याएं विचित्र हैं। इन समस्याओं का पूर्ण रूप से अध्ययन ही इस शास्त्र का यथार्थ उद्देश्य है।

भारतीय अर्थशास्त्र का अध्ययन प्रत्येक भारतवासी के लिये आवश्यक है। कोई भी मनुष्य पूर्ण रूप से शिक्षित नहीं कहा जा सकता जब तक कि वह अपने देश की आर्थिक समस्याओं को भली भाँति नहीं जानता हो। भारतवर्ष की आर्थिक समस्यायें जटिल हैं। उनके अध्ययन से हमारी मानसिक शक्ति भी बढ़ती है। आजकल जो समस्यायें हमारे समाने हैं उनके

सुलझाने के लिए भारत के अर्थशास्त्र का अध्ययन बहुत आवश्यक है। एक व्यक्ति जो अर्थशास्त्र का ज्ञान नहीं रखता समाचार पत्रों में Inflation, Cross-rate, Dollar shortage आदि शब्दों को पढ़कर चकित रह जाता है। वास्तव में हमने समाज की आर्थिक त्रुटियों को दूर करना है। जब तक हम त्रुटियों तथा उनके कारणों को नहीं समझेंगे, हम देश की दशा को नहीं सुधार सकते । जिस प्रकार एक डाक्टर के लिये बीमार की बीमारी और उसके कारण का जानना आवश्यक है, इसी प्रकार हमें भी देश की आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिए भारतीय अर्थशास्त्र का अध्ययन अवश्य करना चाहिये। दरिद्रता, बेकारी, आदि ने भारत में साम्राज्य जमा रक्खा है । यह भी कहा जाता है कि (India is a rich country inhabited by the poor) भारतवर्ष एक धनवान देश है जिस में निधर्न लोग रहते हैं। भारत कृषि प्रधान देश है किन्तु फिर भी अन्य देशों की अपेक्षा प्रति एकड़ भूमि में यहां कम उपज होती है। सब साधनों के होने पर भी हमारा देश शिल्पकारी में उन्नति नहीं कर पाया है। भारतीय अर्थशास्त्र का अध्ययन इन सब बातों के समझने में हमारी पूरी सहायता करेगा।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक युग में अपने देश के अर्थशास्त्र का अध्ययन प्रत्येक नागरिक के लिये आवश्यक है। हमारी समस्त वर्तमान समस्यायें साधारणतया हमारी आर्थिक स्थिति पर निर्भर हैं। आर्थिक अवस्था का योग्य परिमार्जन हमारी समस्त समस्याओं का निवारण कर देता है। कोई भी भारतीय इस शास्त्र के अध्ययन की उपेक्षा नहीं कर सकता क्योंकि यह विद्या ही हमें सुन्दर जीवन बिताने का मार्ग

बताती है और देश को आर्थिक समृद्धि से युक्त करके उन्नतिशील देश बनाने में सहायक होती है।

भारतीय अर्थ-शास्त्र के अध्ययन की कठिनाइयां

भारतवर्ष में इस विद्या के अध्ययन ने अधिक उन्नति नहीं की। इसके अनेकों कारण है। पुरातन काल में भारतवासी मानसिक विकास तथा आत्मिक शक्ति को अधिक महत्व देते थे और एक सादा जीवन व्यतीत करना अपना मुख्य उद्देश्य समझते थे। इसके अतिरिक्त जन-संख्या का भी उस काल में इतना जोर नहीं था। इस कारण उस समय के लोगों को आर्थिक समस्यायें अनुभव ही नहीं होती थीं।

वर्तमान युग में भी इस विद्या के अध्ययन में कई कठिनाइयां आती हैं। प्रथम शिक्षा का अभाव एक बहुत बड़ी कठिनाई है। हमारे देश के अधिकतर लोग अशिक्षित हैं। इस कारण वह न तो आर्थिक समस्याओं को भली प्रकार समझते ही हैं और ना ही उनका निवारण कर सकते हैं। दूसरी कठिनाई पर्याप्त मात्रा में अंकों (Statistics) का न होना है और इसी प्रकार की आवश्यक सूचना के अभाव के कारण हमारा अध्ययन पूर्ण नहीं हो सकता। इसका तीसरा कारण अब तक विदेशी सरकार थी जो कि भारतवासियों को इस प्रकार की समस्याओं को समझने का अवकाश ही नहीं देती थी। इसके अतिरिक्त शीघ्र परिवर्तन के कारण हमारी आर्थिक समस्यायें अधिक जटिल होती गईं जिनका समझना साधारण व्यक्ति के लिये कठिन हो गया। इसके अध्ययन की पांचवीं कठिनाई नियम पूर्वक तथा स्वतन्त्र अध्ययन का न होना है। इस शास्त्र के अध्ययन पर भी दलबन्दी का प्रभाव पड़ता है। इसकी अन्तिम कठिनाई सरकार की नीति थी क्योंकि विदेशी सरकार

भारत की आर्थिक समस्याओं में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं लेती थी। परन्तु समय के परिवर्तन के साथ-साथ और देशी सरकार की स्थापना के कारण अब आशा की जाती है कि ऊपर लिखी सब कठिनाइयां दूर हो जायंगी और भारतीय अर्थ-शास्त्र का अध्ययन आवश्यक उन्नति करेगा।

प्रकृति और आर्थिक समृद्धि—मनुष्य असंख्य बातों में प्रकृति के आधीन है। किसी देश के प्राकृतिक ढांचे और उसके प्राकृतिक वातावरण का उस देश की आर्थिक उन्नति पर विशेष प्रभाव रहता है। वास्तव में प्रकृति और मानव समाज दोनों पर ही किसी देश की उन्नति और हीनता अवलम्बित होती हैं। देश को सब साधन प्रकृति से प्राप्त होते हैं। उसको उन्नतिशील बनाने और आर्थिक वातावरण को सम्पन्न बनाने के लिये इन सब की आवश्यकता पड़ती है। यदि प्रकृति की ओर से किसी साधन की कमी है तो वह देश अधिक उन्नति नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त यदि मनुष्य प्रकृति के दिये हुए साधनों को अपनी उन्नति के लिए काम में न लाये तो भी देश पिछड़ा हुआ देश ही रहेगा। मनुष्य अपनी मानसिक शक्ति से प्रकृति को अपने आधीन करना चाहता है और नूतन आविष्कारों की सहायता से मनुष्य ने प्रकृति को बहुत कुछ अपने वश में कर भी लिया है। परन्तु मनुष्य पूर्ण रूप से प्रकृति को अपने आधीन नहीं कर सकता। बल्कि मनुष्य और प्रकृति एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। अस्तु किसी देश की भूगोलिक अवस्था उस देश की आर्थिक उन्नति के लिये विशेष महत्व रखती है। प्रकृति किसी देश की आर्थिक उन्नति को सीमित कर देती है। मनुष्य ने अपनी मस्तिष्क शक्ति से पहाड़, वायु, समुद्रादि पर विजय प्राप्त करली है। वह समुद्र को पार कर सकता है, हवा में उड़ सकता है। आधुनिक यातायात के साधनों द्वारा वह

थोड़े समय में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच सकता है। बिजली की शक्ति से उसने रात को दिन में परिवर्तित कर दिया है। सिंचाई के नये साधनों द्वारा उसने वर्षा की कमी को पूरा करके भूमि की उपज को बढ़ाने का प्रयत्न किया है। भूमि को अधिक उपजाऊ बनाने के नये साधन भी ज्ञात कर लिये हैं।

परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी अन्य प्राकृतिक बातों, उदाहरणार्थ किसी देश की स्थिति, समुद्री तट, प्राकृतिक बनावट आदि पर देश की आर्थिक कुशलता बहुत अधिक मात्रा में आश्रित होती है। लोगों के व्यवसाय, वहां की बनसम्पति, यातायात के साधन, लोगों के रहने के ढंग तथा व्यापार आदि उपरोक्त प्राकृतिक बातों द्वारा प्रभावित होते हैं। कभी २ तो प्रकृति मनुष्य को हानि भी पहुँचा देती है। हवाई तूफानों द्वारा बहुधा बहुत हानि होतो रहती है। उत्तरी भागों में स्थित देशों के समुद्री तट शीत में जम जाते हैं और इससे व्यापार को हानि होती है। ओले और नदियों की बाढ़ मनुष्य के किये हुए परिश्रम पर क्षण भर में पानी फेर देते हैं। भूकम्पों द्वारा भी कई देशों में प्रति वर्ष हानियां होती रहती हैं। किसी देश की जलवायु के अनुसार ही देश में अमुक शिल्पकारी उन्नति कर सकती है। सूती कपड़े की मिलें उस स्थान पर स्थापित की जा सकती हैं जहां हवा में पर्याप्त मात्रा में नमी विद्यमान हो। मशीनों को चलाने के लिये सस्ती शक्ति और कच्चे माल का होना भी आवश्यक है। यातायात के साधन सुगम हों और श्रमिक अपने काम में निपुण हों तो देश आसानी से उन्नति करता चला जाता है। भिन्न २ शिल्पकारियां प्राकृतिक वातावरण द्वारा ही निश्चित होती हैं।

भारतवर्ष की आर्थिक अवस्था पर भी भारतवर्ष के भूगोल, जलवायु तथा प्राकृतिक बनावट का विशेष प्रभाव

पड़ा है। हिमालय पर्वत भारतवर्ष के लिये प्रकृति की देन है। गंगा और सिन्ध का मेदान हिमालय पर्वत से निकली हुई नदियों द्वारा लाई गई नरम मिट्टी से उपजाऊ बना है। भारतवर्ष संसार के प्रसिद्ध समुद्री मार्गों पर स्थित है और दूसरे देशों से सुगमता से व्यापार कर सकता है। हमारे देश में सब प्रकार के खनिज पदार्थ मिलते हैं। हिमालय पर्वत के भागों में जल-शक्ति की बहुत उन्नति हो सकती है। कृषि से सब प्रकार के खाद्य पदार्थ तथा शिल्पकारी के लिये कच्चा माल प्राप्त होता है। यातायात के साधन भी अधिकतर भागों में सुगम हैं। इसके विपरीत किनारा कटा फटा न होने के कारण उच्चतम बन्दरगाहें बहुत कम हैं। जलवायु ऊष्ण होने के कारण श्रमिकों की कार्य-क्षमता अपेक्षाकृत कम है। वर्षा मानसून हवावों द्वारा होने के कारण अविश्वासनीय है और इसी कारण देश के किसी न किसी भाग में प्रति वर्ष अकाल पड़ जाता है। भारत सरकार के बजट को भी 'A Gamble in the Mansoon' कहते हैं। अतः भारतवर्ष की कृषि, शिल्प तथा वाणिज्य और धनोत्पादन जो आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं देश की प्राकृतिक अवस्था से बहुत प्रभावित होते हैं।

आर्थिक कुशलता निश्चित करने वाली मुख्य बातें —

किसी देश की आर्थिक अवस्था निम्नलिखित बातों पर अवलम्बित होती है। नीचे दिये गये चित्र से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है :—
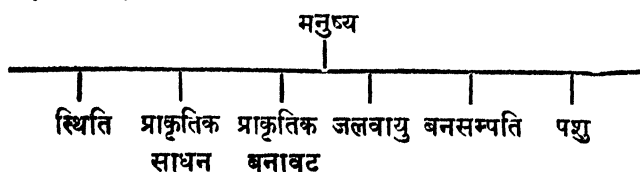
१ **स्थिति**—किसी देश की भूगोलिक स्थिति का आर्थिक समृद्धि से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि कोई देश संसार के प्रसिद्ध मार्गों और संसार के मध्य स्थित है तो वह देश अन्य देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर सकेगा। इस कारण उस देश की आर्थिक अवस्था भी अच्छी होगी। परन्तु संसार के एक कोने में स्थित होने से देश की अधिक उन्नति की सम्भावना नहीं होती। बर्तानिया, जापान, इटली, न्यूफाउण्डलैण्ड की भूगोलिक स्थिति आर्थिक उन्नति के अनुकूल है। यदि किसी देश के पड़ौसी देश शिल्प या अन्य बातों में उन्नतिशील हैं तो इस बात का उस देश की आर्थिक अवस्था पर अच्छा प्रभाव पड़ता है परन्तु पड़ौसी देशों के पिछड़े हुये देश होने की दशा में उस देश की आर्थिक उन्नति की भी कम आशा होती है। इटली की उन्नति का कारण उसके पड़ोसी देशों का उन्नतिशील देश होना था। स्थिति के दृष्टिकोण से यदि हम साइबेरिया, ग्रीनलैण्ड, चिली आदि देशों को देखें तो हमें ज्ञात होगा कि इन देशों की स्थिति आर्थिक उन्नति के लिये अच्छी नहीं हैं।

२. **समुद्री तट**—समुद्री तट अधिक कटा-फटा होने से देश में उत्तम बन्दरगाहें अधिक होंगी और देश नाविक कला में भी उन्नति करेगा। देश के अन्य देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो जायेंगे। किनारा कटा फटा न होने से उसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। बर्तानिया इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उस देश का किनारा कटा-फटा होने के कारण उसने नाविक कला में अद्भुत उन्नति कर ली है।

३. **नदियां**—किसी देश की नदियां भी उस देश की आर्थिक कुशलता में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। संसार में वर्तमान सभ्यता ने प्रसिद्ध नदियों की घाटियों में ही जन्म

WORLD POSITION OF INDIA
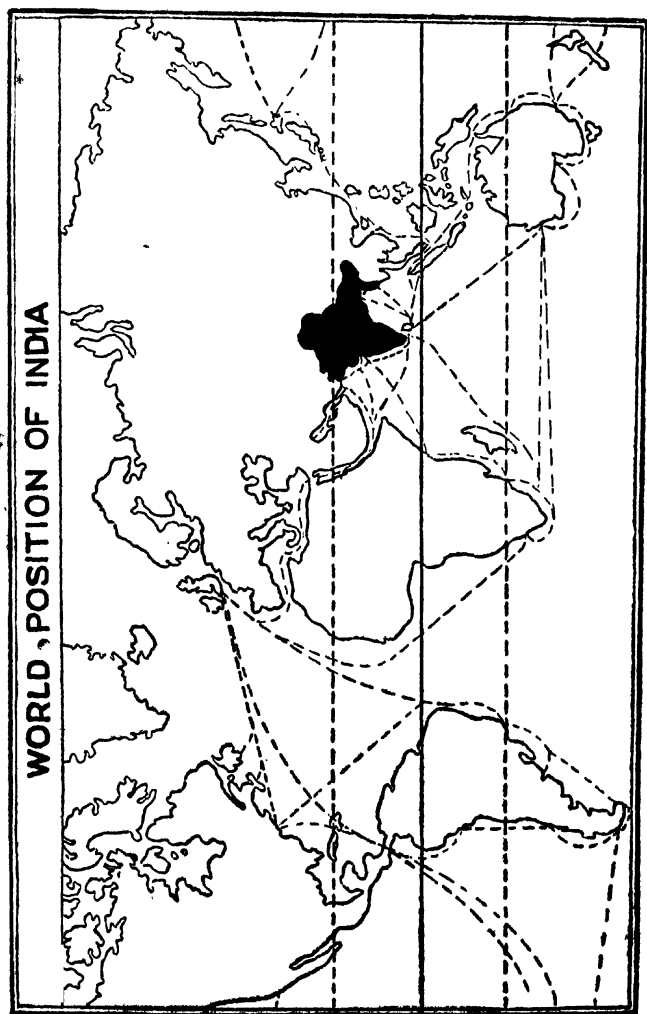
लिया है। इनमें नील नदी, दजला और फ्रात, गङ्गा और सिन्ध तथा ह्वांगहु नदी विशेषकर प्रसिद्ध हैं। नदियों द्वारा माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमता से ले जाया और लाया जा सकता है और इसमें व्यय भी कम होता है। परन्तु यदि नदियों का प्रवाह ठीक सीमा में न हो तो वह लाभदायक नहीं हो सकतीं। केनैडा और रूस की नदियां इस बात का प्रमाण हैं। यदि नदियां जाड़ों में नहीं जमतीं, अधिक गहरी हों ताकि उनमें जहाज़ भी चलाये जा सकें, तो इस प्रकार की नदियां देश के व्यापार की बहुत सहायता कर सकती हैं। इसके विपरीत यदि नदियां तीव्र गामिनी हैं, या जाड़ों में जम जाती हैं तो वह देश के व्यापार को किसी प्रकार सहायता नहीं दे सकतीं। अधिक लाभप्रद सिद्ध होने के लिये यह भी आवश्यक है कि अमुक नदि में वर्ष भर पर्याप्त पानी रहता हो।

४. **प्राकृतिक बनावट** इस पर भी देश की आर्थिक कुशलता बहुत अधिक मात्रा में अवलम्बित होती है। पहाड़ी देश बहुधा कम उन्नतिशील होते हैं क्योंकि मैदानों में जीवन की अधिक सुविधाओं के कारण मनुष्य अधिकतर मैदानों में ही रहना पसन्द करता है। पहाड़ी देशों में यातायात के साधन भी न्यून और कठिन होते हैं और देश की आर्थिक उन्नति में बाधक होते हैं। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों के संसार में बिजली की शक्ति उत्पन्न करके पहड़ी देश भी बहुत उन्नति कर सकते हैं। नारवे, स्वेडन, स्विटजरलैंड और इटली आदि पहाड़ी देश इस बात के जीते जागते प्रमाण हैं।

५. **जलवायु**—जलवायु का देश की आर्थिक समृद्धि से बहुत गहरा सम्बन्ध है। बहुधा जिन देशों का जलवायु या तो ऊष्ण या बहुत शीत है, उनकी संसार के उन्नतिशील

देशों में गणना नहीं होती। समशीतोष्ण जलवायु आर्थिक उन्नति के लिये आदर्श जलवायु है। जलवायु के अनुसार ही भिन्न-भिन्न शिल्पकारियां देश में स्थापित होती हैं। उदाहरणार्थ सूती कपड़े के उद्योग के लिये नम जलवायु, आटे की मिलों के लिये शुष्क जलवायु और फिल्म की शिल्पकारी के लिए मनोरञ्जक तथा साफ (निर्मल) वातावरण आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त उपजाऊ मिट्टी, देश के क्षेत्रफल और विस्तार, धार्मिक बातों, केन्द्रीय सरकार और जनसंख्या आदि से भी उस देश की आर्थिक दशा प्रभावित होती है। यदि किसी देश की भूमि उपजाऊ है, क्षेत्रफल अधिक है, वहां के लोग परिश्रमी तथा बुद्धिमान हैं और पुराने रीति रिवाजों को अधिक महत्त्व नहीं देते, यदि वहां की केन्द्रीय सरकार विदेशी नहीं है तो वह देश उन्नति के मार्ग पर बढ़ता चला जायगा अन्यथा नहीं।

भूगोलिक दृष्टि से यदि हम भारतवर्ष पर दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होगा कि अधिकतर बातें भारतवर्ष की आर्थिक उन्नति के अनुकूल हैं। भारतवर्ष एक विशाल भूखण्ड है। उत्तर में हिमालय अपने गगनचुम्बी शिखरों सहित खड़ा इसको एशिया महाद्वीप के अन्य देशों से पृथक करता है और इसकी रक्षा भी करता है। हिमालय भारतवर्ष में वर्षा बरसाने में भी बहुत सहायता देता है। शेष तीन ओर से हमारा देश समुद्र से घिरा हुआ है। हिन्द महासागर के मध्य में स्थित होने के कारण इस देश को अन्य देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने में बड़ी सुविधा है। उपज के लिये हमारे देश में सब प्रकार की भूमि है और कई प्रकार की जलवायु होने के कारण यहाँ भाँति-भाँति की बनसम्पति पैदा होती है। संसार में संयुक्तराज्य

अमेरिका और चीन को छोड़ कर ऐसा कोई भी देश नहीं है जहां भूमि तथा जलवायु की इतनी अधिक भिन्नता पाई जाती हो। पूर्वीय गोलार्द्ध के मध्य में स्थित होने से इसकी स्थिति योरोप, अफ्रीका, एशिया तथा आस्ट्रेलिया इत्यादि महादेशों से व्यापार करने के लिये बहुत अच्छी है।

भारतवर्ष प्राकृतिक पदार्थों की खान है। हमारे देश की अधिकतर भूमि बहुत उपजाऊ है। देश में खनिज पदार्थों की कोई कमी नहीं यद्यपि यह खनिज पदार्थ देश के भिन्न २ भागों में उचित मात्रा में नहीं पाये जाते। हमारे देश के घने बन, पशु, भेड़-बकरी आदि, मछलियां और अन्य आर्थिक साधन देश की सम्पत्ति हैं। इन सब साधनों का सदुपयोग देश के लोगों को समृद्धिशाली बना सकता है। पुराने समय में हमारे देश ने बहुत उन्नति कर ली थी। साहित्य, विज्ञान कला, व्यापार आदि सभी बातों में भारतवासी किसी से पीछे न थे बल्कि अनेक बातों में यह देश संसार के सब देशों से आगे था। इस की सभ्यता बहुत बढ़ी चढ़ी थी। जिस समय सारा संसार अज्ञानता के अन्धकार में पड़ा हुआ था उस समय भी हमारा देश उन्नति के शिखर पर था। यहां के व्यापारी सारे सभ्य संसार से व्यापार करते थे और दूर-दूर देशों की यात्राएं करते थे। सारे संसार का सोना बह कर हमारे देश में इकट्ठा होता रहता था और इसी कारण संसार के अन्य देशों के लोग भारतवर्ष को सोने की चिड़िया कह कर पुकारते थे। परन्तु विदेशी राज और प्राकृतिक साधनों का सदुपयोग न होने के कारण देश अवनति की ओर बढ़ता गया और आज हम देखते हैं कि हमारे देश की दशा आर्थिक दृष्टि से बहुत हीन है।

यद्यपि भारतवर्ष के कुछ भागों का जलवायु ऊष्ण है, यहाँ प्राकृतिक बन्दरगाहें भी बहुत कम हैं और हमारे देशवासी

समय के साथ २ स्वयं नहीं बदलते, पुराने रीति रिवाजों को बहुत महत्त्व देते हैं, फिर भी यह बात सत्यता के आधार पर कही जा सकती है कि भारतवर्ष आर्थिक उन्नति के सब साधनों से सम्पन्न है। उपरोक्त बातें ऐसी रुकावटें हैं जिन्हें प्रयत्न करने पर दूर किया जा सकता है और देश को एक उन्नतिशील देश बनाया जा सकता है। वर्तमान परिस्थिति में पूर्ण आशा है कि भारतवर्ष शीघ्र ही महत्त्वपूर्ण आर्थिक उन्नति करेगा और संसार के समृद्धिशाली देशों में एक माननीय स्थान प्राप्त करेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१. भारतीय-अर्थशास्त्र का क्या अर्थ है ? इस के अध्ययन की भारतवासियों को क्यों आवश्यकता है ?

What is meant by Indian Economics ? Why is the study of this subject important for Indian people ?

२. भारतीय-अर्थशास्त्र के अध्ययन की कठिनाइयों को स्पष्ट रूप से समझाइये। अब यह कठिनाइयां क्यों और किस प्रकार कम हो गई हैं ?

Explain the difficulties that are experienced in the study of Indian Economics. Why and how have these difficulties lessened now ?

३. समुद्री यातायात, स्थली यातायात की अपेक्षा क्यों सुगम तथा कम व्यय वाला है ?

Why is water transport easier and cheaper than land transport ?

४. "मनुष्य और प्रकृति दोनों पर ही किसी देश की आर्थिक

कुशलता अवलम्बित होती है"। उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।

'Man and Nature both determine the economic prosperity of a country." Explain with suitable examples.

५. किसी देश की आर्थिक अवस्था पर किन २ मुख्य बातों का प्रभाव पड़ता है? भारतवर्ष का उदाहरण देते हुए इसे समझाइये।

What important factors influence the economic condition of a country ? Explain with special reference to India.

६ "\ ^ सच्चा और उपयोगी नागरिक बनने के लिये भारतीय-अर्थ शास्त्र का अध्ययन अनिवार्य है।" पूर्ण रूप से समझाइये।

"The study of Indian Economics is indispensable forturning out true and useful citizens" Explain fully.

७. किसी देश की नदियों का वहाँ की आर्थिक समृद्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है?

What part do the rivers of a country play in the economic well-being of a country ?

: २ :

प्राकृतिक बनावट तथा पदार्थ

विस्तार तथा क्षेत्रफल–देश के पाकिस्तान और हिंद-यूनियन दो भागों में विभाजित होने के पश्चात् हमारे देश का क्षेत्रफल लगभग १२ लाख ४० हज़ार वर्गमील रह गया है। इसमें से लगभग ५ लाख ८८ हज़ार वर्गमील क्षेत्रफल भारतवर्ष की रियासतों का है। यह क्षेत्रफल सारे क्षेत्रफल का लगभग ४८ प्रतिशत है। इस समय कुछ रियासतें तो प्रान्तों में मिला दी गई हैं और अधिकतर रियासतों के सात संयुक्त राज्य बना दिये गये हैं। वर्तमान परिस्थिति में भारतवर्ष का क्षेत्रफल रूस को छोड़ कर शेष योरप के बराबर, एशिया महाद्वीप का $\frac{२}{९}$ भाग और ब्रिटिश द्वीप समूह (British Isles) से ग्यारह गुना है। अंडमन और निकोबार द्वीप समूह भी भारत साम्राज्य में गिने जाते हैं। यह देश बहुत विशाल देश है। यह पूर्व से पश्चिम को २००० मील की लम्बाई में फैला हुआ है। उत्तर से दक्षिण को भी इसका विस्तार लगभग २००० मील ही है। हमारे देश का समुद्री तट २५०० मील है। विभाजन के पश्चात् विभाजन से पूर्व के संयुक्त भारत का $\frac{३}{४}$ भाग भारत में आ गया है। उत्तर से दक्षिण को यह देश ३७° और ६° उत्तरी अंक्षास के मध्य स्थित है। पश्चिम से पर्व को ६७° पर्वी देशान्तर और

INDIA
AFTER AUGUST 15 1947
KASHMIR & JAMMU
HIMACHAL PRADESH
TEHRI
EAST
PEPSU
PUNJAB
RAMPUR
PAKISTAN
KARACHI
MAHA RAJASTHAN
JAIPUR
AJMER MERWARA
UNITED PROVINCES
BHARAT
MADHYA
BHOPAL
INDORE
VINDHYA PRADESH
CENTRAL PROVINCES
BERAR
BIHAR
ORISSA
SIKKAM
BHUTAN
ASSAM
E PAKISTAN
W BENGAL
CALCUTTA
CUTCH
SAURASHTRA
BOMBAY
HYDERABAD
BASTAR
KOHLA PUR
GOA
BAGANPALLE
MYSORE
COORG
MADRAS
PONDICHERRY
PUDUKKOTAI
TEKKU
KERALA
STATES INTEGRATED INTO UNIONS
STATES INTEGRATED INTO A CENTRALLY ADMINISTERED UNIT
STATES MERGED INTO PROVINCES
STATES AT PRESENT REMAINING AS SEPARATE UNITS

४६° पूर्वी देशान्तर तक फैला हुआ है। हमारे देश का अधिकतर भाग उष्ण कटिबन्ध में स्थित है। कर्क रेखा इस देश के मध्य से होकर जाती है।

प्राकृतिक भाग—भारतवर्ष की भूगोलिक अवस्था को यदि हम देखें तो देश को चार प्राकृतिक विभागों में बाँट सकते हैं। (१) उत्तरी पर्वतीय श्रंखला (२) गङ्गा-सिंध का मैदान (३) दक्षिण का पठार (४) तटीय मैदान।

(१) उत्तरी पर्वतीय शृङ्खला—इस भाग में हिमालय पर्वत फैला हुआ है जो पामीर के पठार से आरम्भ होता है। यह पर्वत भारतवर्ष के उत्तर में लगभग १५०० मील तक फैला हुआ है। पूर्व में आसाम की पहाड़ियां और पश्चिम में हिंदुकुश महापर्वत और सुलेमान पर्वत इसके दायें और बायें बाजू का काम करते हैं। इन पहाड़ों की चौड़ाई लगभग १५० मील और २५० मील के बीच है। यह पहाड़ तीन लगातार और समानान्तर शृङ्खलाओं में भारतवर्ष के उत्तर में फैले हुए हैं। हिमालय पर्वत दुनिया के सबसे ऊँचे पर्वतों में से है। इस पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी माउन्ट एवरैस्ट २६१४१ फीट ऊँची है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में इस जगह एक समुद्र था। इस बात का प्रमाण इस बात से मिलता है कि हिमालय पर्वत पर १६००० फीट की ऊँचाई तक भी समुद्रीय जानवरों के चिह्न मिलते हैं। तिब्बत का तीन मील ऊँचा पठार और हिमालय पर्वत पृथ्वी के अन्दर के भाग के सुकड़ जाने से बन गए हैं। उत्तरीय भारत-वर्ष की लगभग सब नदियों का निकास हिमालय पर्वत ही है। हिमालय पर्वत में लगभग १४० से अधिक ऐसी चोटियां हैं जो यूरोप की सबसे ऊँची चोटी Mount Blank से अधिक ऊँची हैं। ऊँची २ चोटियों के मध्य में बड़े २ बर्फ के तोदे (Glac-

ier) मिलते हैं और कहीं २ तेज बहने वाली नदियां हैं जिन पर पुल नहीं होते। बैंत के बने हुए पुलों के द्वारा इन्हें पार किया जाता है। वहीं २ दो पहाड़ियों के मध्य मैदानी भाग है जिसे **दून** कहते हैं। कहा जाता है कि हिमालय पर्वत की ४० से अधिक चोटियां २४००० फीट से अधिक ऊँची हैं। इस पहाड़ की ऊँची २ चोटियां बर्फ से ढकी रहती हैं। यह पर्वत भारतवर्ष के लिए दीवार का काम देता है। इसके पश्चिमी भाग में कुछ दर्रे पाये जाते हैं। उदाहरण के लिये दर्रा खैबर, दर्रा गोमल, टोची और बोलान। इन्हीं दर्रों में से होकर विशेष रूप से दर्रा खैबर के द्वारा विदेशी लोग भारतवर्ष में आए। यह पर्वत जंगलों से ढके हुए हैं। आने जाने के लिये अत्यन्त कठिन हैं। जनसंख्या बहुत कम है। कुछ भागों में लोग भेड़ बकरियाँ पाल कर जीवन व्यतीत करते हैं।

(२) गंगा सिन्ध का मैदान—यह मैदान भी हिमालय पर्वत और दक्षिणी पठार के मध्य में पश्चिम से पूर्व तक फैला हुआ है। यह हिमालय पर्वत से निकलने वाली नदियों की लाई हुई चिकनी मिट्टी से बना है और अत्यन्त उपजाऊ है। इसलिए यह भाग अधिक आबाद है। भारतवर्ष की कुल जन-संख्या की लगभग ⅔ जन संख्या इसी भाग में रहती है। यह मैदान भी लगभग १५०० मील लम्बा है। इसकी औसत चौड़ाई १५० और २०० मील के मध्य में है। इसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने में कहीं भी कोई ऊंचा भाग नहीं दीखता। इस मैदान की नदियां धीमी अवस्था में है इसलिये अपने साथ लाई हुई उपजाऊ मिट्टी को वह इसी मैदान पर बिछा देती हैं। मध्य पठार की नदियां भी इस भाग को उपजाऊ बनाने में बहुत सहायता देती हैं। इस मैदान के विशेषकर दो भाग हैं। (१)

सिन्ध का मैदान (२) गंगा का मैदान। सिन्ध के मैदान का ढलान दक्षिण पश्चिम को है और गंगा के मैदान का ढलान दक्षिण पूर्व को है। इस मैदान की उपजाऊ मिट्टी कहीं २ पर १००० फीट की गहराई तक पाई जाती है। इस मैदान का पश्चिमी भाग शुष्क है। ज्यों २ हम पश्चिम से पूर्व को पंजाब, यू० पी०, बंगाल, की ओर जाते हैं तो गेहूं, गन्ना, बांस, पाम और केले के पेड़ दिखाई देते हैं। इस मैदान का पूर्वी भाग चाय की खेती बाड़ी और व्यापार का घर है। इसी मैदान का पूर्वी भाग अधिक हरा भरा और सुन्दर है। इस भाग में वर्षा भी अधिक होती है।

भारतवर्ष में खेती से जो विशेष उपज होती है वह इसी मैदान में पाई जाती है। इसी मैदान में कृषि की शिल्पकारी उन्नति पर है, और भिन्न २ शिल्पकारियों के लिये कच्चा माल तैयार करती है। मिट्टी नरम और मैदानी भाग होने के कारण सिंचाई सरलता से हो सकती है। इस मैदान के धन ने ही विदेशी लोगों को आक्रमण करने पर उकसाया था। यह मैदान भारतवर्ष की पुरानी सभ्यता का जन्म-स्थान है। जीविका आसानी से कमाई जा सकती है। इसलिये लोगों को अधिक आराम मिलता है और वह विद्या और विज्ञान की उन्नति के लिये अधिक समय दे सकते हैं। यह मैदान दुनिया के सब से उपजाऊ मैदानों में गिना जाता है। हिमालय पर्वत एक दीवार की भाँति इस से बिलकुल अलग दिखाई पड़ता है। परन्तु दक्षिणी पठार से यह इस प्रकार मिल गया है कि पता नहीं चलता कि किस जगह पठार और मैदान दोनों मिलते हैं। भारतवर्ष के सब से अधिक बड़े २ शहर इसी मैदान में पाए जाते हैं। विभाजन के पश्चात् सिन्ध नदी के मैदान का अधिकतर भाग पाकिस्तान में चला गया है।

(३) **दक्षिण का पठार**—यह पठार सब से पुराना पठार है। प्राचीन काल में इसी पठार के द्वारा भारतवर्ष अफ्रीका से मिला हुआ था। इसकी औसत ऊँचाई २००० फीट है। इसके दो विशेष भाग हैं। (१) पश्चिमी घाट (२) पूर्वी घाट। पश्चिमी घाट की शृङ्खलायें तट के बराबर २ गई हैं और उनकी औसत ऊँचाई ४००० फीट है। परन्तु पूर्वी घाट में कई जगह कटाव पाए जाते हैं। पूर्वी घाट की औसत ऊँचाई लगभग १००० फीट है। वास्तव में पश्चिमी घाट और पूर्वी घाट पश्चिम से पूर्व को एक खपरैल की छत की भाँति दिखाई पड़ते हैं। इस पठार की मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं है। वर्षा २५″ के लगभग होती है। इसलिए उपज अधिक नहीं होती, और बड़े २ नगर भी कम पाये जाते हैं। इसकी नदियां तीव्रगामिनी हैं और गर्मियों में शुष्क हो जाती हैं।

(४) **तट के मैदान**—पश्चिमी तथा पूर्वी घाटों के मध्य यह दोनों मैदान हैं। पश्चिमी घाट के मध्य का तटीय मैदान कम चौड़ा है। इसकी अधिक से अधिक चौड़ाई ४० मील है। किन्तु पूर्वी घाट के मध्य का तटीय मैदान इससे अधिक चौड़ा है। कहीं कहीं तो इस मैदान की चौड़ाई १५० मील तक हो जाती है। पूर्वी घाट के मैदान को कारूमण्डल कहते हैं, और पश्चिमी तटीय मैदान को मालाबार और कौनकन कहते हैं। पश्चिमी तटीय मैदान में वर्षा ८०″ से भी अधिक होती है। किन्तु पूर्वी तटीय मैदान में वर्षा बहुत कम होती है। इस भाग में कुछ वर्षा, विशेष कर मद्रास में, जाड़ों में होती है। पश्चिमी तटीय मैदान में विशेषकर नारियल के पेड़ उत्पन्न होते हैं। पूर्वी तटीय मैदान में मूंगफली, चावल, गन्ना आदि उत्पन्न होते हैं।

हिमालय पर्वत से लाभ

हिमालय पर्वत भारतवर्ष के लिए प्रकृति की देने है। वास्तव में प्राकृतिक बनावट के अनुसार हिमालय पर्वत तिब्बत के पठार का ही दक्षिणी भाग है और थाली के किनारे की भांति दक्षिणी सीमा बनाता है। परन्तु हिमालय पर्वत से जो भी अधिक से अधिक लाभ हो सकते हैं वह भारतर्ष को प्राप्त हैं और इससे जो हानियां हो सकती हैं वे तिब्बत के पठार को मिली हैं। इस लिए भूगोल में हिमालय पर्वत भारतवर्ष का ही एक विशेष भाग समझा जाता है। हिमालय पर्वत से भारतवर्ष को निम्न-लिखित लाभ हैं:—

(१) यह उत्तर में एक प्राकृतिक रुकावट का काम करता है और देश को आक्रमणकारियों से बचाता है।

(२) यह खाड़ी बंगाल और अरब सागर से आने वाली मौनसून पवनों को रोक कर वर्षा करता है।

(३) यह उत्तर से आने वाली बहुत ठण्डी पवनों के प्रभाव से भारतवर्ष को बचाता है।

(४) इस पर्वत से उत्तरी भारतवर्ष की लगभग सारी नदियां निकलती हैं जिनमें वर्ष भर पानी रहता है जो अपने साथ चिकनी मिट्टी लाकर गङ्गा तथा सिन्ध के मैदान में फैला देती हैं। और जो इस देश के सब से ऊपजाऊ मैंदान की सिंचाई भी करती हैं।

(५) हिमालय पर्वत के द्वारा हज़ारों मनुष्यों की जीविका चलती है।

(६) बहुत सी शिल्पकारियों के लिए कच्चा माल हिमालय पर्वत से मिलता है।

(७) इस पर्वत में बहुत से स्वास्थ्यदायक स्थान भी हैं।

(८) जड़ी बूटियां, इमारती लड़की, जलाने की लड़की, भिन्न-भिन्न प्रकार की धातें भी इस पर्वत से मिलती हैं ।

यह पर्वत जल से उत्पन्न की जाने वाली बिजली की शक्ति का एक बहुमूल्य खज़ाना है जो देश की उन्नति में हर प्रकार सहायता कर सकता है ।

इसके अतिरिक्त इस पर्वत से केवल यह हानि हुई कि भारतवर्ष चीन आदि देशों से अधिक मेल जोल स्थापित नहीं कर सका और यहां के निवासियों की सभ्यता एक प्रकार सीमित हो गई। फिर भी सत्य है यदि हिमालय पर्वत न होता तो भारतवर्ष एक हुत बड़ा मरुस्थल होता।

भूमि और मिट्टी

भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टी पाई जाती है। इनमें अलग-अलग फसलें पैदा होती हैं। भारतवर्ष में निम्न लिखित प्रकार की मिट्टी तथा भूमि पाई जाती है:—

१. नदी की लाई हुई दोमट मिट्टी (Alluvial Soil) यह मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है और बहुत गहराई तक पाई जाती है। यह पानी को सोखने तथा नमी को बनाये रखने की शक्ति रखती है। इस में साढ़ी और सावनी दोनों फसलें बोई जाती हैं। यह मिट्टी विशेष कर गुजरात, राजपूताना यू. पी. पंजाब, मध्य देश, बंगाल, आसाम तथा मद्रास के कुछ भागों में पाई जाती है।

२. पहाड़ी मिट्टी—(Laterite) यह मिट्टी अधिक ऊपजाऊ नहीं होती। यह लोहे और भिन्न-भिन्न धातुओं के सड़ने से बनती है । इस में बहुत कम खेती हो सकती है यह

मध्य भारत, आसाम तथा पश्चिमी और पूर्वी घाट के भागों में पाई जाती है।

३. **लाल मिट्टी** (Red Soil)—इस मिट्टी की गहराई और स्थल सब जगह बराबर नहीं होते और यह अधिक ऊपर भी नहीं होती परन्तु जहां यह मिट्टी पाई जाती है, उन भागों में नहरों की सहायता से चावल की उपज अधिक हो सकती है। यह मिट्टी मद्रास, मैसूर, बम्बई प्रान्त के दक्षिणी पूर्वी भाग, पूर्वी हैदराबाद, सी. पी. और दक्षिणी बङ्गाल में पाई जाती है।

४. **काली मिट्टी** (Black Cotton Soil)—यह मिट्टी विशेष कर रुई की ऊपज के लिए बहुत लाभदायक है। यह मिट्टी
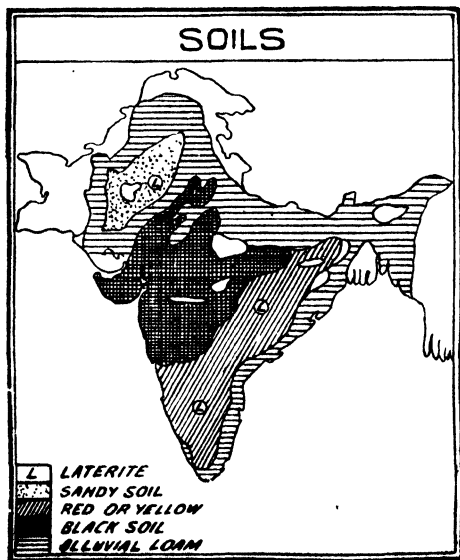
ज्वालामुखी पहाड़ों से निकली हुई मिट्टी और लावे आदि से मिल कर बनी है। इस मिट्टी में नमी को अधिक समय तक रोके रखने की शक्ति होती है।

यह मिट्टी काले रङ्ग की होती है। यह बम्बई, बरार, सी. पी. तथा हैदराबाद में पाई जाती है।

जलवायु

भारतवर्ष संसार के मौनसून खण्ड में स्थित है। इस कारण यहां गर्मी भी अधिक पड़ती है और वर्षा भी खूब होती है। यह दोनों कृषी के लिये अति आवश्यक हैं। इस लिए भारतवर्ष कृषी प्रधान देश है जहां भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं की खेती होती हैं।

भारतवर्ष स्वयं एक महाद्वप जिसका अधिकतर है भागी उष्ण कटिबन्ध में स्थित है। इस देश का कुछ भाग सम-शीतोष्ण कटिबन्ध में भी स्थित है। इसकी लम्बाई और चौड़ाई भी काफी है। इसलिए भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती है। गङ्गा और सिन्ध नदी के मैदानी भाग में से बङ्गाल और आसाम की जलवायु गर्म और नम है। शेष भाग में गर्मी में बहुत गर्मी और शीत में बहुत ठन्ड पड़ती है। उत्तरी भागों में जहां पहाड़ है बहुत ठन्ड पड़ती है। दक्षिण के पठार का जलवायु लगभग वर्ष भर गर्म रहता है। जो स्थान समुद्र के समीप हैं वहां की जलवायु समशीतोष्ण है।

वर्षा भी भिन्न-भिन्न भागों में अधिक व कम होती है। चिरापूंजी में संसार भर में सब से अधिक वर्षा होती है। यहां वर्ष भर में लगभग ४६० इंच वर्षा होती है। बङ्गाल, आसाम तथा पश्चिमी घाट के मध्य के भाग में १०० इंच के लगभग वर्षा होती है। दक्षिण के पठार तथा यू० पी० आदि में इससे

कम, पंजाब सिन्ध और राजपूताने में तो बहुत ही कम वर्षा होती है जो ५ और १० इंच के बीच होती है।

अधिकतर, हमारे देश की जलवायु गर्म है। वर्षा भी गर्मियों में केवल तीन चार महीने में होती है। जाड़ों में वर्षा नहीं होती। वर्षा की कमी को पूरा करने तथा जाड़ों में फसल तैयार करने के लिये सिंचाई के भिन्न-भिन्न साधन प्रयोग में लाने पड़ते हैं। कुछ भागो में तो बिना सिंचाई के कृषि हो ही नहीं सकती और कहीं साल में दो या तीन फसलें बोई और काटी जाती हैं।

भारत की जलवायु साल में अधिक समय तक गर्म होने के कारण फसल को पकने के लिये बहुत समय मिल जाता है। जलवायु गर्म और नम होने के कारण पशुओं के लिये चारा आदि भी पैदा होता है। परन्तु यहां साल भर लगातार वर्षा न होने के कारण घास के हरे भरे मैदान नही पाये जाते। इसी कारण पशुओं को लोग घर पर बांध कर रखते हैं और चारा देते है।

गर्मी में तापांश एक दम बढ़ जाता है। इस प्रकार फसलें जल्दी पक जाती हैं और कम समय लेती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि खेतों में पैदा होने वाली वस्तुओं की शैली (quality) अच्छी नहीं होती। उपजाऊ भागों में केवल ३० इंच वर्षा होती है इसलिये वहाँ गेहूँ बहुत उत्पन्न होता है। ग्रीष्म ऋतु के तुरन्त बाद ही वर्षा ऋतु आरम्भ हो जाती है जिसके कारण बहुत से बीमारी के कीड़े पैदा हो जाते हैं जिनसे मलेरिया, पेचिश आदि बीमारियां फैलती हैं और हानि पहुँचाती हैं। गर्म व नम जलवायु हमारे स्वास्थ पर बुरा प्रभाव डालने के साथ-साथ हमें आराम प्रिय और सुस्त बनाती है। बहुधा वर्षा का न होना, अकाल से लोगों का मरना, बाढ़,

तुफान आदि से हानि होने के कारण यहाँ के निवासी पुराने विचारों के हैं और धार्मिक बातों में अधिक विश्वास रखते हैं। यह लोग भाग्य पर अधिक भरोसा करते हैं। वह समझते हैं कि वह अधिक परिश्रम करके अपनी दशा को नहीं सुधार सकते। ऐसे जलवायु के कारण हमारे देश के मजदूर भी दूसरे देशों के मजदूरों की अपेक्षा कम कार्य कर पाते हैं।

वर्षा

संसार के भिन्न-भिन्न देशों की अपेक्षाकृत भारतवर्ष के लिये वर्षा का बहुत अधिक महत्व है। ठीक समय पर वर्षा का होना, कुछ न कुछ वर्षा सब जगह होना और पर्याप्त या कम वर्षा के होने पर भारतवर्ष की उन्नति अथवा दरिद्रता निर्भर है। भारतवर्ष के लिये वर्षा इस लिये भी आवश्यक है कि यह एक कृषक देश है और यहाँ पर सिंचाई के साधनों की आवश्यकता अत्यन्त अधिक है। प्रायः यह कहावत है कि भारतवर्ष की फसलें किसानों के लिये एक जुआ है जिसमें उनकी हार जीत की समस्या का हल वर्षा के होने या ना होने पर निर्भर है।

संसार के अन्य देशों में वर्षा साल के किसी समय में हो सकती है परन्तु भारतवर्ष में वर्षा का एक मौसम नियत है जो कि पन्द्रह जून से आरम्भ होता है और १५ सितम्बर तक चलता है। इस मौसम में मौसमी पवनें दक्षिण पश्चिम से चलती हैं। पूर्व से यह पवनें बङ्गाल की खाड़ी की ओर से आती हैं। यह मौनसून का मौसम कहलाता है। भारतवर्ष को कुल वर्षा का लगभग ६० प्रतिशत पानी ये ही हवायें लाती हैं। ये हवायें भारतवर्ष के तालाबों, कुओं, नदियों और Tube wells में पानी का कोष साल भर के लिये एकत्र कर देती हैं।

समस्त वर्षा का पानी पृथ्वी में नहीं चला जाता। इसका अधिकतर भाग भूमि के नीचे पहुँच कर हरियाली दुनियां को अर्थात् वृक्षों को लाभदायक होता है। भारतवर्ष की वर्षा की एक विशेषता यह भी है कि वर्षा भारी बोछारों में पड़ती है जिसके कारण बहुत मिट्टी पानी के साथ बह जाती है। लन्दन में वर्ष की २४" वर्षा १६१ दिनों में छोटी २ फुआरों में पड़ती है जब कि बम्बई की ७२" वर्षा ७५ दिन में ही पड़ जाती है।

वर्षा के अनुसार भारतवर्ष के निम्नलिखित भाग किये जा सकते हैं :—

अ. ऐसे प्रान्त जिनमें बर्षा अवश्य व पर्याप्त मात्रा में होती है। आसाम, पूर्वी व दक्षिणी बङ्गाल, पश्चिमी घाट के मैदान। इन भागों में ८०" से अधिक वर्षा होती है।
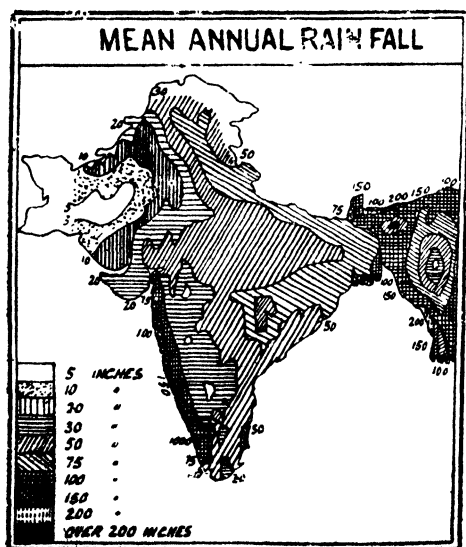
ब. अच्छी वर्षा के देश:—गंगा की घाटी से इलाहाबाद तक और पूर्वी तट। इन भागों में ४०" से ८०" तक वर्षा होती है।

स. ऐसे प्रान्त जिनमें वर्षा कम होती है अर्थात् २०" से ४०" तक। उदयपुर, अजमेर, बम्बई, और राजपूताना के कुछ भाग।

क. ऐसे प्रान्त जिनमें वर्षा बहुत कम होती है और कृषि का सब काम सिंचाई के भिन्न २ साधनों से किया जाता है। सिन्ध पश्चिमी राजपूताना व पश्चिमी पंजाब। इन भागों में १०" से भी कम वर्षा होती है।

वर्षा निम्नलिखित बातों पर निर्भर है :—

अ. समुद्र से दूरी—जिन स्थानों से समुद्र समीप होता है वहां वर्षा अधिक होती है क्योंकि पृथ्वी की गर्म वायु समुद्र की ओर चलती है और वहाँ से पानी की भरी हुई पवनें उनका स्थान लेने आ जाती हैं। इसी कारण चिरापूञ्जी, पूर्वी व पश्चिमी घाटों पर पर्याप्त वर्षा होती है।

ब. पहाड़—समुद्र का पानी जब भाप बन कर उड़ता है और एक पर्याप्त मात्रा बादल के रूप में आकाश में दिखता है तो यह भाप पानी बन कर उस समय बरसती है जब यह ठन्ड पाकर जमती है। ऐसा पहाड़ों से टकराने से ही होता है। हिमालय पर्वत पर अधिक वर्षा का होना और सदैव बर्फ का जमा रहना इसी कारण से है। पूर्वी व पश्चिमी घाट मौसमी पवनों को रोक कर खूब वर्षा देते हैं। विन्ध्याचल की ऊँचाई से पवनें टकराती हैं और राजपूताना में नहीं पहुंच सकतीं। नर्बदा व ताप्ती इसी पर्वत की दो बड़ी भेंट हैं।

स. बन—बड़े २ बनों और ऊँचे २ वृक्षों में वर्षा क

अर्थात् हवा की नमी को अपनी ओर खींचने की शक्ति होती है इसलिये जहाँ पर ये विद्यमान होते हैं वहाँ वर्षा अच्छी होती है।

द. यज्ञ और हवन इत्यादि—भारतवर्ष जैसे देश में जहाँ आत्मिक उन्नति मनुष्य अपना प्रथम कर्त्तव्य मानता रहा है, मनुष्य प्रायः वर्षा के लिये यज्ञ और हवन किया करते थे। इन कार्मों से हवा में ऐसे परमाणु उत्पन्न हो जाते थे जो पानी के लिये एक बिछौने का काम करते थे अर्थात् वे मौनसून को एकत्र कर लिया करते थे और जिस प्रांत में यज्ञ हवन हुआ करते थे वहाँ पर वर्षा हो जाया करती थी।

च. हवाओं का बहाव—हम अपने प्रतिदिन के जीवन में देखते हैं कि पश्चिमी हवा सूखी और पूर्वी व दक्षिणी हवा नम होती है। इसका यही कारण है कि पश्चिमी हवा सूखे मैदानों से आती हैं और अन्य समुद्र की ओर से।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष की उन्नति राजनैतिक बातों के अतिरिक्त वर्षा पर भी बहुत निर्भर है और विशेषतया ऐसी दशा में जब कि सिंचाई के साधन बहुत कम हैं।

मौनसून पवनें—'मौनसून' शब्द अरबी भाषा के शब्द 'मानसम' से बना है जिसका अर्थ 'ऋतु' है। इस प्रकार मौनसून पवनें उन मौसमी पवनों को कहते हैं जो वर्षा लाती हैं। भारतवर्ष में वर्ष भर में यह पवनें दो बार भिन्न २ दिशाओं से चलती हैं। इन्हें भिन्न २ दो नामों से पुकारा जाता है: (१) ग्रीष्म ऋतु में चलने वाली मौनसून पवनें।

ग्रीष्म ऋतु में चलने वाली मौनसून पवनें—यह पवनें

भारतवर्ष के लिये बहुत आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि लगभग ६० प्रतिशत वर्षा इनके द्वारा होती है। इन्हें दक्षिणी-पश्चिमी मौनसून पवनें कहते हैं। यह दो भागों में चलती हैं: (१) बंगाल की खाड़ी की मौनसून पवनें, (२) अरब सागर की मौनसून पवनें।

बंगाल की खाड़ी से चलने वाली पवनों की एक शाखा गङ्गा के डेल्टे से हो कर आसाम की खासी, गारो और जेनता की पहाड़ियों से टकराती हैं। इस स्थान पर इन पवनों को एक बार ही पाँच हज़ार फीट की ऊँचाई तक ऊपर उठना पड़ता है जहाँ वह अपनी नमी को छोड़ कर .खूब वर्षा करती हैं। चिरपूंजी खासी की पहाड़ियों पर स्थित है जहाँ संसार में सब से अधिक वर्षा होती है। यह वर्षा ४६०" के लगभग वार्षिक होती है।

इन पवनों की एक और शाखा हिमालय पर्वत से टकराती है। क्योंकि यह पहाड़ बहुत ऊँचा है इस कारण वे इसे पार नहीं कर सकतीं और पश्चिम की ओर मुड़ कर हिमालय पर्वत के दक्षिणी भागों में बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रान्त तथा पञ्जाब के प्रान्तों में वर्षा करती हैं। ज्यूं २ यह पवनें पश्चिम की ओर आगे बढ़ती जाती हैं इनमें नमी की कमी होती जाती है। इसी कारण गङ्गा के मैदान के पूर्वी भागों में वर्षा अधिक होती है और पश्चिमी भागों में कम। जैसे-जैसे हम गङ्गा नदी के साथ साथ पूरब से पश्चिम को जाते हैं वर्षा कम होती जाती है। यही कारण है कि वर्ष भर में ढाके में ६५", कलकत्ते में ५०", इलहाबाद में २५", दिल्ली में २०" और अमृतसर में १४" वर्षा होती है।

अरब सागर की मौनसून पवनों की एक शाखा मालाबार

से होकर पश्चिमी घाट से टकराती है और यहां गर्मियों में .खूब वर्षा होती है। यहां वार्षिक वर्षा लगभग १००" होती है। जब यह पवनें पश्चिमी घाट को पार करके दक्षिणी भाग में प्रवेश करती हैं तो इन में बहुत थोड़ी नमी रह जाती है। इस कारण दक्षिणी पठार के भागों में केवल २०" वर्षा होती है। पूर्वी किनारे तक पहुँचते २ यह और भी शुष्क हो जाती हैं। इसी कारण कारूमंडल में गर्मियों में केवल १५" वार्षिक वर्षा होती है।

इन पवनों की दूसरी शाखा विन्धियाचल पर्वत और सतपुड़ा पहाड़ के मध्य नर्बदा नदी की घाटी में से होकर छोटा नागपुर और राजमहल की पहाड़ियों से टकरा कर ४०" वर्षा बरसाती है। इन पवनों का कुछ भाग राजपुताना से भी होकर जाता है। राजपुताने में अरावली पहाड़ कम ऊँचा और पवनों के समानान्तर होने के कारण इन पवनों को नहीं रोक सकता। अरावली पर्वत के पास तो ६०" के लगभग वर्षा हो जाती है परन्तु राजपुताने का शेष भाग मरुस्थल है। सिन्ध में कोई पहाड़ नहीं, इस कारण यह पवनें सीधी आगे जाकर पंजाब में शिवालिक पर्वत से टकरा कर शिमले और कांगड़े में खूब वर्षा करती हैं। धर्मशाला में पंजाब में सब से अधिक वर्षा होती है जो ११६" है। शिमले में ७२" वर्षा होती है।

ग्रीष्म ऋतु की मौनसून पवनें देश के भिन्न २ भागों में इस प्रकार चलना आरम्भ करती हैं और समाप्त होती हैं :—

	आरम्भ	समाप्त
बम्बई	५ जून	१५ अक्टूबर
बंगाल	१५ जून	१५-३० अक्टूबर
संयुक्त प्रान्त	२५ जून	३० सितम्बर
पंजाब	१ जुलाई	१४-२१ सितम्बर

२. जाड़े की मौनसून पवनें—इन पवनों का नाम उत्तर-पूर्वी मौनसून पवनें है। क्योंकि यह स्थल की ओर से चलती हैं इस कारण इन में नमी नहीं होती और यह पवनें वर्षा नहीं बरसातीं। इन का कुछ भाग जब बंगाल की खाड़ी के ऊपर से होकर जाता है तो कुछ नमी ले लेता है और पूर्वी-घाट से टकरा कर मद्रास में वर्षा बरसाता है। इन पवनों द्वारा रियासत हैदराबाद, बरार, मध्यप्रान्त, बम्बई, पंजाब और राजपुताने के कुछ भागों को भी लाभ होता है। इनके द्वारा केवल १० प्रतिशत वार्षिक वर्षा होती है। यह पवनें अक्टूबर से दिसम्बर तक चलती हैं। जाड़े में अधिकतर आकाश निर्मल रहता है, और ऋतु सुहावनी होती है।

भारतवर्ष की मौनसून पवनों की निम्न विशेषतायें हैं:—

(१) देश के समस्त भाग या कुछ भाग में कभी २ वर्षा ठीक समय पर आरम्भ न होकर देर से आरम्भ होती है।

(२) जुलाई और अगस्त में भी कभी २ बहुत दिनों तक वर्षा नहीं होती।

(३) कभी २ वर्षा समय से पहले समाप्त होकर फसल को हानि पहूँचाती है।

(४) देश के किसी भाग में आवश्यकता से अधिक वर्षा हो जाती है और यह पवनें निश्चित समय के पश्चात भी चलती रहती हैं परन्तु कुछ भागों में बहुत कम वर्षा होती है।

यह मौनसून पवनें हमारे देश की आर्थिक स्थिति पर बहुत गहरा प्रभाव डालती हैं। यह हमारी आर्थिक दशा को निम्न प्रकार से प्रभावित करती हैं:—

मौनसून पवनों का भारतवर्ष की आर्थिक दशा पर प्रभाव

(अ) भारतवर्ष एक कृषक देश है। इसकी फसलों का अच्छा होना वर्षा पर निर्भर है। यदि वर्षा पर्याप्त हो जावे और समय पर हो जाये तो फसलें भी अच्छी होती हैं और कृषिक जीवन में उन्नति की झलक दिखाई देने लगती है।

(ब) फसलों के अच्छे होने से भारतवर्ष कच्चा माल और अनाज काफी संख्या में बाहर भेज सकता है और इसके बदले दूसरे देशों से रुपया और सामान आ सकता है। इसके अतिरिक्त अपने देश के कारखानों को भी ख़ूब कच्चा माल दे सकता है।

(स) वर्षा न होने से फसलें ख़राब हो जाती हैं। देश में अकाल के चिन्ह उत्पन्न हो जाते हैं। मालगुज़ारी पूरी वसूल नहीं होती और सरकार को लोगों की सहायता करने के लिये बहुत रक़म देनी पड़ती है या खर्च करनी पड़ती है।

(द) वर्षा के न होने से भारतवर्ष के किसानों की और देहाती आबादी की आय कम हो जाती है जिसके कारण वह कारखानों में तैयार किया गया माल नहीं खरीद सकते। इसका कारखानों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

(ह) लड़ाई से पहले भारतवर्ष एक ऋणी देश था और यह ऋण देश अपनी भूमि की ही उपज से देता था, फसलों के फेल हो जाने से इसमें उन्नति हो जाती थी परन्तु अब ऐसी दशा नहीं है क्योंकि अब देश ऋणी नहीं रहा।

(च) वर्षा के न होने से और फिर मालगुज़ारी के कम होने से सरकार के बजट में कमी हो जाती है और सरकार को अपना खर्चा पूरा करने के लिये नये २ टैक्स लगाने पड़ते हैं।

(ल) वर्षा के न होने से जानवरों को चारा नहीं मिलता।

चारे का अकाल पड़ जाता है। बहुत से जानवर मर जाते हैं। इसका प्रभाव ग्रामीण जीवन पर, खेती पर और देश की उन्नति पर भयङ्कर होता है। तालाब नदि नाले और नदियों में पानी की कमी से या उनके सूख जाने से सिंचाई पर और जानवरों के स्वास्थ पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

मौनसून भारतवर्ष में अमृत की वर्षा करती हैं जिसके न होने से यह देश अनेक प्रकार के शङ्कटों में पड़ सकता है।

खनिज पदार्थ

भारतवर्ष की मुख्य धातें निम्न लिखित हैं:—

१. **कोयला** —खानों से निकले हुये पदार्थों में कोयला सब से अधिक आवश्यक है। यह समस्त वाणिज्य और व्यापार का सम्राट है। कोयला बहुत अधिक मात्रा में बङ्गाल में रानीगंज, बिहार में झरिया और डावलन गंज, उडीसा में गोंडवाना में मिलता है। कोयले की खानें रियासत हैदराबाद, मध्य प्रांत आसाम, बिहार, पंजाब बिलोचिस्तान और राजपूताना में पाई जाती हैं। और युद्ध के समय में, अमरीकन इन्डिस्ट्रिल कोर्मस के समय में बहुत स्थानों पर कोयलों की खानों का पता लगाया गया और मालूम किया कि कोयले की मात्रा भारतवर्ष में आवश्यकता से अधिक है। दक्षिण भारत में कोयले की खानों के ना होने से कारखानों की उन्नति ना हो सकी क्योंकि कोयले की शक्ति बहुत अधिक होती है। इससे समस्त मशीन और रेल के इंजन दौड़ते हैं। भारतवर्ष के कोयले की क्वालटी अन्य देशों की अपेक्षा कम अच्छी है और अन्य देशों के मुक़ाबले के कारण से काफी दामों पर नहीं बिकता। लड़ाई के समय में कोयला बहुत अधिक मात्रा में निकाला जाता रहा

और सन् १६४४ से सन् १६४५ में लगभग ३५ लाख टन कोयला भारतवर्ष की खानों ने दिया।

२. **लोहा**—यह भी एक बहुत आवश्यक धातु है। बल्कि यह कहिये कि इससे आवश्यक और कोई धातु नहीं है। कोयला और चूना पास पास न पाये जाने के कारण आज कल दक्षिण में कच्चे लोहे से बहुत लाभ न उठाया जा सका। लोहे की खाने सिंगभुम कन्युजर, पुनाई मेयरभोंज, बङ्गाल, मध्य प्रांत मद्रास, और मैसूर में पाई जाती हैं।

३. **मैनगनीज़**—यह लोहे से दूसरे नम्बर की धातु है। यह फौलाद के बनाने में काम आती है। मैनगनीज़ बिजली और काञ्च के कारखानों में बहुत प्रयोग किया जाता है। यह ज्यादा मध्य प्रान्त, विज़गापट्टम, बम्बई और मैसूर में पाया जाता है।

४. **तांबा**—यह धातु बिहार, और राजपूताने में पाई जाती है। इसके बर्तन बनते हैं और दूसरी धातों में मिलकर नई नई धातें तैयार की जाती है। जैसे, जस्त, इत्यादि। भारतवर्ष में लगभग ६००० टन तांबा हर वर्ष निकाला जाता है।

५. **पैट्रौल और मिट्टी का तेल**—यह आसाम में और पश्चिमी पंजाब में और बिलोचिस्तान में पाया जाता है। यह वस्तुएँ भारतवर्ष में बहुत कम पाई जाती हैं। दुनियां की उपज का लगभग $\frac{1}{20}$ प्रतिशत तेल भारतवर्ष में पाया जाता है।

६. **भोडल (मीका)** यह वस्तु सब से अधिक भारतवर्ष में मिलती है। बिहार में हज़ारीबाग़, विलोर, सलीम, मालावार, ट्रावनकोर, और राजपूताना के कुछ भागों में पाया जाता है। ये बड़े काम की वस्तु है और अधिकतर बिजली के कारखानों

में और वायरलेस के सामान के बनाने के काम में आता है।

नमक—भारतवर्ष की आवश्यकता का लगभग ६०% नमक समुद्र के पानी से प्राप्त किया जाता है जो कि बम्बई मद्रास और बङ्गाल में तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त नमक पंजाब के नमक की पहाड़ी, कोहाट से और सांभर झील से प्राप्त किया जाता है। यह आवश्यक वस्तु है और मनुष्य के भोजन का एक भाग है।

सुहागा का नमक—एल्मोनियम की वस्तुओं के बनाने में काम आता है और शोरा कांच का सामान बनाने में भी। ये वस्तुयें अधिकतर यू. पी. और पंजाब में मिलती हैं।

चाँदी सोना—इन वस्तुओं का प्रयोग भारततर्ष में बहुत है। परन्तु इन वस्तुओं की उपज आवश्यकता के अनुसार बहुत कम है। सोना कोलार और अनन्तपुरा जो कि मैसूर रियासत में है, में पाया जाता है।

ऐल्यूमिनियम—यह कटनी, बालाघाट, पलनी, सरगूजा, और भोपाल में निकलता है।

टीन—यह पालनपुर, हज़ारीबाग़ में निकलता है।

सीसा—यह हज़ारीबाग़, मानभुमि और मध्यप्रान्त के कुछ भागों में मिलता है।

रांगा—पालनपुर और हज़ारीबाग़ में इसकी खाने हैं।

शोरा—यह सब से अधिक बिहार और पंजाब में मिलता है। पुराने समय में यह बारूद बनाने के लिये योरप भेजा जाता था। यह शीशा बनाने के काम में लाया जाता है।

हीरा—यह बुन्देलखण्ड में पाया जाता है। पन्ना राज

इसके लिये प्रसिद्ध है। मद्रास प्रान्त में करनूल, कड़ापा, और बिलारी जिले में भी पाया जाता है। कोहनूर हीरा गोलकुण्डे की हीरे की खान से प्राप्त हुआ था।

बाक्साइट (Bauxite)—यह एलोमोनियम बनाने में प्रयोग में आता है। भारतवर्ष में सब से अधिक बाक्साइट मध्य-प्रान्त में मिलता है।

संगमरमर—यह पत्थर जोधपुर में मकराना, अजमेर में खैरबा, जयपुर में मांडला और अलवर आदि स्थानों पर मिलता है।

स्लेट—यह पत्थर कांगड़ा और रिवाड़ी में मिलता है।

बलुआ पत्थर (sand stone)—कई स्थानों पर पाया जाता है।

काउलिन (Kaolin)-यह चीनी के बर्तन बनाने के काम आता है। यह ग्वालियर के निकट और मद्रास प्रान्त में पाया जाता है।

जिप्सम (gypsum)—यह बिहार और दक्षिणी भारत में मिलता है। यह (Fertilisers) शिल्पकारी के लिये बहुत आवश्यक है।

इमारती पत्थर और अन्य सामान—चूने के पत्थर और सीमेन्ट की मिट्टी विन्ध्याचल की पहाड़ियों में बून्दी रियासत में और दक्षिण भारत के कुछ भागों में पाये जाते हैं।

यदि उपरोक्त धातुओं को पूरी तरह से प्रयोग किया जाये तो यह भारतवर्ष के कारखानों की उन्नति में बड़ी सहायता कर सकती हैं।
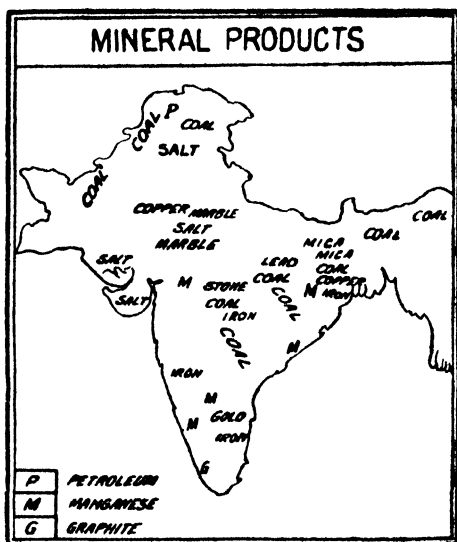
भारतवर्ष की कृषि की मुख्य उपज

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है। कृषि यहां के रहने वालों का मुख्य व्यवसाय है। लगभग ७० प्रतिशत लोगों की जीविका इसी पर निर्भर है। कृषि की वार्षिक उपज का मूल्य एक हज़ार करोड़ रुपये से भी अधिक है। यहां दो मुख्य फसलें होती हैं, **साढ़ी और सावनी** या रबी और खरीफ। रबी जाड़े की फसल होती है और खरीफ़ गरमी की। रबी की फसल में ऐसी वस्तुयें उत्पन्न होती हैं जिनमें पानी की अधिक आवश्यकता नहीं होती। यह फसल अक्टूबर नवम्बर में बोई जाती है और मार्च अप्रैल तक कट जाती है। इस फ़सल में विशेषकर गेहूँ, चना, सरसों

आदि उत्पन्न होते हैं। **खरीफ़** की फसल अप्रैल मई में बोई जाती है और अक्टूबर नवम्बर में काटी जाती है। इस फसल में वह वस्तुयें उत्पन्न होती हैं जिनको जल की अधिक आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ धान, कपास, गन्ना, दालें इत्यादि। जिन भागों में गेहूँ और जूट पैदा होता था वह पाकिस्तान में चले गये हैं।

भारतवर्ष की मुख्य-मुख्य कृषि उपज निम्नलिखित हैं :—

चावल—भारतवर्ष की एक विशेष उपज है। यहाँ समस्त कृषि वाले भाग का ३० % भाग चावल की उपज में प्रयुक्त
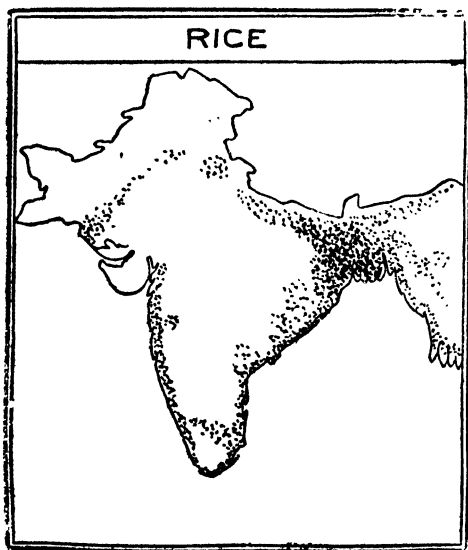
होता है। चावल मानसौन वाले भागों की एक मुख्य उपज है। इस के लिये गर्म और तर जलवायु की आवश्यकता होती है।

इसके लिये ऐसी भूमि की आवश्यकता होती है कि जिसमें पानी अधिक समय तक ठहर सके। यह उस स्थान पर उत्पन्न होता हैं जहां गर्मी खूब पड़ती हो और वर्षा भी अधिक होती हो। इसके अरिक्त सिंचन का प्रबन्ध भी अच्छा हो। यह फसल दिसम्बर जनवरी में काटी जाती है।

चावल भारतवर्ष में बंगाल, आसाम, बिहार, उड़ीसा, मध्य भारत और मद्रास के भागों में नदियों की घटियों में उत्पन्न होता है। ब्रह्मा के अलग हो जाने से भारतवर्ष को चावल बाहर से मंगाना पड़ता है। यह चावल अधिकतर ब्रह्मा से आता है। चावल बंगाल, विहार और मद्रास के रहने वालों का विशेष भोजन है।

गेहूँ —गेहूँ की उपज चावल के पश्चात दूसरे अंश पर है। यह अक्टूबर से दिसम्बर तक बोई जाती है और मार्च से मई तक काटी जाती है। इसके लिए शुष्क जलवायु की आवश्यकता है। बोते समय थोड़ी सर्दी, मध्य में अधिक सर्दी और पकते समय अधिक धूप की आवश्यकता होती है। इसकी उपज के लिये लगभग २०" वर्षा की आवश्यकता है। गेहूँ की समस्त उपज का लगभग ७५ प्रतिशत पंजाब और मध्य प्रान्त में उत्पन्न होता है। बम्बई तथा सिन्ध में भी गेहूँ उत्पन्न होता है। गेहूँ पंजाब, संयुक्त प्रान्त, सीमा प्रान्त के रहने वालों का विशेष भोजन है। और भागों में गेहूँ अन्य देशों को भेजने के लिए उत्पन्न किया जाता है। पहले महायुद्ध से पूर्व भारतवर्ष लगभग १० लाख टन गेहूँ अन्य देशों को बेचा करता था। अमरीका तथा रूस और कैनेडा के पश्चात् गेहूँ की उपज में भारतवर्ष का नम्बर है। वर्तमान काल में कई बातों के कारण अन्य देशों से गेहूँ भारतवर्ष में आता है। बोई हुई भूमि में से ११

प्रतिशत भाग में गेहूँ की उपज होती है। अब गेहूँ की उपज वाले अधिकतर भाग पाकिस्तान में चले गये हैं।
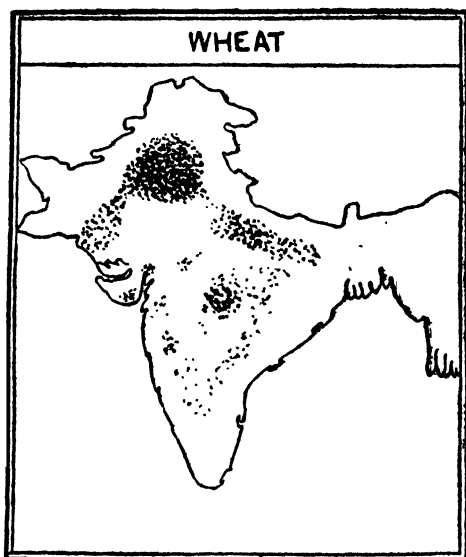
जौ—यह विशेष कर यू. पी. बिहार और पंजाब में पैदा होता है। यह जाड़े के दिनों में बोया जाता है। यह ग़रीबों की खुराक है। जौ दूसरे देशों को नहीं भेजा जाता क्योंकि भारतवर्ष में ही सब खर्च हो जाता है।

ज्वार और बाजरा—ये विशेष कर मद्रास, बम्बई, और हैदराबाद के पास प्रान्तों में पैदा होते हैं। सी. पी. बरार में भी पैदा होते हैं। इनकी उपज के लिये अधिक नमीदार पृथ्वी की आवश्यकता नहीं। इनका प्रयोग विशेष सूबों में ही होता है विदेश को तो कम मात्रा में भेजे जाते हैं।
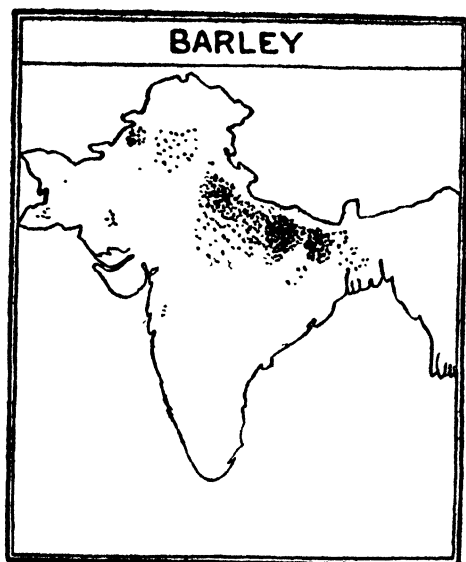
दालें— यह भारत में अधिक मात्रा में पैदा होती हैं। भारत में रहने वालों की खुराक का विशेष भाग हैं। यह विशेष कर यू पी. पञ्जाब, बम्बई, सी. पी. बंगाल में पैदा होती हैं। चने की दाल भारत में सब से अधिक होती है। दालें अधिकतर यहीं प्रयोग में आती है।

गन्ना— गन्ने की उपज के लिये अधिक नमी, उपजाऊ भूमि काफी गर्मी और बहुत अधिक पानी की आवश्यकता होती है। आजकल भारतवर्ष सब गन्ना पैदा करने वाले देशों में प्रथम है। लगभग ४० लाख एकड़ भूमि गन्ने की उपज के लिए प्रयोग में लाई जाती है। यह विशेष कर यू. पी. पंजाब,

बिहार और उड़ीसा में पैदा होता है। लगभग ६७ प्रतिशत गन्ना भारतवर्ष के उत्तरी भागों में पैदा होता है। सन् १६३२ से पहले लगभग १६ करोड़ रुपये की चीनी भारत को दूसरे देशों से मंगवानी पड़ती थी। परन्तु इसके पश्चात् चीनी बनाने वाले कारखानों की संख्या बढ़ गई। गवर्नमेंट ने उसकी सहायता की और अब गन्ने से इतनी अधिक चीनी उत्पन्न की जाती है कि भारतवर्ष अन्य देशों को चीनी भेजने का इच्छुक रहता है।

मक्का—सन् १६४१—४२ में लगभग ५६ लाख एकड़ भूमि में मक्का बोई जाती थी जिससे २५ लाख टन मक्का पैदा होती थी। यह यू० पी० और पंजाब के प्रान्तों में पैदा होती है। उत्तरी भारतवर्ष के रहने वाले ग़रीब निवासियों का मुख्य भोजन है।

कपास—कपास के लिये गर्म और शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। इसकी उपज के लिये ४०" से कम वर्षा की आवश्यकता होती है। अमरीका के पश्चात् कपास की उपज के लिए भारतवर्ष का स्थान हैं। परन्तु उपज प्रति एकड़ बहुत कम होती है, और कपास की किस्म भी घटिया है। कपास काली मिट्टी में अधिकतर पैदा होती है। यह बम्बई, सी. पी. बरार, बड़ौदा, पंजाब, यू. पी., हैदराबाद और सिन्ध में पैदा होती है। इसकी उपज का ५० प्रतिशत भाग बम्बई और बरार ' में उत्पन्न होता है। भारत से कपास जापान को भेजी जाती है। चीन, जर्मनी इत्यादि को भी कपास भेजी जाती है। बरतानिया ने भी भारतवर्ष की कपास लेनी आरम्भ करदी है। अब अधिक कपास भारतवर्ष के कारखानों मे ही प्रयुक्त होती है। जूट के पश्चात् दूसरे दर्जे

पर कपास भारतवर्ष से दूसरे देशोंको भेजी जाती है कपास की उपज का बहुत अधिक भाग पाकिस्तान में चला गया है। अब भारतवर्ष को कपास पाकिस्तान से मंगानी पड़ती है।
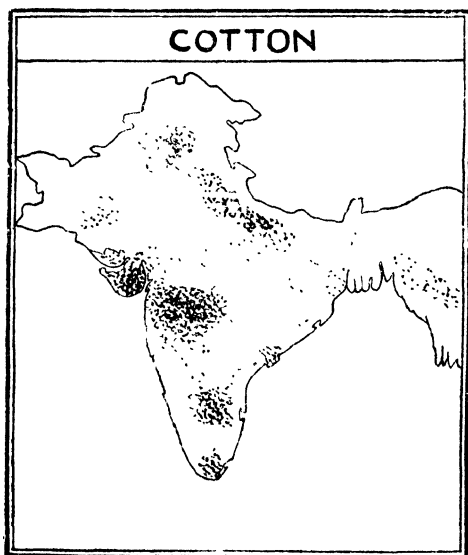
जूट--इसके लिये गर्म, तर, जलवायु, और उपजाऊ भूमि की आवश्यकता है। जूट दुनियां भर में भारतवर्ष में ही पैदा होता है। यह फसल वर्षा ऋतु के शुरू में बोई जाती है और जाड़े के शुरू होते ही काट ली जाती है। पौदों को छोटे २ गट्ठों में बाँध कर २, ३ हफ्ते तक सड़ाते हैं और फिर कूटकर रेशे को अलग करते हैं। भारतवर्ष में जूट बङ्गाल, बिहार उड़ीसा में पैदा होता है। बङ्गाल वालों की २० प्रतिशत आय

जूट से होती है। जूट कच्चे और पक्के माल के रूप में जर्मनी, इंगलैंड, फ्रान्स आदि देशों को भेजा जाता है। भारतवर्ष की निर्यात में लगभग ३३ प्रतिशत जूट ही होता है। भारतवर्ष में जूट केवल बिहार और बंगाल में पैदा होता है। अब समस्त उपज का ७४ प्रतिशत पूर्वी बंगाल और शेष पश्चमी बंगाल में उपजता है। कच्चा जूट भारतवर्ष को पाकिस्तान से मंगवाना पड़ता है। अब दक्षिणी भारत में इसे उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है।
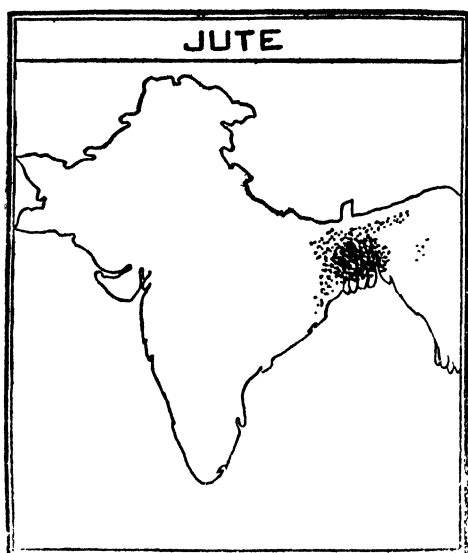
चाय—इसके लिये गर्म और तर जलवायु की आवश्यकता होती है। यह बहुधा पहाड़ों के ढलानों पर पैदा होती है जहाँ पानी ठहर न सके क्योंकि पानी के ठहरा रहने से पेड़ों को

हानि होती है। पत्तियाँ चुनते समय कड़ी धूप की आवश्यकता होती हैं। इसलिये भूमी भी उपजाऊ होनी चाहिये। चीन के बाद भारतवर्ष में चाय संसार में सब से अधिक पैदा होती है। चाय अधिकतर दूसरे देशों को भेजने के लिये पैदा की जाती हैं। भारतवर्ष से चाय बर्तानिया और दूसरे यूरोप के देशों को भेजी जाती हैं। चाय आसाम, देहरादून, दारजिलिंग, निलगरी की घाटियों व कांगड़ा आदि में पैदा होती हैं। चाय का पौदा चार या पांच फीट ऊँचा होता है। पंत्तियों को सुखाकर चाय तैयार की जाती हैं। वर्ष में लगभग दस या बारह बार पत्तियां तोड़ी जाती हैं। भारतवर्ष में चाय की खेतीबाड़ी और इस का व्यापार अधिकतर विलायत वालों के हाथ में है। चाय की पत्तियों को चुनने के लिये सस्ते मजदूर जिन की उङ्गलियां पतली व नर्म होती हैं की आवश्यकता होती है।

क़हवा--चाय की भांति इसे भी अधिक जल की आवश्यकता होती है। सन् १८६१ में भारतवर्ष में अधिक क़हवा पैदा होता था परन्तु इसके पश्चात इसकी खेती कम होती गई। यह अधिकतर पहाड़ी ढलानों पर पैदा होता है। क़हवा, मैसूर, ट्रावनकोर, मद्रास और कुर्ग में पैदा होता हैं। इसके पौदे भी चाय की तरह ऊँचे होते हैं। इसके फल काम में आते है।

तम्बाकू—तम्बाकू की खेती के लिये भूमि में खाद्य देनी पड़ती है और कई बार सिंचाई करनी पड़ती है। यह मद्रास, बङ्गाल, आसाम, बम्बई, और यू. पी में पैदा होता है। अधिकतर तम्बाकू भारतवर्ष में ही पैदा होता है।

नील—(Indigo)—पहले युद्ध के पश्चात भारतवर्ष नील की खेती के लिये बहुत प्रसिद्ध था। परन्तु इस युद्ध के पश्चात जर्मनी ने नील के स्थान पर दूसरी वस्तुएँ तैयार कर

दीं जिस के कारण नील की खेती को अधिक हानि पहुँची। यू० पी०, बिहार, बङ्गाल, बम्बई और मद्रास में नील की खेती होती है। इससे नीला रङ्ग तैयार किया जाता है। अन्य साधनों द्वारा सस्ते रङ्ग तैयार होने के कारण अब इसकी खेती बहुत कम हो गई है।

तेल निकालने के बीज (Oil Seeds)—भारतवर्ष में कई प्रकार के तेल निकालने के बीज उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए सरसों, अलसी, मूंगफली इत्यादि। १९३९-४० में लगभग १ करोड़ साठ लाख एकड़ भूमि में तेल निकालने के बीजों की खेती होती थी। तेल के बीज भारतवर्ष की निर्यात में चौथा दर्जा रखते हैं। महायुद्ध के पश्चात तेल के बीजों का अन्य देशों
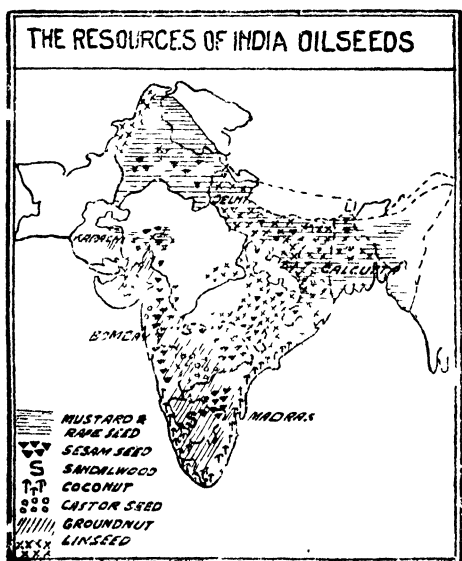
को जाना कम होता जा रहा है। यह बीज कच्चे रूप में ही अन्य देशों को भेजे जाते थे और उन देशों से भिन्न २ प्रकार के सुगन्धित तेलों के रूप में भारतवर्ष में आते रहते थे। अब यह अधिकतर भारतवर्ष में ही प्रयुक्त होते हैं और अन्य देशों को नहीं भेजे जाते।

नारियल—नारियल का पेड़ सागर के तट के पास रेतीली भूमि में उत्पन्न होता है। इसे अधिक वर्षा की आवश्यकता होती है। यह पेड़ बहुत ऊँचा और मोटा होता है इसके लिए सागर की नमकीन हवा और तट की रेतीली भूमि बहुत लाभ-दायक होती है। इसलिये यह पूर्वी और पश्चिमी घाटों पर और लंका में भी होता है। हरे फल का पानी भी पिया जाता है। पक्के फल की गिरी निकालते हैं।

अफ्यून—यह पोस्त का सूखा हुआ रस है। यह पौदा तीन फ़ुट ऊंचा होता है और रबी की फसल में बोया जाता है। मार्च में इसमें सफेद पुष्प निकल आते हैं। इस समय इसके कच्चे पुष्प को तोड़ कर रस निकालते हैं और इसके पश्चात यही सूख कर अफीम हो जाती है। अफीम संयुक्त प्रान्त के पूर्वी जिलों में बिहार, राजपूताना और मालवा की रियासतों में सरकारी आज्ञा से उत्पन्न की जाती है। गाज़ीपुर में अफीम साफ़ करने के कारखाने हैं। जब से अफीम चीन जानी बन्द हुई है उस समय से अफीम की उपज बहुत कम हो गई है। पोस्त के साथ प्रायः धनिया, सौंफ और अजवायन भी बोई जाती है।

रबड़—रबड़ एक पेड़ के रस से तैयार होती है। इसके पेड़ अधिकतर गर्म और तर जलवायु में उत्पन्न होते हैं। कुछ समय पूर्व रबड़ जङ्गलों में पैदा होती थी। किन्तु जब से रबड़

की मांग बढ़ गई है तब से लोगों ने इसके पेड़ लगाने आरम्भ कर दिये हैं। यह रबड़ के बगाचे लंका, ब्रह्मा और दक्षिणी पश्चिमी घाट, और आसाम की पहाड़ियों पर पाये जाते हैं।

सिनकोना—यह पेड़ पहले दक्षिणी अमेरिका में ही पाया जाता था। परन्तु अब नीलगिरी, मैसूर, ट्रावनकोर और दार्जलिंग में भी सरकारी पेड़ लगाये गये हैं। इसकी छाल को कूट कर कुनैन बनाते हैं।

लाख—यह एक प्रकार के कीड़ों से पेड़ों पर बनाई जाती है। लोग इसे जंगलों से इकट्ठा करते हैं और साफ करके बाजारों में बेचते हैं। मध्य भारत और छोटा नागपुर के जंगलों
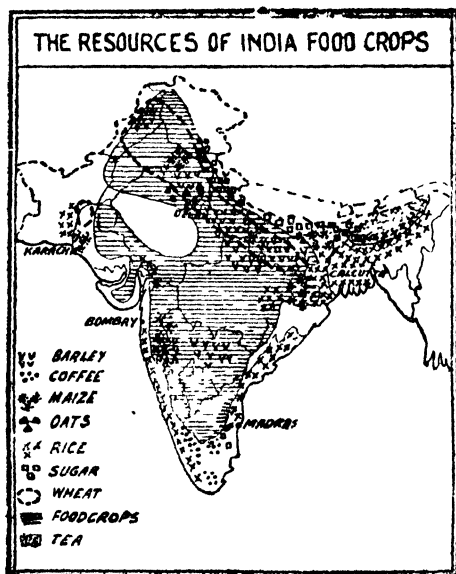
में लाख बहुत मिलती है। यह वार्निश आदि बनाने के काम में आती है। यह ग्रामोफोन के रिकार्ड के काम में भी आती है। इसका केन्द्र Dum Dum है। भारतवर्ष की बहुत सी लाख अन्य देशों को भेजी जाती है। इसका केन्द्र मिरज़ापुर में है।

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में भिन्न भिन्न प्रकार के फल, सब्जियां, मसाले आदि भी उत्पन्न किये जाते हैं। रेलों आदि के आविष्कार होने से कृषक लोग अधिकतर उपज बाज़ार में बेचने की इच्छा से पैदा करते हैं। भारतवर्ष से कपास, जूट, दाल, चाय और तेल के बीज आदि अन्य देशों को भेजे जाते हैं।

विभाजन के परिणाम स्वरूप अब भारतवर्ष में लगभग ३० लाख से ५० लाख टन तक खाद्य पदार्थों की कमी रहती है। आवश्यकता से १० प्रतिशत कम अनाज भारतवर्ष में उत्पन्न होता है। परन्तु पाकिस्तान की दशा इस सम्बन्ध में अच्छी है। पाकिस्तान में वहां के लोगों की आवश्यकता को पूरा करने के पश्चात कुछ बच भी रहता है। इस सम्बन्ध में पश्चिमी पाकिस्तान की दशा अधिक अच्छी है परन्तु पूर्वी पाकिस्तान में गेहूं और चावल की उपज की कमी है। यह कमी पश्चिमी पाकिस्तान द्वारा भी पूरी नहीं हो सकती। परन्तु भारतवर्ष में खाद्य पदार्थों की समस्या अधिक कठिन है। भारत सरकार को कई वर्षों से अनाज अन्य देशों से मंगाना पड़ता है जो बहुत महंगा होता है। इस प्रकार सरकार को प्रतिवर्ष लगभग २२ करोड़ रुपये अनाज की आयात पर व्यय करना पड़ता है। अब भारत सरकार ने यह निश्चय कर लिया है कि १९५१ के पश्चात दूसरे देशों से अनाज की आयात बन्द करदी जायगी। सरकार कई प्रकार से अनाज की उपज को बढ़ाने का प्रयत्न कर रही है। इनमें अधिक भूमि में खेती करना, सिंचाई के साधनों की वृद्धि

और विकास, सामुहिक रूप से खेती करना, अच्छी प्रकार की खाद्य आदि देकर भूमि की उपज को बढ़ाना मुख्य बातें हैं। अनाज की उपज को बढ़ाने के लिये सरकार महत्वपूर्ण योजनाओं के आधीन कार्य कर रही है।

भारतवर्ष के वन (Forest Wealth of India)

वनों के लाभ—मनुष्य समाज को वनों से अनेक लाभ हैं और इनकी अत्यन्त आवश्यकता है। वास्तव में आधुनिक औद्योगिक उन्नति बहुत कुछ वनों पर निर्भर है। इस कारण वन किसी देश की अमूल्य सम्पत्ति होते हैं। आरम्भ में मनुष्यों ने इस बात को न समझा और भिन्न-भिन्न देशों में बन नष्ट कर दिये गये। अब प्रत्येक देश इनकी उपयोगिता तथा महत्त्व को स्वीकार करता है। इसके परिणाम स्वरूप सब देशों में जङ्गल विभाग स्थापित करके उनकी रक्षा का प्रयत्न किया गया है। वनों से प्रत्यक्ष (Direct) और अप्रत्यक्ष (Indirect) दो प्रकार के लाभ हैं।

प्रथम वनों में पशु चरते हैं। आस पास के गांव वालों को मकान, छप्पर इत्यादि बनाने के लिये लकड़ी वनों से मिलती है। जलाने के लिये भी लकड़ी वनों से ही मिलती है। कृषि के अधिकतर सब औजार लकड़ी से ही बनाये जाते हैं। घास से रस्सियां बनाई जाती हैं। साल की लकड़ी मकान बनाने और रेलवे के सलीपर बनाने के काम आती है। शीसम की लकड़ी सागवान की लकड़ी की भांति सख्त होती है, और इससे फरनीचर बनता है। बहुत सी शिल्पकारियां भी वनों की सहायता से ही चलाई जा सकती हैं। कागज बनाने का गूदा भी जङ्गलों से ही मिलता है। पाइन और आबनूस के पेड़ बड़े लाभदायक हैं। आबनूस पर कारीगरी का अच्छा काम अधिक होता है और

पाइन के पेड़ से एक गोंद की प्रकार की चीज़ मिलती है जिससे तारपीन का तेल, वार्निश, मोटर का गिरीस, वैसलीन और साबुन आदि बनते हैं। लाख, कत्था, गोंद और चमड़ा रंगने के लिये छाल भी बनों से ही मिलती हैं। बनों से कई प्रकार की जड़ी बूटियां भी मिलती हैं। दियासलाई इत्यादि भी बनों से बनाई जाती है। सुन्द्री पेड़ की लकड़ी छोटी नावें बनाने के काम में आती है। बनों से लाखों मनुष्यों को भिन्न-भिन्न रूपों में काम मिलता है। किन्तु इन बहुमूल्य पदार्थों से भी अधिक महत्वपूर्ण बनों द्वारा होने वाले अप्रत्यक्ष लाभ हैं।

बन किसी देश की जलवायु पर बहुत अधिक प्रभाव डालते हैं। बन किसी देश में अधिक वर्षा होने में सहायक होते हैं। हवा में नमी थामे रखते हैं। पृथ्वी में भी पर्याप्त नमी रहती है। पेड़ पहाड़ों की ढलानों की रक्षा करते हैं क्योंकि उनकी जड़ें मिट्टी को बांधे रखती हैं। जो नदियां बनों में से होकर आती हैं उनके भयानक बहाव को ये ही रोकते हैं। बन आस पास के भाग को भयानक तूफान से बचाते हैं। बन सड़े पत्तों के रूप में खाद देते हैं जो कृषि के लिये बहुत लाभदायक होती है। बन किसी देश की सुन्दरता को और भी बढ़ा देते हैं। बन भूमि के कटाव (Erosion) को भी रोकते हैं। भारत जैसे कृषि देश के लिये बनों का बहुत महत्व है।

भारतवर्ष के समस्त क्षेत्रफल का लगभग १२½ प्रतिशत भाग बनों से घिरा हुआ है। यह क्षेत्रफल लगभग १५५,००० वर्ग मील है। क्षेत्रफल की दृष्टि से तो यह पर्याप्त मात्रा में हैं परन्तु यह आवश्यकतानुसार सारे देश में विस्तृत नहीं है। कुछ प्रान्तों में तो आवश्यकता से अधिक बन हैं परन्तु कुछ प्रान्तों में बनों का अभाव है। इस कारण संयुक्त प्रान्त तथा पञ्जाब के

कुछ भागों में जङ्गल लगाने का प्रयत्न किया गया है। संयुक्त प्रान्त में इटावा जिले में शीशम और बबूल के जङ्गल लगा कर उस भाग को मरुस्थल होने से बचा लिया गया। इसके साथ साथ जङ्गल लगाने का यह भी लाभ हुआ कि नदियों द्वारा अधिक भूमि का काटा जाना रुक गया।

भारत जैसे विशाल देश में भिन्न २ प्रकार के वन पाये जाते हैं। यह वन जलवायु की भिन्नता तथा भूमि और ऊंचाई की भिन्नता के अनुसार भिन्न हैं। पहाड़ों पर खड़े हुए जङ्गल बहुत उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण होते हैं। इन वनों में भिन्न २ ऊंचाई पर भिन्न २ प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं। परन्तु मध्य तथा पश्चिमी हिमालय के वनों में एक से वृक्ष मिलते हैं। इनमें देवदार, पाइन (Pine), स्प्रूस (Spruce) श्वेत सनोवर (Silver Fir) और बलूत के वृक्ष मिलते हैं। ये वृक्ष औद्योगिक दृष्टि से बहुत महत्त्व रखते हैं। आसाम के वनों में बलूत (oak), सुनहली लकड़ी और लालरेल के पेड़ पाये जाते हैं। आसाम और बर्मा में पाइन के जङ्गल भी हैं। इन वनों में चीड़, लारेल (Laurel) और मैनगोलिया वृक्ष भी बहुत पाये जाते हैं।

जलवायु की भिन्नता के अनुसार भारतवर्ष में निम्न प्रकार के वन पाये जाते हैं :—

१. **पतझड़ वाले वृक्ष** (Deciduous Forests)—यह वन उन वृक्षों से भरे हुए हैं जो पतझड़ में पत्ते गिरा देते हैं। यह वन हिमालय के निचले भाग (Sub Himalayan Tract) और दक्षिणी पठार में मिलते हैं। इन जङ्गलों में साल, सागवान, शीसम, हल्दू, खैर और बबूल के वृक्ष अधिक संख्या में पाये जाते हैं

सदा हरे रहने वाले वन (Evergreen Forests)—यह वन भारतवर्ष के उन भागों में पाये जाते हैं जहां वर्षा अधिक होती है। यह पश्चिमी घाट और पूर्वी हिमालय के निचले भाग में पाये जाते हैं। इन जङ्गलों में वनस्पति बहुत होती है। बांस और बेंत भिन्न २ प्रकार के ताड़, सागवान इन जङ्गलों में पाये जाते हैं। इनकी लकड़ी बहुत सख्त और उपयोगी होती है। इन वनों में घुसना कठिन है। इनमें केवल पेड़ों पर रहने वाले जानवर, बन्दर इत्यादि, चिड़ियाँ और रेंगने वाले जानवर मिलते हैं।

३. सूखे वन (Arid Forests)—यह वन उन भागों में पाये जाते हैं जहां २०" से कम वर्षा होती है। यहाँ एक प्रकार के कांटेदार पेड़ पाये जाते हैं। ये वन अधिकतर राजपुताना, और दक्षिणी पञ्जाब, मध्य भारत और काठियावाड़ में पाये जाते हैं। इन वनों में बबूल के पेड़ अधिक पाये जाते हैं।

४. समुद्र तट के वन (Tidal Forests)—यह वन अधिकतर नदियों के डेल्टो में मिलते हैं। यह समुद्र से निकली हुई भूमि पर होते हैं। इन जङ्गलों की लकड़ी अधिक उपयोगी नहीं होती। इनकी लकड़ी केवल ईन्धन के काम आती है। इन्हें सुन्दर वन कहते हैं। इन जङ्गलों में भिन्न २ प्रकार के जङ्गली जानवर पाये जाते हैं।

भारतवर्ष के वनों में बहुमूल्य सम्पत्ति भरी पड़ी है परन्तु अभी तक इस बात की पूरी और संतोषजनक खोज नहीं हुई कि कौन सी लकड़ी किस उपयोग में आ सकती है। वनों पर बहुत से उद्योग धन्धे भी आश्रित हैं। इनमें निम्नलिखित मुख्य हैं:—
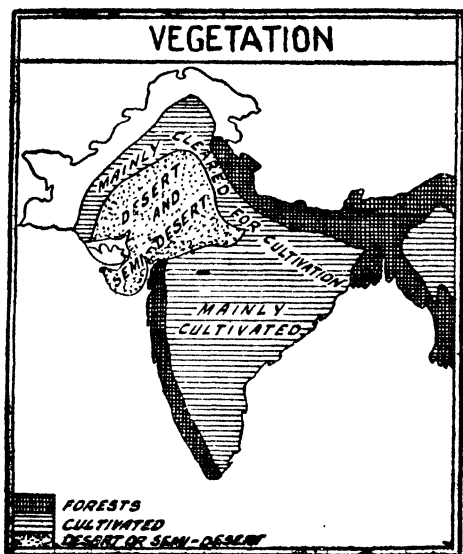
१. तारपीन का तेल तथा बिरोजा—यह धन्धा संयुक्त प्रान्त और पञ्जाब में स्थापित हुआ है। प्रति वर्ष बहुत सा तारपीन का तेल और बिरोजा भारत से विदेशों को भेजा जाता है। पाइन के पेड़ के गाढ़े रस से तारपीन का तेल और बिरोजा बनता है। यह विशेष कर वार्निश के काम आता है।

२. कागज़ को धन्धा—यह धन्धा भी बहुत उन्नति कर सकता है। भारतवर्ष के कुछ कारखाने अब बांस से कागज बनाने लगे हैं। इस प्रकार के कागज की लागत अधिक होती है। अधिकतर कागज के कारखानों में सवाई, बैब और भाभर नाम की घासों का उपयोग होता है। यह घास बङ्गाल, छोटा नागपुर, नैपाल, संयुक्त प्रान्त तथा उड़ीसा के जङ्गलों में मिलती

है। इसके अतिरिक्त जूट, टाट, गूदड़, सन, रद्दी कागज तथा पुराने रस्सों से भी कागज बनाये जाते हैं। बढ़िया कागज बनाने के लिये गूदा (Wood pulp) बाहर से मंगवाना पड़ता है।

३. लाख—लाख का कीड़ा कुछ विशेष प्रकार के पेड़ों पर लाख इकट्ठी कर देता है। प्रति वर्ष करोड़ों रुपये की लाख भारत से विदेशों को भेजी जाती है। उड़ीसा, मध्य प्रान्त और मयूरभज में लाख उत्पन्न की जाती है। लाख बहुत उपयोगी वस्तु है।

४. कत्था और कच—यह भी बहुत मात्रा में मिलता है कत्था भारतवर्ष के प्रयोग में आता है और कच बाहर भेज दिया जाता है।

५. चमड़ा कमाने के काम आने वाले पदार्थ—इनमें मैरीबोलस का फल और बबूल के पेड़ की छाल मुख्य हैं।

६. दियासलाई का धंधा भी बनों पर ही आश्रित है।

परन्तु अभी तक हमारे देश में इन धन्धों का विकास अधिक नहीं हो सका। इसके कारण वनों के विषय में कम जानकारी, पहाड़ों से लकड़ी काट कर नीचे लाने की असुविधायें, वनों में अच्छे मार्गों का न होना आदि बातें हैं। अभी तक पहाड़ों पर ऐसे जङ्गल भी हैं जिनको छुआ तक नहीं गया है।

सरकार की वन सम्बन्धी नीति—बनों के लाभ को दृष्टि में रखते हुए इनकी रक्षा का भार अब सरकार ने स्वयं अपने ऊपर ले लिया है। सरकारी जंगल विभाग ने बनों को पहले ही चार भागों में विभक्त किया है। प्रथम वह बन जिनकी

रक्षा बाढ़ और मिट्टी के बहाव को रोकने के लिये आवश्यक हैं। दूसरे वह जङ्गल जिनसे मकानों इत्यादि के लिये लकड़ी मिलती है। तीसरे वह छोटे बन जिनसे जलाने के लिये, मकान इत्यादि के लिये लकड़ी मिलती है और पशुओं के लिये घास। और चौथे वह जो वास्तव में बन नहीं है, परन्तु जंगल विभाग के आधीन हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे बन हैं जो पूरे तौर पर सरकार के आधीन हैं और जिन्हें कोई काट नहीं सकता। इन वनों को Reserved Forests कहते हैं। ये बन हिमालय की तलहटी और छोटे नागपुर इत्यादि में पाये जाते हैं। दूसरे Protected Forests होते हैं जो कुछ शर्तों के अनुसार ठेके पर गाँव वालों को दिये जाते हैं और कुछ Unclassed Forests भी हैं।

सब से प्रथम बनों की रक्षा की ओर ध्यान १८४७ में बम्बई में दिया गया था। फिर १८५५ में भारतीय सरकार ने एक नीति मेमोरेन्डम प्रकाशित किया जिसमें बनों की रक्षा की पूरी नीति का चित्र अंकित किया। मद्रास में १८५६ में एक Conservator of Forests नियुक्त हुआ। १८६३ में प्रथम जङ्गलात इन्सपैक्टर जनरल नियुक्त हुआ। प्रारम्भ में यह विभाग केन्द्रीय सरकार के आधीन था परन्तु अब यह प्रान्तों के आधीन कर दिया गया है। परन्तु अब भी केन्द्रीय सरकार बनों का इन्सपैक्टर जनरल नियुक्त करती है। देहरादून में एक Research Institute है जो बन की पैदावार को भिन्न २ प्रकार से प्रयोग में लाने के साधनों की खोज करता है। भारतवर्ष में जङ्गलों की कला की शिक्षा सब से प्रथम १८७६ में देहरादून में Forests Schools के स्थापित होने से आरम्भ हुई। देहरादून में अब दो कालिज हैं जिन के नाम Indian Forest Ranger College और Indian

Forest College हैं। इनमें भारतवर्ष के भिन्न २ भागों से शिक्षा के लिये लोग आते हैं। देहरादून में Forest Research के पाँच विभाग हैं। जंगलों से सरकारी आय लगभग ५ करोड़ रुपया वार्षिक है।

इन बातों से स्पष्ट है कि राज्य की जंगलों को सुरक्षित रखने की जो नीति है वह बहुत अच्छी है। इनका सुरक्षित रखना अति आवश्यक है। वन बहुत से लाभदायक कामों के लिये प्रयोग में आ सकते हैं। स्वतन्त्र भारत के जंगल विभाग को अभी और उन्नति करना है। इसकी उन्नति पर देश की आर्थिक दशा का कुछ भार है।

शक्ति के साधन (Power Resources)

वर्तमान युग मशीनों का है। प्रत्येक देश में सस्ती शक्ति की आवश्यकता है। मशीनों को पूर्ण गति से चलाने के लिये शक्ति की आवश्यकता पड़ती ही है। शक्ति कई प्रकार से पैदा की जाती है किन्तु आवश्यकता सस्ती शक्ति की है। वह तो केवल पानी से पैदा की गई बिजली से ही प्राप्त हो सकती है। भारत को यह शक्ति पर्याप्त रूप से प्राप्त हो सकती है। परन्तु इस ओर ध्यान दिया जाये तो यह बात सम्भव है। हमें ज्ञात है कि यदि शक्ति के साधन अच्छे हों तो वह देश शिल्पकारी में उन्नति कर सकेगा और एक समृद्धशाली देश बन सकेगा। अब हम भारत को भी इसी दृष्टि से देखें कि वहाँ कौन २ से शक्ति के विशेष साधन मिलते हैं। वे कहाँ तक उन्नति में सहायक हुए हैं और कहाँ तक वे अन्य देशों से पीछे हैं।

१. कोयला (Coal)—पानी से उत्पन्न की हुई बिजली की शक्ति (Hydroelectric) से पहले कोयला शक्ति का एक बहुत बड़ा साधन था और मशीनें इत्यादि इसी से चलाई जाती

थीं, परन्तु बिजली की शक्ति उत्पन्न होने के कारण इसका उपयोग कम हो गया है। भारतवर्ष में प्रति वर्ष दो करोड़ अस्सी लाख टन कोयला खानों से निकाला जाता है। इसका लगभग बयासी प्रतिशत बङ्गाल और बिहार से मिलता है। रानीगंज और झरिया की खानें कोयले के लिये प्रसिद्ध हैं। कोयले की कुल उत्पत्ति का आधा भाग रेलों और लोहे की फैक्ट्रियों में लग जाता है। भारतवर्ष में लगभग पांचसौ हज़ार लाख टन और छः सौ हज़ार लाख टन के बीच में कोयले का स्टाक उपस्थित है। भारतवर्ष में खानों से कोयला निकालने के साधन अच्छे और कम खर्च नहीं हैं, परन्तु अब ये साधन बहुत होते जा रहे हैं और हम देखते हैं कि पिछली बड़ी लड़ाई के पश्चात् से कोयले की उत्पत्ति बढ़ती ही जा रही है। कोयले की आयात कम होती जा रही है और निर्यात आस पास के पूर्वी देशों को बढ़ती जा रही है। वर्तमान बड़ी लड़ाई में देश में ही कोयले की बहुत अधिक आवश्यकता पड़ी थी।

भारतवर्ष के कोयले में सब से बड़ी कमी यह है कि लगभग सब कोयला एक मुख्य Gondwana प्रदेश में पाया जाता है। और देश के भिन्न २ भागों में ठीक प्रकार से विभाजित नहीं है। कोयला एक कम मूल्य वाली और भारी वस्तु है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने का खर्च बहुत अधिक पड़ता है। बङ्गाल से बम्बई और मद्रास कोयला भेजने में बहुत खर्च होता है। उदाहरणार्थ खान के मुंह पर कोयले का मूल्य चार रुपये प्रति टन पड़ता है, परन्तु जब यह उपयोग होने वाले स्थान पर पहुँचता है तो कभी कभी बीस रुपये प्रति टन मूल्य पड़ता है। इस कारण शिल्पकारी की उन्नति के लिये कोयला अत्यन्त लाभप्रद नहीं है।

२. हवा (Wind)—यूरोप में हालैण्ड और बेल्जियम में हवा की शक्ति ने अधिक उन्नति की है और वहां यह अधिक मात्रा में भी उपयोग में लाई जाती है परन्तु भारतवर्ष में यह शक्ति अभी तक उपयोग में नहीं लाई गई है।

३. लकड़ी—हमें पता है कि भारत के वनों से लगभग दस करोड़ टन लकड़ी प्रति वर्ष हमें मिल ही जाती हैं। परन्तु इसके द्वारा उत्पन्न शक्ति मंहगी पड़ती है। जंगलों से मिलों तक लाने का खर्च इतना अधिक हो जाता है कि हमें अपने इस साधन को छोड़ना पड़ता है।

इस सब के उपरान्त हमें अपनी आवश्यकता के अनुसार यह प्राप्त भी नहीं होती है अतएव यह साधन फैक्ट्रियों और मिलों के चलाने के लिये ठीक नहीं है।

४. तेल और अलकोहल—ब्रह्मा के भारतवर्ष से अलग हो जाने के कारण तेल को शक्ति में भारतवर्ष अब बहुत कमजोर हो गया है। भारतवर्ष में पैट्रोल काफी मात्रा में नहीं मिलता। अब केवल आसाम के उत्तरी भाग में और पंजाब में कुछ थोड़ा बहुत पैट्रोल मिलता है। अब लगभग नौ करोड़ गैलन पट्रोल भारतवर्ष में प्रति वर्ष उत्पन्न किया जाता है। सन् १९३९ और ४० में भारतवर्ष ने लगभग छियालिस सौ तीस लाख गैलन पट्रोल दूसरे देशों से मंगवाया। इसी का मूल्य लगभग १७ करोड़ रुपया था। परन्तु इसके अतिरिक्त चीनी से जो सीरा या (Molasses) निकलता है उससे अलकोहल की शक्ति पैदा की जा सकती है। यू. पी और मैसूर में अलकोहल पैदा किया जाता है और पट्रोल में मिलाकर शक्ति के लिये उपयोग में लाया जाता है। इस शक्ति पर और अधिक ध्यान

दिया जा सकता है। हर प्रकार से इसको बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिये।

भारतवर्ष की जल-शक्ति (India's Hydro-Electric Power)—

वर्तमान युग मशीनों का युग है। हमारे दिन प्रतिदिन काम में आने वाली अधिकतर वस्तुएं मशीनों द्वारा ही तैयार की जाती हैं। इन मशीनों को चलाने के लिए सस्ती तथा अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है। इस कारण किसी भी देश की आर्थिक तथा शिल्प की उन्नति के लिये इस प्रकार की शक्ति का होना आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है। हम शक्ति के विभिन्न साधनों का वर्णन पहले कर चुके हैं। भारतवर्ष में यह सब साधन पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं परन्तु इन सब साधनों में पानी से उत्पन्न की गई बिजली की शक्ति सब से अधिक महत्व रखती है। अन्य सब शक्ति के साधन सीमित हैं और कुछ समय पश्चात समाप्त हो जाते हैं। अनुमान लगाया गया है कि कोयले की वर्तमान खपत के अनुसार भारतवर्ष का साधारण कोयला ४०० वर्षों में समाप्त हो जायगा और प्रथम श्रेणी का कोयला केवल १०० वर्षों में ही समाप्त हो जायगा। अतएव भविष्य में औद्योगिक उन्नति के लिए भारतवर्ष को अधिकाधिक पानी से उत्पन्न की गई बिजली की शक्ति अर्थात् विद्युत पर निर्भर रहना होगा।

बीसवीं शताब्दी में इस शक्ति ने बहुत अधिक उन्नति की। मनुष्य ने क्रमशः प्रकृति के शक्ति के अनेक भण्डारों तथा विभिन्न साधनों का उपयोग करने की विधियां ढूंढ निकाली हैं। इसके अतिरिक्त प्रकृति ने शक्ति के स्रोतों का कुछ ऐसा बंटवारा

किया है कि जिन देशों में कोयला अधिक मिलता है वहां जल-विद्युत् उत्पन्न करने की सुविधाएं कम हैं और जहां कोयला कम है वहां विद्युत उत्पन्न करने की बहुत सुविधाएं हैं। जल से उत्पन्न होने वाली विद्युत की कुछ विशेषताएं भी है जिनके कारण यह शक्ति वर्तमान युग में बहुत आवश्यक बन गई है। ये विशेषताएं निम्नलिखित हैं: —

१. यह भाप की शक्ति से सस्ती और अधिक उपयोगी होती है।

२. यह शक्ति एक स्थान पर उत्पन्न करके दूर-दूर ले जाई जा सकती है। इस कारण कारखानों का एक ही स्थान पर जमघट होना आवश्यक नहीं है।

३ इस शक्ति के उपयोग से धुएं तथा गन्दगी की समस्या भी उत्पन्न नहीं होती।

४. यह शक्ति सदा रहने वाली है और अन्य शक्तियों की अपेक्षा बहुत शक्तिशाली है।

५. मशीनों के चलाने के साथ-साथ यह शक्ति और बहुत से कामों के लिये उपयोग में लाई जा सकती है।

६ इस शक्ति के उपयोग से कोयले की बहुत बचत होती है जो और दूसरे कार्यों के लिये उपयोग में लाया जा सकता है। एक होर्स पावर बिजली तैयार करने से सात टन कोयले की बचत होती है।

७. यह शक्ति देश के घरेलू धन्धों, कृषि आदि की उन्नति के लिये एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

इन सब बातों को देखते हुए विद्युत सर्व श्रेष्ठ शक्ति है। फ्रांस, बैलजियम, स्वीटजरलैण्ड, अमेरिका, इटली और रूस

इत्यादि देशों ने इस शक्ति द्वारा शिल्पकारी में बहुत उन्नति करली है। वास्तव में जल शक्ति एक अद्भुत शक्ति है। यदि किसी नदी के पानी को रोक कर उससे शक्ति उत्पन्न करने की योजना बनाई जाय तो यह शक्ति तथा धन समृद्धि का साधन सिद्ध होगी। इस के द्वारा उत्पन्न की गई विद्युत को शहरों में रोशनी करने, फैक्टरियों में मशीनों को चलाने, खेतों में पानी देने, गांव में घरेलू धन्धों की उन्नति करने और रेलों को चलाने के उपयोग में लाया जा सकता है। इस प्रकार पानी को वश में करके नावें आदि भी अधिक सुविधा से चलाई जा सकती हैं, बाढ़ रोकी जा सकती हैं, और जिस देश में कोयले की शक्ति की कमी हो वहां की नदियां उस देश की शिल्प की उन्नति का साधन बन सकती हैं। अनुमान लगाया गया है कि भारवर्ष की नदियों में प्रति सैकिन्ड २३ लाख क्यू० फुट पानी चलता है। इसमें कुल ६ प्रतिशत शक्ति का प्रयोग किया जा रहा है और ६४ प्रतिशत पानी व्यर्थ समुद्र में चला जाता है और साथ-साथ नाना प्रकार से हानि का कारण बनता है।

भारतवर्ष में जल से विद्युत उत्पन्न करने की सुविधाएं उपलब्ध है। शीघ्र ही भारतवर्ष इस सम्बन्ध में संसार के अन्य जल-विद्युत उत्पन्न करने वाले देशों में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेगा। भारतवर्ष की जल-विद्युत की शक्ति का अनुमान लगाने पर कहा जाता है कि भारतवर्ष में ३ करोड़ ६० लाख होर्स पावर शक्ति के साधन पर्याप्त हैं परन्तु अभी तक केवल ५ लाख होर्स पावर के लगभग जल विद्युत शक्ति उत्पन्न की गई है। इस प्रकार अभी तक भारतवर्ष ने अपनी जल-शक्ति की पूरी-पूरी उन्नति नहीं की। यह अनुमान लगाया गया है

कि भारतवर्ष में जितनी जल-शक्ति उत्पन्न की जा सकती है उसका केवल २ प्रतिशत अभी तक उत्पन्न की गई है। इस शक्ति की उन्नति आवश्यक है क्योंकि इस की सहायता से शिल्पकारी की उन्नति बहुत शीघ्र और सरलता से हो सकती है। वर्तमान काल के कारखाने बहुत गति से काम कर सकेंगे और वस्तुएं कम लागत पर निर्माण की जायंगी। भारतवर्ष जैसे गर्म देश में विद्युत शक्ति द्वारा रोशनी और बिजली के पंखों की हवा बड़े परिमाण में गांव तथा शहरों तक पहुँचाई जा सकती है और इस प्रकार यहां के रहने वालों के जीवन को अधिक सुखदाई बनाया जा सकता है। इस शक्ति द्वारा भारतवर्ष के बनों से अधिक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं, कृषि की उन्नति हो सकती है, खानों को काम में लाने में सहायता मिल सकती है, घरेलू धन्धों को फिर से उन्नत किया जा सकता है और देश की शिल्पकारी की उन्नति करके देश को एक समृद्धिशाली देश बनाया जा सकता है। भारतवर्ष में प्रत्येक प्रान्त में इस शक्ति ने थोड़ी बहुत उन्नति अवश्य की है जिसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है :—

१ **मैसूर**—इस स्थान पर सन १६०२ में सबसे पहले पानी से बिजली की शक्ति उत्पन्न करने का कारखाना कावेरी नदी के शिव समुद्र प्रपात पर लगाया गया था। यहाँ से १२ मील को दूरी पर कोलार की सोने की खानों में ६० मील की दूरी पर बेंगलोर में बिजली पहुँचाई जाती है। शिव समुद्रम से २५ मील नीचे मेकाडो के स्थान पर कावेरी में बन्द लगाकर और उसकी सहायक नदी समसा के जल प्रपात से भी बिजली उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है।

काश्मीर—इस देश का बिजली घर विचित्र है।

बारामुला के आगे झेलम नदी में जल प्रपात तो है परन्तु यह अधिक ऊँचा नहीं है। इस कारण इस स्थान से पहाड़ी के किनारे २ लकड़ी के बड़े घेरे में सात मील तक पानी पहुँचाया जाता है और फिर वह पानी बड़े नल से बिजली घर में छोड़ा जाता है जहाँ बिजलो तैयार होती है, जिससे बारामुला और श्रीनगर में रोशनी होती है। श्रीनगर का रेशम का कारखाना भी इसकी शक्ति से चलता है।

३ **पंजाब**—पंजाब में मन्डी प्रोजेक्ट प्रसिद्ध है जहां बिजली की शक्ति उत्पन्न की गई है। इस में मण्डो में व्यास नदी की एक सहायक नदी उहल नदी के जल को विद्युत् उत्पन्न करने के लिये उपयोग किया गया है। पंजाब के समीपवर्ती ज़िलों में इस से बिजली दी जा रही है। इस योजना द्वारा शिमला, अम्बाला, पटियाला तथा पूर्व में देहली, मेरठ और सहारनपुर तक बिजली पहुँचाई जाने का प्रयत्न किया जायेगा। यह कारखाने और रेल चलाने के काम भी आयेगी। इस के द्वारा गांव में रोशनी और सिंचाई आदि के लिये भी बिजली पहुँचाई जायगी। आजकल इसके द्वारा १५ लाख लोगों को जो पंजाब में ४६००० वर्ग मील में फैले हुये हैं बिजली पहुँचाई जाती है। अमृतसर के पास भी एक दूसरी योजना के आधीन बिजली तैयार की जाती है।

४ **मद्रास**—मद्रास में नीलगिरी पहाड़ से पायपकारा की सहायक नदी से बिजली तैयार की जाती है। ट्रावनकोर और हैदराबाद में भी बिजली के कारखाने हैं। मद्रास में पापानासम और जोग प्रपात की योजनाओं द्वारा बिजलो तैयार की जायगी।

५ **बम्बई**—बम्बई में टाटा का बिजली बनाने का कारखाना १९०८—१९०९ में स्थापित हुआ था। बम्बई प्रांत में भोर घाट के

ऊपर, लोनावाला में तीन बड़े २ बांध बंधवाये गये। यह पानी बड़ें २ नलों द्वारा एक हज़ार सात सौ पच्चीस (१७२५) फुट की ऊंचाई से खोपोली के पावर हाउस में छोड़ा जाता है। इतनी ऊंचाई से पानी गिरने से पानी के प्रति घन इन्च में ५ मन का दबाव हो जाता है। १९१५ से लोनावाला टाटा होड्रो इलेक्टिक वर्कस ने बम्बई के मिलों और ट्रामों को भी बिजली पहुँचाई। इसमें लगभग पोने दो करोड़ रुपये खर्च हुए। दूसरे वर्ष आंधरा घाटी में दूसरा बाँध बांधा गया और फिर लोनावाला से १२ मील की दूरी पर भी बिजली तैयार की गई जो ५६ मील की दूरी से बम्बई में भी पहुँचाई जाती है। १९१९ में ९ करोड़ रुपये की लागत से एक तीसरी कम्पनी स्थापित हुई जिसने नीलामूला के पास बाँध लगाकर बिजली तैयार की। इस स्थान से ५० मील की दूरी से बम्बई को भी बिजली पहुँचाई जाती है। इस स्थान से सौ मील की दूरी पर दक्षिण में एक और कम्पनी बनी जिसमें ९ करोड़ रुपये की लागत से बिजली तैयार की गई, जो बम्बई की नई मिलों को बिजली की शक्ति पहुँचाती है। ये सब कम्पनियां एक ही निरक्षण में काम करती हैं। इनके द्वारा २४६००० होर्स पावर बिजली तैयार की जाती है। यहां से बी. बी. सी. आई. आर. और जी. आई. पी. रेलों को भी बिजली मिलती है। बम्बई के सब कारखाने और ट्राम भी बिजली का उपयोग करते हैं।

६ यू. पी.—यू. पी. अर्थात् संयुक्त प्रान्त में एक छोटा सा प्लांट नैनीताल में स्थापित किया गया जिस से नैनीताल को बिजली दी जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ वर्ष हुए गंगा ग्रिड योजना (Ganges Grid Scheme) बन कर तैयार हुई। इस सेपश्चिमी जिलों में बिजली पहुँचाई जा रही है। कुछ जिलों में

बिजली की शक्ति से ट्यूब-वैल चलाये जाते हैं और गाँव में सिंचाई की जाती है। इस प्रान्त के कुछ पश्चिमी जिलों को नहर की योजना द्वारा बिजली मिलती है।

आसाम प्रान्त—में शिलांगमें एक छोटा सा प्लांट लगाया गया है। इस प्रान्त के कालिम पौंग तथा कुरसियाग जिलों के चाय के कारखानों को बिजली पहुँचाने के लिये भी एक योजना बनाई जा रही है।

स्थान २ का विवरण देखने से पता चलता है कि भारतवर्ष ने अपनी जल-शक्ति का बहुत कम उपयोग किया है। यदि भारतवर्ष की विद्युत का अन्य देशों से मुकाबला किया जाय तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। कैनेडा की विद्युत भारतवर्ष से १५ गुना है, अमेरिका की २६ गुना और रूस की ४५ गुना है। रूस ने तो अभी २ यह इतनी अद्भुत उन्नति की है। संसार के छोटे २ देश जैसे फ्रांस, स्विटज़रलैन्ड, नारवे, स्वींडन और जापान आदि देशों में से प्रत्येक देश में भारतवर्ष से ५ से १० गुना तक अधिक विद्युत पाई जाती है। न्यूज़ीलैन्ड जैसे देश में जिस की जन-संख्या केवल १० लाख है इतनी विद्युत है जितनी भारतवर्ष में पाई जाती है। संसार के भिन्न २ देशों में बिजली का प्रयोग निम्न प्रकार से है :—

देश	प्रतिएक विद्युत का प्रयोग
अमेरिका	१६०० K W H
स्विटज़रलैन्ड	१६४४ ,, ,,
स्विडन	२१०० ,, ,,
नारवे	३०६० ,, ,,
कैनेडा	४००० ,, ,,
भारतवर्ष	६.२ ,, ,,

भारतवर्ष में विद्युत की उन्नति की एक विशेषता यह भी है कि अधिकतर विद्युत शक्ति का विकास केवल नगरों की आवश्वकता को पूरा करने के लिये किया गया है। कलकत्ता और बम्बई दोनों नगर जहां भारतवर्ष की केवल १% जन संख्या रहती है, लगभग समस्त भारत की ५०% विद्युत उपयोग करते हैं और शेष ५०% भारतवर्ष की ६६% जन संख्या उपयोग करती है।

परन्तु भारतवर्ष में विद्युत की बहुत उन्नति की जा सकती है। यद्यपि वर्षा मौसमी होने के कारण इसकी उन्नति में कुछ कठिनाइयां अवश्य आती हैं परन्तु यह सब कठिनाइयां ऐसी हैं जिन्हें दूर किया जा सकता है। विद्युत की उन्नति की भारतवर्ष में आवश्यकता भी बहुत अधिक है। इसका कारण यह है कि भारतवर्ष में कोयला यथेष्ट नहीं है और जो कुछ कोयला है भी वह बंगाल और बिहार की कोयले की खानों में भरा है। इस कारण दूर के स्थानों पर उद्योग धन्धे खड़े नहीं किये जा सकते। अतएव भविष्य में देश की औद्योगिक उन्नति तेजी से करने के लिये यह आवश्यक है कि जल-विद्युत अधिकाधिक उत्पन्न की जावे। इसी उद्देश्य से भारतवर्ष की केन्द्रिय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों ने नई-नई योजनाएँ बनाई हैं जिसके पूरा हो जाने पर उन प्रान्तों में बिजली खूब उत्पन्न होगी जिनके द्वारा कृषि और उद्योग-धन्धों की भी उन्नति होगी। इन योजनाओं में मुख्य निम्नलिखित हैं:—

(२) **कावेरी नदी पर मेटूर बन्द की योजना**—इस बन्द की लम्बाई ५३०० फुट और ऊँचाई १७६ फुट है। इसमें १८२५००० घनफुट पानी की शक्ति है।

(२) **निज़ाम सागर बन्द**—यह भी एक बहुत प्रसिद्ध योजना है।

(३) दामोदर घाटी की योजना—यह योजना पूर्ण होने पर देश में एक अपूर्व योजना होगी। दामोदर नदी जो आज अपनी बाढ़ों के कारण बिहार के लिये एक अभिशाप बनी हुई है इस योजना के पूरे हो जाने पर हानिकारक होने की अपेक्षा ३००,००० किलोबाट विद्युत-शक्ति का साधन बनेगी। इस योजना द्वारा ७६०,००० एकड़ भूमि पर सिंचाई भी होगी। बाढ़ और मिट्टी का पानी के साथ बह जाना भी रुक जायगा। इस योजना पर ५५ करोड़ रुपये की लागत का अनुमान लगाया गया है। इस योजना के पूरे हो जाने पर कलकत्ते को भी उसकी बिजली मिल सकेगी और वहां के कारखाने भी बिजली से चल सकेंगे।

(४) हीराकुद योजना—यह योजना उड़ीसा प्रान्त के लिये है। इसकी लागत का अनुमान १६ करोड़ रुपये लगाया गया है।

(५) कोसी योजना—यह योजना कोसी नदी पर बिहार प्रान्त के लिये है।

इसके अतिरिक्त पंजाब में भाकरा बन्द योजना, हैदराबाद तुङ्गभद्रा योजना, चम्बल योजना मध्य प्रान्त में, आदि ८० योजनायें भारतवर्ष में विद्युत की उन्नति के लिये भिन्न २ प्रान्तों की सरकारों के आधीन चलाई जा रही हैं। इन सब योजनाओं के पूरा हो जाने पर भारतवर्ष में लगभग १४ लाख किलोवाट विद्युत उत्पन्न हो जायगी। इस प्रकार भारतवर्ष में नीचे लिखी तीन प्रकार की विद्युत की योजनाओं की पर्याप्त उन्नति कर सकेगी (१) औद्योगिक शहरों के लिये योजनाएं, (२) सिंचाई आदि के लिये विद्युत उत्पन्न करने की योजनाएं, (३) पहाड़ों पर बिजली पहुँचाने वाली योजनाएँ।

इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में खोज भी की जा रही है और पूना में इसका केन्द्र भी स्थापित कर दिया गया है। भिन्न २ प्रान्तों में भी इसकी खोज के केन्द्र स्थापित कर दिये गये हैं। आशा की जाती है कि सब योजनाओं के पूरे हो जाने पर भारतवर्ष भी संसार के उन्नतिशील देशों में एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेगा।

ऐलकोहल (Alcohal) यह भी शक्ति का एक स्रोत है। पेड़ों, झाड़ियों, पौदों तथा बेलों से यह शक्ति उत्पन्न की जा सकती है। भारतवर्ष के बनों में यह सब पेड़ बहुतायत से प्राप्त होते हैं। परन्तु अभी तक इसकी ओर ध्यान नहीं दिया गया। शक्कर से जो शीरा निकलता है उससे भी यह शक्ति उत्पन्न की जा सकती है। इस सम्बन्ध में कुछ प्रान्तों में अनुसन्धान हो रहा है।

अभ्यास के प्रश्न

(१) भारतवर्ष के प्राकृतिक विभाजन तथा विस्तार पर एक संक्षिप्त लेख लिखिये।

Write a brief essay on the physical divisions and extent of India.

(२) भारतवर्ष के लिये हिमालय क्या आर्थिक तथा अन्य प्रकार का महत्त्व रखता है?

What is the economic and otherwise importance of the Himalayas for India?

(३) भारतवर्ष के प्राकृतिक साधनों को विस्तार पूर्वक समझाइये।

Explain fully the natural resources of India.

४. भारतवर्ष के जलवायु का विवरण दीजिये और उसकी मुख्य विशेषतायें बताइए।

Describe the climate of India pointing out its chief characteristics.

५. भारतवर्ष की मिट्टियों पर एक विस्तृत लेख लिखिये।

Write a brief essay on the soils of India.

६. भारतवर्ष में वर्षा किस प्रकार होती है और उसकी क्या२ विशेषताएं हैं ? वर्षा का भारतवर्ष के लिये क्या महत्व है ?

How is rainfall caused in India? What are its chief charactristies? What is the importance of rainfall for India ?

७. किसी देश में वर्षा किन २ बातों पर निर्भर होती है ?

What factors determine the rainfall in a particular country ?

८. मौनसून पवनों की व्याख्या कीजिये। इन के द्वारा किस प्रकार भारत में वर्षा होती है ? भारतवर्ष की आर्थिक अवस्था पर इनका क्या प्रभाव पड़ता है ?

Explain Monsoon winds ? How do they cause rainfall in India ? How do they influence the economic prosperity of the country ?

६. भारत की बन-सम्पत्ति का विवरण दीजिये और बतलाइये कि भारत में कितने प्रकार के बन पाये जाते हैं।

What are the forest resources of India? Explain the types of forests that are found in India.

१०. बनों का आर्थिक महत्व क्या है ? यह कहना कहां तक उचित है कि बन किसी देश की बहुमूल्य सम्पत्ति है ?

What is the economic significance of forests ? How do you justify the statement ;—

"Forests are the assets of a Nation."

११. भारतीय बनों का धन्धा उन्नत नहीं हैं , इसके कारण स्पष्ट रूप से लिखिये ।

"Forest Industry in India is backward". Discuss and give reasons.

१२. भारतीय बनों पर कौन से धन्धे अवलम्बित हैं ? उनका संक्षिप्त विवरण दीजिये ।

What industries in India are dependent on forests ? Explain them briefly.

१३ भारत में कृषि से क्या २ वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं । देश के बटवारे से भारत की कृषि पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

What are the agricultural products of India ? How has the partition of the country influenced our agriculture. ?

१४. भारतवर्ष में निम्नलिखित वस्तुएँ कहाँ पैदा होती हैं ? कारण सहित लिखिये ।

चावल, गेहूँ, गन्ना, चाय, कपास, जूट, नील, जिप्सम, कहवा ।

Where are the following found in India ? Explain with reasons :-

Rice, wheat, sugar-cane, tea, cotton, jute, indigo and gypsum.

१५. भारतवर्ष के खनिज पदार्थों पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिये।

Write a critical noe on the mineral resources of India.

१६. भारत में कौन-कौन से मुख्य खनिज पदार्थ हैं और वे कहां मिलते हैं ? देश के बटवारे का इन पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

What are the chief minerals of India ? Discuss their distribution. How has the partition of the country inflenced their distribution ?

१७. भारतवर्ष के शक्ति के साधनों को विस्तृत रूप से समझाइये।

Explain fnlly the power resources of India ?

१८. वर्तमान युग में विद्युत शक्ति अधिक प्रिय तथा महत्वपूर्ण क्यों बनती जा रही है ? भारतवर्ष में इस शक्ति की वर्तमान स्थिति क्या है ?

Why is hydro-electric power becoming more popular and important day by day ? What is its present position in India ?

१९. भारतवर्ष में जल-विद्युत की उन्नति की क्यों आवश्यकता है ? यह उन्नति किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है ?

Why is the development of hydro electric necessary in India ? How can this development be achieved ?

२०. भारतवर्ष की अलकोहल शक्ति पर एक नोट लिखिये।

Write a note on the Alcohal power of India.

: ३ :

सामाजिक व्यवस्था तथा जनसंख्या

यह हम पहले बता चुके हैं कि किसी देश की आर्थिक उन्नति उस देश के रहने वालों के धार्मिक विचारों तथा दृष्टिकोणों पर भी बहुत अधिक मात्रा में निर्भर है। देश में भिन्न-भिन्न धार्मिक साम्प्रदायों का होना, जाति-पाति का भेद, से आर्थिफ उन्नति बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। यदि लोग दिन प्रतिदिन जीवन में पुराने हानिकारक विचारों और रीति रिवाजों पर अधिक भरोसा करते हों तो वह देश आर्थिक उन्नति में पीछे रह जाता है। समय के साथ-साथ संसार बदलता है। मानव समाज को भी अपनी ठीक व्यवस्था बनाने के लिये आवश्यकता अनुसार स्वयं को बदलना होता है ताकि परिवर्तित हुई परिस्थिति में मनुष्य को उन्नति करने में कोई कठिनाई अनुभव न करनी पड़े।

इसी उद्देश्य से भारतवर्ष की सामाजिक व्यवस्था का पूर्ण तथा आलोचनात्मक अध्ययन आवश्यक है। यदि हम भारतवर्ष की सामाजिक अवस्था पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न सामाजिक तथा धार्मिक संस्थायें हैं। इन सब संस्थाओं को निम्नलिखित शब्दों में वर्णित कर सकते हैं—

जाति पाति का भेद (Caste System)—

यह भारतवर्ष के समाज की सबसे पुरानी संस्था है। अभी तक भारत में यह स्थापित है। प्रारम्भ में आर्य लोगों ने श्रम विभाग के अनुसार समाज को चार भागों में बांट दिया था। मनुष्य अपने व्यवसाय के अनुसार ही एक विशेष संस्था का अनुयाई समझा जाता था। अपने व्यवसाय को बदल कर जाति को भी सुगमता से बदला जा सकता था। धीरे-धीरे जन्म के अनुसार ही प्रत्येक व्यक्ति की जाति निश्चित होने लगी। भेदभाव बढ़ता गया। इस प्रकार अब जाति पाति के कारण समाज भिन्न-भिन्न भागों में विभाजित हो गया है। प्रारम्भ में यह विभाजन कठिनाइयों को दूर करने के हेतु बनाया गया था। परन्तु अब इससे हानि होने लगी है। उस समय इससे निम्न लिखित लाभ थे :—

१. जाति पाति के कारण काम की बांट ठीक प्रकार हो गई और प्रत्येक व्यवसाय के लोग आवश्यकता के अनुसार मिलने लगे।

२. जाति पाति ने संतति की पवित्रता और गुणों को बनाये रक्खा।

३. इसके कारण एक जाति के व्यक्तियों में परस्पर सहानुभूति और भ्रातृप्रेम उत्पन्न हुआ और उसकी वृद्धि हुई।

४. जाति पाति ने बाहर के आक्रमणों का ठीक से सामना करने और अपने धर्म के हेतु सर्वस्व बलिदान करने की भावना लोगों के दिलों में उत्पन्न की।

५. इस के होने से बेटा अपने पिता का व्यवसाय ही ग्रहण

करता था। इसमें वह निपुण होता था क्योंकि बचपन से ही वह इसे सीखता था। इसके साथ ही अपने लिये एक उचित व्यवसाय को चुनने के कष्ट से बच जाता था। इसलिये भिन्न-भिन्न व्यवसाय वालों में परस्पर ईर्षा नहीं होती थी।

६. इसके होने से प्रत्येक व्यक्ति अपनी दशा में सन्तुष्ट रहता था क्योंकि वह अपने आपको एक जाति से सम्बन्धित समझता था।

७. प्रत्येक कार्य बहुत ऊंची शैली का होता था क्योंकि काम करने वाला अपने काम को जानता था तथा उसमें निपुण होता था।

८. भिन्न भिन्न जातियों के लोगों ने अपनी अलग अलग Gilds बनाली थीं जिससे जाति वाले अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते थे तथा अपनी आर्थिक उन्नति कर सकते थे।

उपरोक्त लाभ केवल प्रारम्भ में ही थे परन्तु अब जाति-पाति का होना हमारे देश की उन्नति में बाधक हो रहा है। सर राधाकृष्णन ने कहा है कि भिन्न भिन्न जातियाँ जो समाज की उन्नति के लिए स्थापित की गई थीं अब वही उनके नष्ट और दुर्बलता का कारण बन रही हैं। जाति पाति के भेद से निम्न-लिखित हानियां हैं:—

(१) मनुष्य के भाग तथा आर्थिक उन्नति का फैसला उसका किसी विशेष जाति में जन्म लेने से ही हो जाता है, उसकी योग्यता अनुसार नहीं। चमार, आदि योग्य होते हुए भी अधिक उन्नति नहीं कर सकते।

(२) आदमी का मान तथा मूल्य उसकी जाति के अनुसार किया जाता है। योग्यता के अनुसार नहीं।

(३) भिन्न २ जाति के लोगों में एक दूसरे के प्रति वैमनस्य भर दिया जाता है।

(४) शूद्रों से लोग अनुचित व्यवहार करते हैं और उन्हें उन्नति करने का अवसर नहीं देते।

(५, इसने हमारे समाज को भिन्न २ भागों में बाँट कर हमारी शक्ति को कम कर दिया है।

(६) कृषक लोग जाति पाति के भेद-भाव व छुआ छूत के कारण आधुनिक अच्छी खाद्य प्रयोग में नहीं लाते।

(७) भिन्न २ जाति के लोगों में एक दूसरे के प्रति सहानुभूति का अभाव है।

(८) छूआ-छूत के कारण लोग श्रम के महत्व को भूल गये हैं।

(९) इसके कारण हमारे समाज में नाना प्रकार की बुराइयां उत्पन्न हो गई हैं।

एक अर्थशास्त्रज्ञ ने कहा है :—

"This crazy patchwork quilt with no warmth in it is mainly responsible for the political disunity of India".

इसका अर्थ केवल इतना ही है कि इस बनावटी. बिना तथ्य वाली समाज रचना ने ही सामाजिक अथवा राजनीतिक एकता को खंडित किया है। इस जातिपाति के बन्धन ने ही हमें इस ओर उन्निनी करने से रोका है।

अब पाश्चात्य सभ्यता के आधीन यह भेद भाव मिटता जा रहा है। महात्मा गाधी जैसे नेताओं ने भी इस प्रथा को मिटाने का काम किया है।

सम्मलित कुटुम्ब प्रणाली (Joint Family System)-एक परिवार में एक पिता, उसके लड़के, लड़कियां, पोते,

पोतियां, स्त्री आदि के सम्मिलित रहने की प्रथा भी भारतवर्ष के समाज की एक विशेष बात है। हिन्दू लोग मिल जुल कर एक ही साथ रहना पसन्द करते हैं। घर में एक वृद्ध पिता की आज्ञा मानकर ही युवक अपने को धन्य मानता है। सारे मास का संचित किया हुआ धन जब पुत्र अपने पिता के चरणों पर रख देता है तब अपने को भाग्याशली समझता है। पिता भी पुत्र का यह उत्साह देख फूला नहीं समाता। प्रत्येक परिवार का प्राणी एक दूसरे के दुखों और कष्टों का साथी बनने का प्रयत्न करता है। वृद्ध पिता सब की देख भाल करता है। वही सारे परिवार की आर्थिक अवस्था का ज्ञान रख योग्य मार्ग दर्शित करता है। वही Family का बजट बनाता है। इस प्रकार की प्रणाली से निम्नलिखित लाभ हैं:—

१. परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को उसकी शक्ति और योग्यता के अनुसार काम करना पड़ता है।

२. परिवार में वृद्ध मनुष्यों, अनाथ बच्चों तथा विधवा स्त्रियों की रक्षा और सहायता हो सकती है।

३. सम्मिलित जीवन व्यतीत करने में खर्च में बचत होती है।

४. परिवार के होने से लोगों में परस्पर सहानुभूति, प्रेम, निस्वार्थ सेवा भाव उत्पन्न हो जाता है।

५. कृषि मिल जुलकर हो सकती है।

६. परिवार के लोगों में अपने बड़ों के प्रति आज्ञा पालन तथा सेवा करने की भावना उत्पन्न होती है।

७. रोग और आपत्ति के समय परिवार वाले एक दूसरे की सहायता कर सकते हैं और उसे हानि से बचा सकते हैं।

८. परिवार का प्रत्येक व्यक्ति एक अच्छा और सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है।

इससे कुछ हानियां भी हैं जो निम्नलिखित हैं :—

१. परिवार के छोटे व्यक्ति अपना उत्तरदायित्व नहीं समझते और ला परवाही से काम करते हैं।

२. परिवार के जो लोग दुर्बल होते हैं वह काम करने से सुगमता से बच सकते हैं।

३. रुपये की बचत कम होती है।

४. फिजूल खर्ची लापरवाही के कारण बढ़ जाती है।

५. नवयुवकों को कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता नहीं होती क्योंकि प्रत्येक बात में कुटुम्ब के सब से बड़े व्यक्ति की आज्ञा प्रधान होती है। वह अपने साहस से कोई कार्य नहीं कर सकते।

६. देश में पूंजी कम इकट्ठी होती है।

७. कुटुम्ब के अधिक योग्य और परिश्रमी व्यक्तियों को अधिक परिश्रम के अनुसार अधिक सुख तथा आनन्द नहीं मिलता।

यदि हम सूक्ष्म रूप से इन हानियों का अध्ययन करें तो हमें पता चलेगा कि ये हानियाँ कोई प्रणाली के द्वारा हैं, ऐसी बात नहीं हैं। परन्तु ये तो हमारे अपने व्यवहार के द्वारा निर्माण की हुई त्रुटियाँ हैं। यदि व्यवहार ठीक हो जावे और वृद्ध लोग समय अनुसार कुछ बदल जाँय तो यह कौटिम्बक प्रणाली अत्यन्त श्रेष्ठ है।

अब पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से Joint Family System भारतवर्ष में मिटता जा रहा है।

भारतवर्ष के लोगों के धार्मिक विचारों व सामाजिक संस्थाओं का यहां के लोगों की आर्थिक दशा पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। जीवन के प्रत्येक काम पर धार्मिक विचारों का प्रभाव पड़ता है। यहां के रहने वाले भाग्य पर अधिक भरोसा करते हैं। सांसारिक उन्नति पर अधिक ध्यान नहीं

देते परन्तु वे आत्मिक उन्नति को अधिक बढ़ाना चाहते हैं। पुरानी बातों तथा प्रथा को नहीं छोडना चाहते। धार्मिक प्रथाओं के लिये बहुत फिजूल खर्च करते हैं। जाति पाती तथा छुआ-छूत ने समाज की शक्ति को कम कर दिया है। उत्तराधिकारी होने के नियमों के कारण खेतों के छोटे छोटे टुकड़े हो गये हैं और वह सब बिखरे हुए हैं। लोग सुस्त और कमजोर हैं। संसार में उन्नति करने के अधिक इच्छुक नहीं होते और ना ही अधिक प्रयत्नशील होना चाहते हैं। धनोत्पत्ति के नये नये साधनों को प्रयोग में लाने से हिचकिचाते हैं। सब के साथ साथ स्वयं अपने आपको बदलना नहीं चाहते। यह बातें हमारी आर्थिक उन्नति में बहुत बाधक हुई हैं।

भारतवर्ष की जनसंख्या

भारतवर्ष का जन संख्या के सम्बन्ध में संसार भर के विभिन्न देशों में एक महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि भारतवर्ष में संसार के अन्य देशों की अपेक्षा बहुत अधिक लोग रहते हैं। बहुधा यह भी कहा जाता है कि संसार की कुल जनसंख्या का पाचवाँ भाग जनसंख्या भारतवर्ष में पाई जाती है अर्थात संसार में प्रत्येक पाचवाँ व्यक्ति एक भारतीय है। किसी देश की वर्तमान जनसंख्या और इसके भविष्य के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक है क्योंकि देश की जनसंख्या और आर्थिक परिस्थिति में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तव में जब देश के लिए भिन्न २ प्रकार की योजनायें बनायी जांय तो देश की जनसंख्या को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो उन योजनाओं के सफल होने को कोई विषेश आशा नहीं हो सकती।

भारतवर्ष की जनसंख्या के सम्बन्ध में १८७२ ई० से पूर्व की बातें बहुत कम ज्ञात हैं। मोरलैंड के कथनानुसार अकबर

की मृत्यु पर १६०५ ई० में भारतवर्ष की जनसंख्या लग भग १० करोड़ थी। ब्रिटिश सरकार के आधीन केन्द्र में शक्तिशाली राज्य स्थापित हो जाने पर देश में व्यवस्था सुधर जाने और शान्ति तथा अनुशासन स्थापित हो जाने पर देश की जनसंख्या ने उन्नीसवीं शताब्दी में उत्तरोउत्तर वृद्धि की। १८७२ के पश्चात् भारतवर्ष की जन-गणना नियमपूर्वक प्रत्येक १० वर्ष के पश्चात होने लगी। भिन्न २ जनगणनाओं के अनुसार भारतवर्ष की जनसंख्या निम्न प्रकार से थी :—

वर्ष	जन संख्या करोड़ों में
१८७२	२०.८
१८८१	२५.६
१८९१	२८.५
१९०१	२९.४
१९११	३१ ५
१९२१	३१.८
१९३१	३३.८
१९४१	३८.९
विभाजन के पश्चात	३२.०

ऊपर की तालिका से यह बात तो स्पष्ट है कि भारतवर्ष की जन संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई परन्तु यह वृद्धि न्यूनाधिक है। वृद्धि की इस भिन्नता का मुख्य कारण भारत में अकाल, तथा बीमारियों का होना या न होना है। जिन वर्षों में देश में अकाल अधिक पड़ा और बीमारियों से अधिक लोग मरे उन वर्षों में जनसंख्या में कम वृद्धि हुई परन्तु जिन वर्षों में देश इनसे बचा रहा उन वर्षों में जनसंख्या में अधिक वृद्धि हुई। १८७२ ई० और १८८१ ई० के मध्य में जनसंख्या में

अधिक वृद्धी का मुख्य कारण यह था कि १८८१ की जनगणना में और अधिक भागों को भी सम्मिलित कर लिया गया था। १८६१—१६०१ के मध्य कम वृद्धि इस कारण हुई कि इस मध्य में अधिकतर लोग अकाल और प्लेग से मृत्यु का शिकार हो गये थे। १६१८—१६ में भारतवर्ष में भयानक इफंल्युजं की वबा फैली जिससे लगभग १·३ करोड़ व्यक्ति मर गये। भिन्न-भिन्न जनगणनाओं के अनुसार भारतवर्ष में इस प्रकार जनसंख्या में वृद्धि हुई:—

	वृद्धि प्रतिशत
१८७२—१८८१	१·५
१८८१—१८६१	६·६
१८६१—१६०१	१·४
१६०१—१६११	६·४
१६११—१६२१	१·२
१६२१—१६३१	१०·६
१६३१—१६४१	१५·१

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतवर्ष में जनसंख्या वृद्धि करती गई। वैसे तो भारतवर्ष में संसार के अन्य देशों को अपेक्षा जनसंख्या बहुत अधिक है फिर भी यह कहना ठीक नहीं कि भारतवर्ष में अन्य देशों की अपेक्षा जनसंख्या में बहुत अधिक वृद्धि होती है बल्कि सत्य बात तो यह है कि संसार के अन्य उन्नतिशील देशों में भारतवर्ष से भी कहीं अधिक मात्रा में जनसंख्या में वृद्धि हुई है। जनसंख्या की वृद्धि के अध्ययन से यह बात भी स्पष्ट है कि १६२१—१६४१ के बीच भारतवर्ष में जनसंख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई। इसके मुख्य कारण निम्नलिखित थे:—

(१) पंजाब में सिंचाई की योजनाओं के कारण पंजाब में

जनसंख्या में बहुत वृद्धि हुई। बीकानेर और भावलपुर में जनसंख्या में वृद्धि होने के भी यही कारण थे। पश्चिमी बंगाल में कृषि की उन्नति के कारण जनसंख्या में वृद्धि हुई।

(२) १६३१ में जो जन-गणना हुई थी वह ठीक नहीं थी क्योंकि देश में राजनैतिक अशान्ति के कारण कुछ लोगों ने जन-गणना में सहयोग नहीं दिया था।

(३) १६४१ में देश में लोग जन-गणना को बहुत महत्त्व-पूर्ण समझते थे। इस कारण सब ने जनगणना में पूरा-पूरा सहयोग दिया। इसका मुख्य कारण देश में साम्प्रदायकता की भावना थी।

जनसंख्या का विभाजन

(१) गावों और नगरों में—निम्नांकित अङ्कों से इस बात का पता चलता है कि किस प्रकार नागरिक जनसंख्या में वृद्धि हुई:—

वृद्धि	नागरिक जनसंख्या
१६२१	१०.२ प्रतिशत
१६३१	११ प्रतिशत
१६४१	१२.८ प्रतिशत

इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग ८७ प्रतिशत लोग गावों में रहते हैं। परन्तु पाश्चात्य देशों में लोग नगरों में अधिक संख्या में रहते हैं। उन देशों में नगरों में लगभग ५०-८० प्रतिशत के बीच लोग रहते हैं।

भारतवर्ष में लगभग सात लाख गांव हैं और ४२०० नगर इनमें से ३००० नगर ऐसे हैं जिन की जनसंख्या १०,००० से कम है।

जनसंख्या की इस परिस्थिति से हमें पता चलता है कि

हमारा देश अभी बहुत पिछड़ा हुआ है। गांव में रहने वाले लोग बहुधा आलसी, संकुचित विचारों वाले, रीति रिवाजों में अधिक विश्वास रखने वाले और समय के साथ न बदलने वाले होते हैं। इससे यह भी पता चलता है कि देश की जन-संख्या का विभाजन तथा विस्तार उचित नहीं है और नगरों की जनसंख्या में बहुत कम वृद्धि हुई है।

इसके विपरीत हम यह भी देखते हैं कि बड़े-बड़े नगरों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। १९२१-४१ के बीच ५००००—१००,००० की जनसंख्या वाले शहरों की संख्या ६५ से ९५ हो गई, १००००-२०००० वालों की ५४३ से ७३२ और ५०००-१०००० वालों की ९८७ से ३०१७ हो गई है। १९३१ में एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले केवल ३५ नगर थे। १९४१ में इन की संख्या ५८ हो गई। इस प्रकार के नगरों में १९३१ में ९.१ प्रतिशत जनसंख्या रहती थी और १९४१ में १६.५ प्रति-शत। इस प्रकार इन बड़े नगरों की जनसंख्या में ८१ प्रतिशत की वृद्धि हुई जब कि समस्त भारतवर्ष की जनसंख्या में केवल १५ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

यदि हम इस दृष्टिकोण से देखें तो ज्ञात होता है कि नगरों की जनसंख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। इसके कारण देश की शिल्प की उन्नति तथा शहरी जीवन की सुविधायें आदि हैं।

(२) **व्यवसायों तथा पेशों के अनुसार**—भारतवर्ष में लगभग ६५.६ प्रतिशत लोग कृषि व्यवसाय में लगे हुए हैं, १०.३८ प्रतिशत शिल्पकारी में, ५.८ व्यापार तथा वाणिज्य, २.८६ प्रतिशत सरकारी दफ्तरों में, ७.१ प्रतिशत घरेलू नौकरी, ५.१ प्रतिशत अनिश्चित आय वाले कार्यों और शेष अन्य कामों में लगे हैं।

(३) भिन्न भिन्न साम्प्रदायों के अनुसार—भारतवर्ष में भिन्न भिन्न साम्प्रदायों की जनसंख्या इस प्रकार है :—

वर्ष	हिन्दू	मुसलमान	ईसाई	जैन	सिख	जंगली	अन्य
१९३१	६८.१	२२.१	१.८	.४	१.२	२.४	३.६
१९४१	६५.६	२३.८	१.६	.४	१.५	६.६	०.२

विभाजन के पश्चात् देश में ८७.७ प्रतिशत सब हिन्दू जातियां हैं और १२.३ प्रतिशत मुसलमान रह गये हैं।

४ पुरुष-स्त्री अनुसार—इस दृष्टिकोण से भारतवर्ष की जनसंख्या का अध्ययन करने से निम्नलिखित बातों का पता चलता है :—

वर्ष	प्रति १००० पुरुषों के साथ स्त्रियों की संख्या
१९११	९५४
१९२१	९४६
१९३१	९४०
१९४१	९३५

संसार के अन्य देशों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की आयु अधिक होती है। भारतवर्ष की परिस्थिति का अध्ययन करने से इस बात का पता चलता है कि भारतवर्ष में स्त्रियों की संख्या कम होती जा रही है। इसका कारण यह है कि हमारे देश में स्त्रियों को उतने स्वाभिमान की दृष्टि से नहीं देखा जाता जितना कि आवश्यक है। इसी कारण अधिक संख्या में स्त्रियां मृत्यु का शिकार होती हैं और विशेष कर उस समय जब कि उनके सन्तान उत्पन्न होती है। प्रान्तों के अनुसार

यदि हम देखें तो यह ज्ञात होता है कि पँजाब में सब से कम स्त्रियां हैं। प्रति १००० पुरुषों के साथ केवल ८४७ स्त्रियां हैं। भारत में मद्रास और उड़ीसा प्रान्त ऐसे हैं जहां स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है। निम्न अङ्कों से यह बात स्पष्ट है :—

	प्रति १००० पुरुषों के साथ स्त्रियों की संख्या	
	१९३१	१९४१
मद्रास	१०२१	१००९
उड़ीसा	१०८७	१०६९

भारतवर्ष की जनसंख्या की एक विशेषता यह भी है कि अन्य देशों की अपेक्षा भारतीय बहुत थोड़े समय तक ही जीवित रहते हैं। यह बात नीचे दिये अङ्कों से पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है :—

भिन्न भिन्न देशों के लोगों की औसत आयु

देश	आयू
न्यूजिलैंड	६७
ब्रिटेन	६२
जापान	४८
अमेरिका	६५
रूस	४४
भारतवर्ष	२७

इस दशा का मुख्य कारण भारतवर्ष के लोगों की निर्धनता है। हमारे देश के लोग इतने निर्धन हैं और उनकी आय इतनी कम है कि उन्हें जीवन की आवश्यक वस्तुएँ भी प्राप्त नहीं होतीं। भारतवर्ष में अन्य देशों की अपेक्षा मनुष्य जो इतने कम जीवित रहते हैं उसका कारण यह भी है कि भारतवर्ष

में बच्चों की मृत्यु बहुत अधिक संख्या में होती है और स्त्रियाँ भी अधिक संख्या में मृत्यु को प्रदान होती हैं।

भारतवर्ष की जन संख्या का घनत्व—किसी देश के विभिन्न भागों में जनसंख्या के विभाजन तथा मात्रा का अर्थ यह है कि उस देश में कितने मनुष्य प्रति वर्ग मील रहते हैं। वास्तव में एक देश के भिन्न-भिन्न भागों में जनसंख्या की मात्रा वहां की जलवायु, जीवन की सुविधाओं, प्राकृतिक वस्तुओं तथा उस देश की आर्थिक दशा पर आश्रित होती है। जो भाग इन बातों में अधिक उन्नति करता रहेगा उसकी जनसंख्या उत्तरोतर वृद्धि करती रहेगी। साधारणतया उस देश और देश के उन भागों की जनसंख्या अधिक होती है जहां पर उद्योग उन्नति पर हो और उन भागों की जनसंख्या थोड़ी होती है। जहां पर लोग कृषि द्वारा अपनी जीविका कमाते हों अर्थात उन भागों में जन-संख्या अधिक होती है 'जहाँ लोगों को काम सरलता से मिल जाता हो और धन भली भांति उपार्जन किया जाता हो। उन भागों में जन-संख्या बहुत कम होती है जहाँ मनुष्यों को काम मिलने में कठिनाई हो और धनोपार्जन बहुत कम मात्रा में किया जाता हो। भारतवर्ष एक ऐसा देश है जिसमें अभी तक उद्योग की उन्नति नहीं हुई है, मनुष्य कृषि द्वारा ही अपनी जीविकोपार्जन करते हैं। इस कारण भारतवर्ष में जन-संख्या प्रति वर्ग मील कम है। भारतवर्ष में तथा देशान्तरों में प्रति वर्ग मील जन-संख्या इस प्रकार है:—

	जन-संख्या प्रति वर्ग मील		जन-संख्या प्रति वर्ग मील
इंगलैण्ड	७०३	जापान	२५०
बेलजियम	७०२	भारतवर्ष	२४६

नीदरलैण्ड	६३६	अमेरिका	४१
जर्मनी	३५२	मिश्र	३४

भारतवर्ष में विभिन्न जन-गणनाओं के समय जन-संख्या इस प्रकार बढ़ती रही:—

भारतवर्ष की जनसंख्या का घनत्त्व

	सम्पूर्ण भारत	बृटिश भारत	देशीराज्य
१६०१	१७६	२५४	८८
१६११	१६१	२६७	१००
१६२१	१६३	२६६	१०१
१६३१	२१३	२६६	११४
१६४१	२४६	३४१	१३०
१६४८	२६२	(विभाजन के पश्चात्)	

इससे स्पष्ट है कि भारतवर्ष में प्रत्येक जन-गणना के समय जन-संख्या वृद्धि करती रही किन्तु यह अवश्यमेव ध्यान रखना चाहिये कि यह तो केवल एक औसत है। वास्तव में जन-संख्या की मात्रा प्रत्येक प्रान्त में भिन्न २ है। इस बात का पता नीचे दिये अङ्कों से चलता है।

भिन्न २ प्रान्तों की प्रति वर्गमील जनसंख्या इस प्रकार है:—

बंगाल	७७६
बिहार	५२१
उड़ीसा	२७१
यू० पी०	५१८
मद्रास	३६१

पंजाब	२८७
बम्बई	२५२
मध्य प्रान्त और बरार	१७०
आसाम	१८६
राजपूताना	६१
दिल्ली	१५००
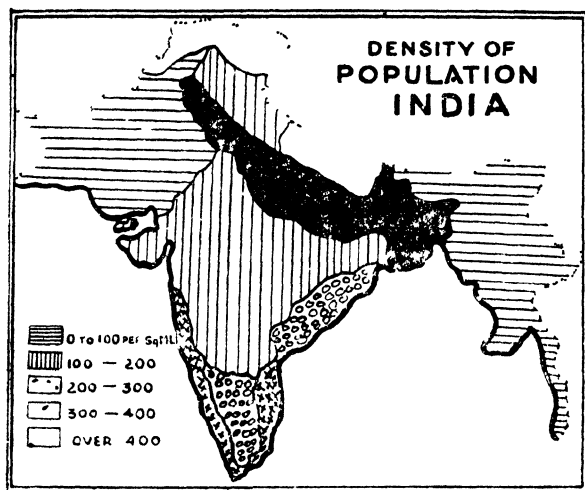
विभिन्न भागों में जन-संख्या की मात्रा उन भागों की उत्पादन शक्ति तथा उन्नति पर निरभर होती है। क्योंकि भारतवर्ष एक कृषक देश है इसमें जन-संख्या: कृषि की दशा के अनुकूल घटती तथा बढ़ती रहती हैं। जिन स्थानों पर कृषि की उन्नति होती है तथा व्यक्ति जीविकोपार्जन सरलता से कर सकते हैं वहाँ जन-संख्या सर्वदा अधिक होती है। क्योंकि भारत कृषि की दशा पर आश्रित है इसलिये हमको

यह देखना चाहिये कि कृषि किस भांति उन्नति करती है। कृषि की उन्नति निम्नलिखित बातों पर निर्भर है।

वर्षा एवं सिंचाई—कृषि में वर्षा का एक बड़ा महत्व है। साधारणतया ४० अथवा ४५ इंच वर्षा भारतीय कृषि के लिये उचित है। यदि वर्षा इसके लगभग हो तो जन-संख्या अधिक होती है और यदि इससे कम अथवा अधिक हो तो जन-संख्या कम होती है। इस प्रकार यदि सिंचाई द्वारा वर्षा के अभाव की पूर्ति करली जाय तब भी जन-संख्या अधिक होती है। जैसे जिला लायलपुर में वर्तमान जन-संख्या ४०० व्यक्ति प्रति वर्ग मील है जब कि सन् १८६१ के पूर्व यहाँ केवल ७ व्यक्ति प्रति वर्ग मील थी।

२. भूमि की दशा—कृषि और उत्पादन पूर्णतया भूमि पर निर्भर होती है। मैदानी भागों में उत्पादन अधिक मात्रा में होता है और इसी कारण वहाँ जन-संख्या अधिक होती है जैसे पूर्वी बगांल एवं यू. पी.। किन्तु पथरीले तथा ऊंचे नीचे स्थानों पर पैदावार बहुत कम होती है और इसी लिये वहाँ की जन-संख्या थोड़ी होती है।

३. भूमि की विशेषता—भूमि का उपजाऊ होना भी उत्पादन का बड़ा सहायक है। जहाँ भूमि उपजाऊ हो वहाँ की जन-सख्या बहुत अधिक होती है परन्तु इसके साथ साथ वर्षा भी आवश्यक है। वर्षा के बिना भूमि का उपजाऊ होना व्यर्थ है।

४. जलवायु—चलवायु का भी देश की जन-संख्या पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि जलवायु अच्छी न हो तो जन-संख्या बहुत थोड़ी होती है। इसके अतिरिक्त कभी कभी

जन-संख्या मनुष्यों के स्वभाव के अनुसार भी परिवर्तित हो जाती है। अनेक मनुष्य घर से बाहर निकलना ही पसन्द नही करते।

५. **आर्थिक उन्नति का प्रभाव**—भी पड़ता है। जो देश उद्योग धंधों में अधिक उन्नति-शील होते हैं वहाँ जन-संख्या अधिक होती है। भारतवर्ष में ८४ % लोग गाँव में रहते हैं और १६% शहर में।

६. जिन भागों में चावल उत्पन्न होते हैं वहाँ अधिक संख्या में लोग रह सकते हैं। गेहूँ वाले भागों में उतने लोग नहीं रह सकते।

नीचे के कोष्ठक में भारतवर्ष की जन-संख्या के घनत्व की तुलना केवल उन देशों की जन-संख्या के घनत्व से की गई है जहां कृषि उद्योग महत्वपूर्ण स्थान रखता है:—

	प्रति वर्ग मील जन-संख्या	वर्ष
फ्रांस	१८४	१९३१
अमेरिका	४१	
न्यूजिलैण्ड	१२	
मिश्र	३४	
भारतवर्ष	२४६	१९४१

ऊपर की सूचना से यह बात स्पष्ट है कि भारतवर्ष में अन्य कृषिक देशों की अपेक्षा जन-संख्या बहुत अधिक है। इस के फल स्वरूप कृषि पर अधिक बोझ पड़ गया है और देश की कृषि ने उतनी उन्नति नहीं की जितनी कि देश की जन-संख्या ने वृद्धि की है। १९०१-१९४१ के बीच भारतवर्ष की जन-संख्या में ३२ प्रतिशत की वृद्धि हुई। कृषि के उद्योग में जो भूमि प्रयोग

में लाई जाती थी उस के क्षेत्रफल में केवल १३ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस ४० वर्ष की अवधि में खाद्य पदार्थों की भूमि के क्षेत्रफल में केवल ५.३ प्रतिशत की वृद्धि हुई। १९३९-१९४५ के बीच भारतवर्ष ब्रह्मा और आस्ट्रेलिया से भी प्रथक हो गया था इस के परिणाम स्वरूप भारतवर्ष में खाद्य पदार्थों की बहुत कमी पड़ गई और भारतवर्ष के कुछ भागों में लोगों को अकाल से बहुत सी कठिनाईयां उठानी पड़ीं। इन में बंगाल प्रान्त का अकाल बहुत भयानक था।

भारतवर्ष की जन समस्या

ऊपर के विवरण से यह बात स्पष्ट है कि यदि भारतवर्ष की जन-संख्या देशान्तरों की जन-संख्या से मिलाई जाय तो ज्ञात होता है कि यह अनेक बातों में उनसे भिन्न है। इस देश की जन-संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है। भारतवर्ष संसार के देशों में जन-संख्या में सब से आगे बढ़ा हुआ है। समस्त संसार की जन-संख्या का ⅕ भाग इस देश में बसा हुआ है और इसके होते हुए भी जन-संख्या बढ़ रही है। १९४१ की जन-गणना के अनुसार भारतवर्ष की जन-संख्या में ५ करोड़ जन-संख्या की वृद्धि हुई है। इस देश की जन-संख्या सबसे अधिक बढ़ी है। भारतवर्ष की सम्पूर्ण जनता ३२ करोड़ है। यद्यपि इस देश में बढ़ती हुई जन-संख्या के लिये भोजन प्राप्त करना महान् कठिन है फिर भी इस देश की जन-संख्या उत्तरोत्तर वृद्धि कर रही है। इस लिये भारतवर्ष की जन-संख्या की सबसे बड़ी विशेषता इस का प्रति दिन वृद्धि करना है।

इसके अतिरिक्त इस देश में मृत्यु व उत्पत्ति संसार के अन्य देशों की अपेक्षा अधिक होती है। बच्चे उत्पन्न होने की संख्या भारतवर्ष में सबसे अधिक है। सरकार की गणना के

अनुसार तो इसे ३५ प्रति हज़ार प्रति वर्ष बताते हैं किन्तु वास्तव में यह इससे अधिक है। डाक्टर ज्ञानचन्द इसको ४८ प्रति हज़ार प्रति वर्ष बताते हैं। यह संख्या देशान्तरों से कहीं अधिक है। अमेरिका में बच्चों की उत्पत्ति १७ प्रति हज़ार है और फ्रान्स व जर्मनी में १६ प्रति हज़ार है। इस प्रकार इस देश की उत्पत्ति की संख्या इन देशों की संख्या की दुगनी से भी अधिक है। यह स्पष्ट है कि जिस स्थान पर उत्पत्ति अधिक होगी वहां प्राय: मृत्यु भी अधिक होती है। भारतवर्ष में वर्षिक मृत्यु २२ प्रनि हज़ार होती है। जबकि फ्रांस में १५, जर्मनी में १२ एवं अमेरिका में १० प्रति हज़ार होती है। इस प्रकार भारतवर्ष में उत्पत्ति व मृत्यु के पश्चात् वार्षिक वृद्धि की संख्या (Survival Rate) १३ प्रति हज़ार है। इस देश में उत्पत्ति व मृत्यु की यह संख्या यहां की रीति रिवाज, बाल-विवाह, जनता की कगाली व अशिक्षा के कारण है।

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष की जन-संख्या की एक और विशेषता यह है कि प्रत्येक स्थान पर जन-संख्या एक ही मात्रा में नहीं है। अर्थात् किसी भाग में कम व किसी भाग में अधिक। यह सब भूमि की उत्पत्ति, ग्राम व शहर होने अथवा जीवन की आवश्यकतायें प्रप्त होने पर निर्भर है। भारत की जन-संख्या की एक अन्य विशेषता यह है कि जनता अधिकतर कृषि द्वारा अपनी जीविकोपार्जन करती है। इस देश में उद्योग की अधिक उन्नति नहीं हुई है। जनता की रुचि-उद्योग की ओर नहीं है और वह कृषि में लगे हुए हैं।

अब यह प्रश्न उठता है कि यदि भारत की जन-संख्या बढ़ रही है तो क्या इस समय यहां की जन-संख्या अधिक है? क्या भारतवर्ष इतनी जनता का निर्वाह नहीं कर सकता? क्या इस समय जनता भूखी मर रही है? क्या भारतवर्ष में सर्वदा

इससे कम जन-संख्या होनी चाहिए ? कुछ मनुष्यों का कहना है कि इस देश की जन संख्या अधिक है। किन्तु कुछ इसके प्रतिकूल हैं। वह कहते हैं कि भारत में इससे भी अधिक जनता के लिये भोजन प्राप्त हो सकता है।

मालथ्यूज़ियन थ्योरी (Malthusian Theory) के अनुसार एक देश की जन-संख्या को अधिक उस समय कहा जाता है जब कि उस देश में जन-संख्या को पूर्ण रूपेण भोजन प्राप्त न हो सके और इस कारण उस देश में अकाल, रोग एवं अधिक मृत्यु होती है। वास्तव में भारत की जन-संख्या वृद्धि कर रही है तथा जनता को पूर्ण भोजन नहीं प्राप्त होता। बङ्गाल का १९४३ का अकाल इस बात का प्रमाण है। इसीलिये इस देश में भोजन के अभाव से प्रकट होता है कि यहाँ की जन-संख्या बहुत अधिक है। इसके साथ भारतवर्ष में उत्पत्ति व मृत्यु-संख्या भी अधिक है और इस प्रकार भी यहाँ की जन-संख्या अत्याधिक है। इस देश में विभिन्न प्रकार के रोग फैलते हैं जिसके कारण प्रतिवर्ष अनेक मनुष्य रोगी होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं तथा भारतवासियों की आयु बहुत थोड़ी है। इस लिये इस देश की जन-संख्या अधिक है।

किन्तु इस थ्योरी (Malthusian Theory) को भी दोषयुक्त कहा गया है। कहा जाता है कि एक देश में एक नियत जन-संख्या को कम अथवा अधिक नहीं कहा जा सकता। इसका थोड़ा या अधिक होना कई बातों पर आश्रित है : इस लिये मालथ्यूजियन थ्योरी की अपेक्षा उचित जन-संख्या के नियम (Optimum Population Theory) को अधिक उत्तम समझा गया है। इस थ्योरी के अनुसार जन-संख्या की सब से उचित मात्रा वह होती है जिसमें जनता अधिक सुख पूर्वक रहे।

इस प्रकार यदि हम भारत पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट है कि भारतवासी सुखी नहीं हैं। उनकी आय बहुत थोड़ी है। वह बड़ी कठिनाई से अपना निर्वाह करते हैं। निसन्देह भारतवर्ष में धनोपार्जन के असंख्य साधन हैं किन्तु इन सब को भली-भांति जनता की उन्नति के लिये प्रयोग नहीं किया गया है। इसलिये यदि वर्तमान दशा में भारतवर्ष की जन-संख्या कुछ कम हो जावे तो सम्भव है कि मनुष्यों की आय में निश्चय ही कुछ न कुछ वृद्धि होगी तथा वह पहले की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह अपना निर्वाह कर सकेंगे। इस कारण वर्तमान दशा के अनुसार भारतवर्ष की जन-संख्या के लिये इस देश में भोजन अप्राप्त है।

भारत की इस वृद्धि करती हुई जन-संख्या को रोकना अति आवश्यक है। यदि यह जन-संख्या बिना रुकावट इसी भांति वृद्धि करती चली गई तो स्थिति के इससे भी अधिक बिगड़ जाने की सम्भावना है। किन्तु फिर यह प्रश्न उठता है कि इसका क्या प्रबन्ध है। इसका सबसे प्रथम यह प्रबन्ध है कि इस देश के उत्पादन को अधिक से अधिक वर्तमान व सफल ढंग पर लाकर अधिक मात्रा में भोजन उत्पन्न किया जाय। देश में उद्योग की असाधारण उन्नति की जाय। भारतवासियों को अधिक संख्या में शिक्षित, सभ्य एवं उद्योगिक बनाया जाय जिससे वह स्वदेश की उन्नति में बड़ी मात्रा में प्रयत्नशील हों। इसके साथ-साथ भारतवासियों के हृदय से उन प्राचीन व प्रौढ़ विचारों को दूर करना चाहिये जिनसे वह सन्तान उत्पन्न करने में कोई अभाव नहीं करते। उनको भली प्रकार जीवन यापन करने के लिये उत्सुक किया जाय तथा बच्चों की संख्या कम से कम करने का प्रयत्न किया जाय। ब्रह्मचर्य तथा ऐसे ही अन्य साधनों द्वारा उनके हृदयों से जन-संख्या में वृद्धि करने

का विचार त्याग कराना चाहिये जिससे उनकी एवं सम्पूर्ण देश की उन्नति हो।

इसलिये भारतवासियों के लिए अति आवश्यक है कि इन साधनों द्वारा देश की स्थिति सुधारने का जो तोड़ साहस करें और स्वदेश की बड़ी मात्रा में उन्नति करें।

जन-संख्या की उचित मात्रा किसी देश की आर्थिक उन्नति के साथ परिवर्तित होती जाती है। ज्यों ज्यों कोई देश आर्थिक उन्नति करता जाता है, त्यों-त्यों वह देश अधिक संख्या मे प्रति वर्ग मील जनसंख्या का निर्वाह कर सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि एक उन्नतिशील-कृषिक देश की अधिक से अधिय २५० प्रति वर्ग मील जनसंख्या होनी जाहिये परन्तु भारतवर्ष के बहुत से भागों में इससे बहुत अधिक जन-संख्या है। इस बात को यहां अधिक स्पष्ट करने की आवश्य-कता नहीं क्योंकि पहले ही भिन्न भिन्न प्रान्तों के जनसंख्या के घनत्त्व द्वारा इस बात को सिद्ध कर चुके हैं।

मालथस का नियम और भारतवर्ष

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में विलायत के एक पादरी थौमस मालथस ने जनसंख्या के विषय में एक नियम बनाया जिसको "मालथ्यूजियन थ्योरी (Malthusian Theory) कहते हैं। इस नियमानुसार उसने बताया है कि एक देश की जनसंख्या उसके खाद्य-पदार्थों के उतपादन की अपेक्षा वहुत अधिक मात्रा में वृद्धि करती है। यदि जनसंख्या की वृद्धि को न रोका जाय तो एक दिन शीघ्र ही ऐसा आ जाता है जब कि जनसंख्या इतनी अधिक हो जाती है कि उसके लिये भोजन प्राप्त नहीं हो सकता। इस वृद्धि करती हुई जनसंख्या को रोकने के दो साधन हैं—एक तो प्राकृतिक और मनुष्यकृत।

मनुष्यकृत साधन ब्रह्मचर्य, बर्थ-कन्ट्रोल, देर को विवाह इत्यादि के रूप में प्रयोग में लाये जा सकते हैं। किन्तु जब मनुष्य स्वयं इनका प्रयोग नहीं करता तो प्रकृति जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के लिये अन्य साधनों का प्रयोग करने के लिये विवश हो जाती है। यह अकाल, रोग, युद्ध आदि के रूप में प्रकृति की ओर से प्रकट होते हैं।

यह नियम मालथस ने १७६८ ई० में सम्पूर्ण संसार के देशों की जन-संख्या के विषय में बनाया था। किन्तु इसमें अनेक त्रुटियां रह गई थीं फिर भी हम अब यह देखेंगे कि यह नियम भारतवर्ष पर किस भाँति एवं किस रूप में लागू होता है।

भारतवर्ष एक निर्धन देश है। यहां के निवासी अनपढ़ हैं। वह जन-संख्या को रोकने के लिये कृत्रिम साधनों का प्रयोग नहीं जानते। इस कारण इस देश में जन-संख्या खाद्य-पदार्थों के उत्पादन से बढ़ी हुई है। क्योंकि मनुष्यों द्वारा जन-संख्या को कम करने के लिये कोई उपाय नहीं किया जाता इस कारण प्रकृति अपने साधनों को प्रकट करने पर विवश हो जाती है। इस देश में बहुधा मनुष्यों को भूख, अकाल, रोग एवं युद्ध का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार उनकी जन-संख्या कम की जाती हैं। इस लिये मालथ्यूज़ियन थ्योरी भारतवर्ष पर लागू होती रहती है।

इस देश में खाद्य पदार्थों का उत्पादन भी आवश्यकता से कम होता है। इसलिये यहाँ की बढ़ती हुई जन संख्या प्रति-दिन शोचनीय रूप धारण करती जा रही है। भारतवर्ष एक बहुत प्राचीन देश है। यहाँ की जन-संख्या अत्याधिक है। किन्तु यहाँ के खाद्य पदार्थों का उत्पादन Law of Diminishng Returns के कारण शनैः शनैः घट रहा है। खाद्य

पदार्थों का उत्पादन बड़ी कठिनता से बढ़ता है और इसके लिये अधिक प्रयत्न करना पढ़ता है। देश में सिंचाई का अधिक अभाव है और जनता की निर्धनता के फलस्वरूप खाद्य-पदार्थों का आयात् भी बहुत कम मात्रा में होता है। न तो कृषि से ही देश में धन की उत्पत्ति बढ़ती है और न ही यहां पर उद्योग बड़ी मात्रा में उन्नति कर सका है। भारतवर्ष में वैसे तो अभी तक बड़े कारखाने स्थापित ही नहीं हुए हैं और यदि हुए भी हैं तो उन्हें विभिन्न प्रकार की कठिनाइयां सहन करनी पड़ती हैं। अभी तक भारतवर्ष परतन्त्र था और व्यापारिक उन्नति के द्वारा इसके लिये बन्द थे। अब जब यह स्वतन्त्र हो गया है निस्सन्देह यह आशा करली जाये कि यह भी संसार के अन्य देशों की भाँति उन्नति करेगा।

खाद्य-पदार्थों एवं धन की उत्पत्ति की तो यह दशा है किन्तु जहाँ तक जन-संख्या की वृद्धि का सम्बन्ध है भारतवर्ष की जलवायु व रीतियां जन-संख्या को अधिक वृद्धि करने में सहायक है। यहाँ की जलवायु गर्म है और इस लिये भारतीय लड़के व लड़कियाँ शीघ्र ही युवा हो जाते हैं और इस प्रकार बच्चे भी शीघ्र ही जन्म लेना आरम्भ कर देते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय रीति के अनुसार प्रत्येक हिन्दू लड़की का विवाह करना आवश्यक समझा जाता है जिससे जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। भारतवासी ब्रह्मचर्य एवं बर्थ कन्ट्रोल जैसे अमूल्य साधनों से अपरिचित हैं। उनको अपने जीवन के पद का कोई ध्यान नहीं है। विवाह की रीति इतनी प्रचलित है कि भारतवर्ष के भिखारी भी विवाह करते हैं। इस कारण यहां कंगाली व रोग फैले हुए हैं। यदि किसी वर्ष कोई खेती नष्ट हो जाय तो देश में अकाल पड़ जाता है। भारतवर्ष में अकाल, रोग और निर्धनता के कारण इतनी मृत्यु

होती हैं कि इस देश की मृत्यु-संख्या सम्पूर्ण संसार के देशों से अधिक है।

क्योंकि इस देश में जन-संख्या खाद्य-पदार्थों की अपेक्षा अत्यन्त अधिक वृद्धि कर रही है, उसको रोकने के लिये मनुष्य प्रयत्नशील नहीं होते इसलिये प्रकृति को विवश होकर जन-संख्या को घटाने के साधन प्रयुक्त करने पड़ते हैं। फलत: भारतवर्ष में मालथस का जन-संख्या का नियम वर्तमान अवस्था में लागू होता है।

अन्य देशों की जनसंख्या की समस्या का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि योरप के देशों में भी जनसंख्या में बहुत वृद्धि हुई। इस बात का पता हमें नीचे के अङ्कों से चलता है:—

देश	जनसंख्या करोड़ों में		वृद्धि प्रतिशत
	१८७०	१६३०	
जर्मनी	४·१	६ १	५६
इटली	२·७	४·१	५२
फ्रांस	३·७	४·०	८
इंगलैंड और वेल्स	२·२	४·०	७६
योरप	३०·८	५०·६	६४
भारतवर्ष	२६·५	३५·३	३३

इन अङ्कों से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि योरप में फ्रांस को छोड़ कर अन्य सब देशों में १६११-२१ के मध्य भारतवर्ष से कहीं अधिक मात्रा में जन संख्या ने वृद्धि की यद्यपि इस समय में योरप में प्रथम महायुद्ध भी हो चुका था।

इस प्रकार केवल जन संख्या के बढ़ने से ही मालथस का नियम लागू नहीं होता। यदि जन संख्या बढ़ती रहे और देश में शिल्प की उन्नति न हो, धनोपार्जन न बढ़े तो फिर मालथस

के नियम की कुछ बातें प्रकट होने लगती हैं। वर्तमान परिस्थिति में तो यह नियम कुछ मात्रा में भारतवर्ष पर लागू होता ही है।

भारतवर्ष में बच्चों की अधिक संख्या में मृत्यु के कारण

भारतवर्ष में बच्चों की मृत्यु संख्या अधिक है। सभ्यता एवं उन्नति की दौड़ के साथ साथ भारतवर्ष में इसकी रोक-थाम के साधन न तो भली-भांति प्रयोग में लाये गये हैं और न ही उनका कोई लाभ हुआ है। वैसे तो बच्चे सम्पूर्ण भारत-वर्ष में अधिक मरते हैं परन्तु बड़े बड़े नगरों व उद्योगिक स्थानों जैसे बम्बई, अहमदाबाद, शोलापुर नागपुर, कानपुर, टाटानगर, मोदीनगर तथा देहली आदि में बच्चे भारत के अन्य भागों से बहुत अधिक कालग्रस्त होते हैं। समस्त संसार में बच्चे सबसे अधिक भारतवर्ष में मृत्यु को प्राप्त होते हैं। भारतवर्ष में जितने बच्चे उत्पन्न होते हैं उनका चौथा भाग एक वर्ष के अन्दर ही अपना जीवन खो बैठते हैं। भारतवर्ष की समस्त मृत्यु में आधा भाग १० वर्ष से कम अवस्था के बच्चों का होता है। भारतवर्ष में बच्चों की इतनी बड़ी मात्रा में मृत्यु ग्रस्त होने के अधोलिखित कारण हैं :—

१. माँ के शरीर की निर्बलता—भारतवर्ष में स्त्रियों को पौष्टिक एवं अच्छा भोजन न मिलने के कारण उनका स्वा-स्थ्य एवं शरीर निर्बल हो जाता हैं। जब उनके बच्चे उत्पन्न होते हैं तो वह अत्यन्त दुर्बल होते हैं। यह बात स्पष्ट है कि स्वस्थ माता पिता की सन्तान स्वस्थ एवं दुर्बल माता पिता की दुर्बस सन्तान उत्पन्न होती है। बच्चा अपनी निर्बलता के कारण शीघ्र ही मृत्यु की भेंट हो जाता है।

२. अस्पतालों व डाक्टरों का अभाव—भारतवर्ष में

सिद्ध डाक्टरों व अस्पतालों का अत्यन्त अभाव है। ग्रामों में तो अच्छे डाक्टर व अस्पताल मिलना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। यह सब जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते। भारतवर्ष में डाक्टरों व नर्सों के अभाव का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में केवल ४२ हजार डाक्टर एवं साढ़े चारहजार नर्स हैं। बच्चों को उचित देख भाल न हो सकने के कारण वह विभिन्न प्रकार के रोगों में ग्रस्त हो जाते हैं।

३. स्वास्थ्य के नियमों से अनभिज्ञता—भारतवासी अशिक्षित होने के फलस्वरूप स्वास्थ्य के नियमों को बिलकुल नहीं जानते। वे बच्चों के पालन पोषण के वर्तमान साधनों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। भारतवर्ष की अधिकांश जनता पूर्व व प्रौढ़ विचारों से परिपूर्ण हैं। दाइयां, जो बच्चा उत्पन्न होते समय समस्त घरों में काम करती हैं इस काम के सर्वथा अयोग्य हैं। माता पिता की अशिक्षा व अन्धविश्वास के कारण भी अनेक बच्चे व्यर्थ ही मृत्यु की भेंट हो जाते हैं।

४. निर्धनता—बच्चों की मृत्यु का वास्तविक कारण भारतियों की निर्धनता है। वह इतने कङ्गाल हैं कि अपनी सन्तान के लिये उचित डाक्टर, नर्स व औषदि आदि का भी प्रबन्ध नहीं कर सकते। कङ्गाली के कारण वह बच्चों का पालन-पोषण नहीं कर सकते और इसीलिये बच्चे शीघ्र ही कालग्रस्त हो जाते हैं।

किन्तु औद्योगिक स्थानों की दशा इससे भी शोचनीय है। ऐसे स्थानों पर माता पिता मिल या कारखानों में काम करते

हैं। स्त्रियां कारखानों में काम करने के कारण स्वास्थ्य हीन व दुर्बल हो जाती हैं तथा उनके बच्चे भी निर्बल होते हैं जो कि शीघ्र ही कालग्रस्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त क्योंकि यह लोग अत्यन्त निर्धन होते हैं, स्त्रियां संतनोत्पत्ति के समय तक भी कारखानों में काम करने जाती हैं। उनको मजदूरी का इतना लोभ होता है कि उसके लिये अपने व अपनी सन्तान के स्वास्थ्य पर कोई ध्यान नहीं देतीं। फलस्वरूप उन्हें उन दिनों में नाम मात्र को भी आराम नहीं मिलता जब कि उन्हें आराम की सब से अधिक आवश्यकता है। कारखानों व मिलों में बच्चे की उत्पत्ति के समय स्त्रियों के लिये कोई सन्तोषप्रद प्रबन्ध नहीं होता। निसन्देह गवर्नमेन्ट ने कानून बनाकर कारखाने व मिल मालिकों के लिये यह आवश्यक कर दिया है कि वह ऐसा प्रबन्ध करें। किन्तु जो कुछ कागज पर लिख दिया जाय सर्वदा पूर्ण नहीं होता। बच्चा उत्पन्न होने के अनन्तर भी स्त्रियां शीघ्र ही कारखानों में काम करने लग जाती हैं तथा बच्चे की ओर कोई सावधानी नहीं रखती। काम करते समय वह बच्चों को न तो अपने पास रख सकता हैं और न ही उनके लिये कोई विशेष प्रबन्ध है। कारखाने के अस्पताल में नर्स आदि प्रत्येक बच्चे का ध्यान नहीं रखतीं और वह इस काम को अपने से नीचे की दाइयों पर छोड़ देती हैं और फिर उससे वही बुरे परिणाम निकलते हैं। मजदूर स्त्रियों के लिये विशेषतया और पुरुषों के लिये साधारणतया दिन भर के परिश्रम के पश्चात् मनोरंजन के कोई साधन नहीं होते। पुरुष अधिकतर शराब व अन्य ऐसी ही बुरी लतों में फँस जाते हैं। इससे स्त्री व बच्चे के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इन सब कारणों से बच्चे बहुत बड़ी संख्या में मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

जनसंख्या की समस्या का निवारण—भविष्य में, भारतवर्ष के स्वन्त्र हो जाने पर इस बात की आशा की जाती है की यहां के रहने वालों के जीवन स्तर में महत्वपूर्ण उन्नति होगी। जीवन की सुविधायें अधिक मात्रा में प्राप्त होंगी और बीमारी से भी लोग बहुत कम मरेंगे। इस के फल स्वरूप जन संख्या वर्तमान समय की अपेक्षा और भी अधिक बढ़ेगी (यदि अन्य बातों में कोई परिवर्तन नहीं आया)। यह समस्या बहुत महत्वपूर्ण है और हमें इस के निवारण के उपाय सोचने चाहियें। प्रथम तो हमें जनसंख्या के सम्बन्ध में ठीक ठीक सूचना अङ्कों द्वारा प्राप्त करनी चाहिये। धनोत्पत्ति को बढ़ाना भी बहुत आवश्यक है। सामाजिक सुधारकों को इस विषय में बहुत दिलचस्पी लेनी चाहिये। उन्हें अपने प्रयत्नों द्वारा लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना चाहिये ताकि लोग अपने जीवस्तर को ऊंचा रखने के इच्छुक हों और अधिक सन्तान से स्वयं को बचाने का प्रयत्न करें। जनसंख्या के घनत्व से हमें यह भी ज्ञात हो गया है कि देश के भिन्न-भिन्न भागों में जनसंख्या न्यूनाधिक है। देश के जो भाग आर्थिक उन्नति में पीछे हैं उनकी उन्नति के उपाय सोचने चाहियें ताकि जन संख्या का देश के भिन्न-भिन्न भागों में फैलाव ठीक हो जाय। इसके अतिरिक्त बालक-बालिकाओं के लिये उच्च शिक्षा प्रबन्ध किया जाना चाहिये ताकि वह दूरदर्शी बनें और बड़े होकर अपने उत्तरदायित्व को समझें। उन्हें सदाचार और संयम की शिक्षा दी जाय और विवाह-आयु बढ़ा दी जानी चाहिये। निर्बल, दरिद्र, रोगी, पागल आदि लोगों का विवाह निषेध होना चाहिये। अन्य ऐसे ही पुरुषों जिनकी सन्तान के सुदृढ़ और सुयोग्य होने की सम्भावना न हो, उनका विवाह भी निषेध बना देना चाहिये। यदि इन सब

बातों की ओर उचित और शीघ्र ध्यान दिया जाय और देश में उत्पत्ति की मात्रा पूरे जोर से बढ़ाई जाय, तो यह समस्या सरलता से हल हो जायगी।

अभ्यास के प्रश्न

१. भारतवर्ष की सामाजिक व्यवस्था पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिये और यह स्पष्ट कीजिये कि इसका भारतवर्ष की आर्थिक उन्नति पर क्या प्रभाव पड़ा है।

Write a critical note on the social institutions of India showing clearly their repurcussions on the economic welfare of the country ?

२. संयुक्त कुटुम्ब की प्रथा की अच्छाइयों तथा हानियों को स्पष्ट कीजिये

Explain the merits and demerits of the joint family system.

३. जाति-पाति की उत्पत्ति, विस्तार के क्या कारण थे ? यह हमारी आर्थिक उन्नति में किस प्रकार बाधक हुई है ?

What were the causes of the origin and spread of the caste-system ? How has it retarded our economic progress ?

४. भारतवर्ष की जनसंख्या पर एक विस्तृत लेख लिखये।

Write a lucid essay on the population problem of India.

५. भारतवर्ष की जन-संख्या में अधिक और प्रगति के साथ वृद्धि के क्या कारण है ? यह कहना कहां तक उचित हैं कि भारतवर्ष में आवश्यकता से अधिक जन संख्या है ?

What are the causes of rapid growth of population in India? Is it true to say that India is overpopulated?

६. भारतवर्ष की जन-संख्या की समस्या की कुछ मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

Explain some of the important features of the population problem of India.

७. मालथस का जनसंख्या सम्बन्धी नियम कहां तक भारतवर्ष में लागू होता है?

How far is the Malthusian theory of population applicable to India?

८. जन-संख्या के घनत्व का क्या अर्थ है? किसी देश के भिन्न-भिन्न भागों में जनसंख्या का घनत्व किन-किन बातों पर आश्रित होता है। भारतीय उदाहरण सहित स्पष्ट लीजिबे।

What is meant by 'Density of Population'? What factors determine the Density of Population in the different parts of a country? Explain with reference to India.

९. भारतवर्ष में बालक-बालिकाओं के अधिक संख्या में मृत्यु को प्राप्त होने के क्या कारण हैं? शिल्पि-केन्द्रों में यह समस्या और भी जटिल क्यों हैं?

What are the causes of infantile mortality in India? Why is this problem more serious in industrial centres?

१०. स्त्रियों के अधिक संख्या में मृत्यु के कारण स्पष्ट कीजिये।

Explain the causes of high women mortality in India.

११. जन-गणना से क्या अभिप्राय है ? भारतवर्ष में जन-गणना कब और किस प्रकार होती है ? जन गणना के मुख्य उद्देश्य क्या हैं ?

What do you understand by the term 'Census' ? When and how census is taken in India ? What are its main objects ?

१२. भारतीय जन-संख्या समस्या को किस प्रकार सुलझाया जा सकता है ? हमें क्यों इसकी ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिये ?

How can the population problem of India be solved ? Why should we pay immediate attention tow rds its solution ?

: ४ :

मनुष्य की आर्थिक उन्नति का विकास

मनुष्य जाति ने किस प्रकार प्रगति की, इस प्रश्न के सामने आते ही हमें समाज के इतिहास पर दृष्टि डालने की आवश्यकता अनुभव होती है। जब हम इस इतिहास का अध्ययन करते हैं तब हमें ज्ञात होता है कि मनुष्य पहले जङ्गलों में रहते थे और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयंमेव कर लेते थे। परन्तु शनै-शनै, जैसे-जैसे उसकी आवश्यकताओं में वृद्धि होने लगी उसे अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति कठिन दिखाई देने लगी। इस प्रकार मनुष्य ने अपनी मस्तिष्क शक्ति के प्रयोग से अपनी कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न किया, प्राकृतिक शक्तियों को अपने आधीन किया, प्राकृतिक पदार्थों को अपने प्रयत्न से अधिक उपयोगी बनाया, पशुओं से नाना प्रकार के काम लेने आरम्भ कर दिये, वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा अपने जीवन को अधिक सुखी तथा मनोरंजक बना लिया। आर्थिक उन्नति की इस दौड़ में मनुष्य को भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से जाना पड़ा है। इनका वर्णन हम नीचे देते हैं।

१. **शिकारी अवस्था**—पुराने समय में मनुष्य निघरे थे। यह लोग अपनी इच्छाओं को प्राकृतिक वस्तुओं से पूरा कर

लिया करते थे और समय पड़ने पर झुण्डों में घूमते रहते थे। इस काल में मनुष्य भक्षी भी पाये जाते थे। किसी मनुष्य के पास अपनी निजी सम्पत्ति का कोई प्रश्न न था। शिकार करके या मछली पकड़ कर जीवन व्यतीत करना मुख्य काम था।

२. **पशुपालन अवस्था**—धीरे-धीरे लोगों ने यह ज्ञात किया कि पशुओं को मारने की अपेक्षा उन्हें पाला जाय तो लाभप्रद होगा। इस कारण अधिक लोग जानवर पालने लगे और उनके चारे के लिये जहां हरी घास के मैदान मिल जाते थे चले जाते थे। मनुष्यों को मारने की रीति अब कम हो गई थी क्योंकि जानवरों की देख-भाल के लिये मनुष्यों की अधिक आवश्यकता हो गई। जानवर मनुष्यों की सम्पत्ति समझी जाती थी किन्तु भूमि के स्वामित्व का अभी कोई प्रश्न न था।

३. **कृषिक जीवन**—लोगों की बुद्धि में कुछ वृद्धि हुई। उन्होंने पृथ्वी से खाने पीने की वस्तुएं उत्पन्न करने की चेष्टा की। अब लोग जगह-जगह घूमने की अपेक्षा झोंपड़ियां बनाकर ऐसे स्थानों पर रहने लगे जहाँ पर वह अन्न पैदा करते थे। इस काल में ग्राम जीवन का जन्म हुआ। गुलामों को रखने की रीति भी इसी काल में उत्पन्न हुई क्योंकि गुलाम कृषि के कार्यों में लगाये जा सकते थे। अब पृथ्वी के स्वामित्व का प्रश्न भी आ गया।

४. **हस्तकला का जीवन**—मनुष्यों को खाने पीने की वस्तुओं की खोज करने से कुछ समय मिला और उनकी जानकारी में भी वृद्धि हुई। अपने शेष समय में मनुष्यों ने छोटी २ प्रति दिन की वस्तुओं को बनाना प्रारम्भ किया। और प्रत्येक

मनुष्य किसी न किसी वस्तु के बनाने में प्रवीण व अनुभवी होता चला गया। इस काल में लोग अपनी इच्छाओं को स्वयं पूरा नहीं कर सकते थे क्योंकि उनकी इच्छायें इतनी प्रबल हो गई थी कि उनको पूरा करने के लिये दूसरों की सहायता की आवश्यकता पड़ी। अब लोग अपनी वस्तुओं को वस्तुओं से बदल कर अपनी इच्छा पूर्ण करने लगे। इसमें भी बहुत सी कठिनाइयाँ हुई जिन को भाँति २ की धातु को और वस्तुओं को रुपया मान कर दूर करने की कोशिश की गई।

५. कलायुग—मनुष्य की आविष्कारक बुद्धि ने भाँति २ की मशीनों को बनाया और जो वस्तुएं वह थोड़ी संख्या में पैदा कर रहे थे बड़ी संख्या में पैदा करने लगे। अब ऐसी २ मशीनों का युग शीघ्रता से उन्नति कर रहा है। कोयले की भाप और बिजली की शक्ति का पता चलने से संसार के व्यापार में हलचल मच गई है। भाँति २ के प्रश्न उत्पन्न हो गये हैं। समस्याओं पर समस्यायें आने लगीं हैं।

भारतवर्ष की वर्तमान अवस्था—आज का भारत भी शीघ्रता से नई रोशनी की ओर बढ़ रहा है। ग्राम जीवन पहले जैसा नहीं रहा। रुपये पैसे का सेवन, तथा आवागमन के साधन उन्नति पर हैं। नये २ उपाय कृषि को बढ़ाने के लिये और ग्राम सुधार के लिये बनाये गये हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपनी इच्छाओं के लिये दूसरों की ओर देखना पड़ता है। आजकल हमारी बहुत इच्छायें उन वस्तुओं से पूरी होती हैं जो दूर के देशों से बनाई गई हो। माल के क्रय-विक्रय के लिये हर प्रकार की मंडियां बन गई हैं। बैंकों का कार्य बढ़ता जा रहा है। लेन देन की आसानियाँ Co-operative Society के द्वारा पूरी की जाती हैं। आशा है कि अपनी

राष्ट्रीय सरकार की कृपा से भारत किसी और देश से पीछे नहीं रहेगा।

पुरानी तथा वर्तमान आर्थिक पद्धति

संसार में प्रत्येक वस्तु कुछ समय के अनन्तर परिवर्तित होती रहती है। परिवर्तन संसार का नियम है और प्रत्येक वस्तु का परिवर्तित होना प्राकृतिक नियम है। एक समय पर जो नियम संसार के प्राणियों के लिये लाभप्रद होता है वही कुछ काल पश्चात् अपना महत्त्व व लाभ खो बैठता है। यह नियम केवल प्राकृतिक वस्तुओं के लिये ही नहीं है वरन प्रत्येक व्यापारिक, राजनैतिक और आर्थिक नियम इसमें सम्मिलित होता है। प्रत्येक देश के व्यापारिक और आर्थिक नियम परिवर्तित होते रहते हैं तथा उनमें परिवर्तन होना भी आवश्यक है। यह संसार आरम्भ में बहुत सादा था। शनैः-शनैः इसमें अनेक परिवर्तन आते गए तथा वर्तमान समय में इसका चित्र अत्यन्त गूढ़ हो गया है। यह सब कुछ उन्हीं परिवर्तनों द्वारा हुआ है जो समय-समय पर इस सांसारिक अवस्थानुसार होते रहे। संसार के नियमों में परिवर्तन अवश्य होता है परन्तु यह परिवर्तन इस प्रकार होता है कि इसका हम को पता नहीं चलता। इसके अतिरिक्त एक सांसारिक अवस्था का दूसरी अवस्था में परिवर्तन होना कोई एक दो दिन का काम नहीं है। इसमें एक बड़ा समय लगता है और क्योंकि यह बहुत शनैः-शनैः होता है हम को इस परिवर्तन का पता केवल उस समय होता है जब यह परिवर्तन पूर्ण हो चुकता है एवं वह वस्तु जिसमें परिवर्तन हुआ हो एक नूतन रूप धारण कर लेती है। आर्थिक नियमों का परिवर्तन उनके परिवर्तन की आवश्यकता, महत्त्व, प्रभाव तथा उनकी वर्तमान अवस्था हम सब अर्थ-

शास्त्र में जानने की चेष्टा करते हैं। इन्हीं बातों पर हम इस समय विचार करेंगे।

सर मौरिसन् ने संसारार के सम्पूर्ण देशों को दो भागों में विभाजित किया है। एक वह जो प्राचीन आर्थिक नियमों से सम्बन्ध रखते हैं और उन्हीं नियमों को वर्तमान काल में भी कार्यान्वित कर रहे हैं। दूसरे वह देश जो वर्तमान अवस्था से सम्बन्धित हैं और प्राचीन नियमों को त्याग चुके हैं। प्राचीन आर्थिक नियमों को मानने वाले अर्थात् प्राचीन आर्थिक दशा के देशों की विशेष रीतियां तथा नियम निम्नलिखित हैं :—

(१) देश के लोग छोटे ग्रामों में निवास करते हैं। यातायात के साधन अत्यन्त सरल एवं सादे होते हैं। इसी कारण मनुष्यों का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता।

(२) लोगों का मुख्य, आवश्यक और प्रधान कार्य कृषि होता है। अन्य कार्यों का महत्त्व इतना नहीं होता जितना खेती-बाड़ी का।

(३) समाज का सम्पूर्ण कार्य रीति व नियमानुसार होता है प्रत्येक व्यक्ति को अपने समाज में एक नियत पद प्राप्त होता है। सब काम नियम व रीति अनुसार होते हैं। मजदूरी, किराया तथा मूल्यादि रीति व नियमों पर निर्भर होते हैं। व्यापारिक नियमों और मुकाबले का महत्त्व अत्यन्त कम होता है।

(४) देश में रुपये का उधार लेना या देना और बैंक तथा चैक का प्रयोग सर्वथा नहीं होता। यह सब वस्तुएं या तो होती ही नहीं या यदि होती हैं तो बहुत सरल व सादे रूप में।

(५) मनुष्यों में वस्तुओं का विनियम तथा व्यापार बिना रुपये के होता है। वस्तुओं का विनियम वस्तुओं द्वारा ही होता है। देश में रुपये का रिवाज नहीं होता। रुपये का प्रयोग व्यापार में बहुत कम होता है।

(६) ग्रामों में छोटे घरेलू कारखाने और उद्योग स्थान होते हैं जिन में काम करने वाले स्वयं पृथक २ थोड़ी मात्रा में कोई वस्तु बनाते रहते हैं। काम करने वाले थोड़ी मात्रा में काम करते हैं और जो कुछ भी रुपया इस में लगता है स्वयं लगाते हैं। काम करने की विधि व नियम अत्यन्त सरल व साधारण होते हैं। इसी कारण स्थान २ पर छोटी मंडिया स्थापित हो जाती हैं। जहाँ समीपवर्ती स्थानों का माल आकर बिकता है। इनमें दूरस्थ स्थान सम्मिलित नहीं होते।

(७) समाज में धर्म, चाल-चलन इत्यादि का विशेष ध्यान रक्खा जाता है और इसी के अनुकूल भिन्न २ व्यक्तियों के सम्बन्ध एवं कार्यों का अनुमान किया जाता है। धर्म का मनुष्यों के जीवन पर विशेष प्रभाव होता है।

अब इनके विरुद्ध आधुनिक काल के देशों की विशेष रीतियां तथा नियम अधोलिखित हैं :—

(१) देश में सस्ते, सुखदायी तथा आधुनिक काल के याता-यात के साधन होते हैं। उनके कारण एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी बहुत कम प्रतीत होती है।

(२) मनुष्यों का मुख्य, आवश्यक एवं प्रधान कार्य कृषि की अपेक्षा उद्योग तथा व्यपार होता है। कृषि देश में होती अवश्य है परन्तु एक तो यह थोड़ी मात्रा में होती है और दूसरे बहुधा खाद्य-पदार्थ बाहर से आयात् कर लिया जाते हैं। देश की अधिकांश जन-संख्या अपनी रोटी का साधन उद्योग तथा व्यापार को समझती है।

(३) समाज के समस्त काम संघर्ष और व्यापारिक नियमों द्वारा होते हैं। रीति का प्रभाव बहुत कम होता है। देश में व्यापारिक रीति और नियम बहुत प्रभावशाली हो जाते हैं।

समस्त वस्तुयें उदाहरणतया मजदूरी किराया तथा मूल्यादि इन पर निर्भर होते है।

(४) देश में बैंक, चैक एवं उधार के लेन-देन की उत्तरोत्तर प्रयोग में वृद्धि होती है। व्यापार उन्नतिशील होता है और इसके साथ २ बैंकों का महत्व बढ़ता है तथा वह भी उन्नतिशील होते हैं। व्यापारी मनुष्य बैंकों से सम्बन्धित हो जाते हैं और इस प्रकार अपने व्यापारिक एवं आर्थिक पद को बढ़ा लेते हैं।

(५) मनुष्यों के मध्य व्यापार रुपये द्वारा होता है। वस्तुओं का वस्तुओं द्वारा लेन-देन पूर्णतया समाप्त हो जाता है। मनुष्यों को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए केवल रुपये पर निर्भर रहना पड़ता है।

(६) उत्पादन का साधन सर्वथा परवर्तित हो जाता है। सम्पूर्ण देश में बड़े २ कारखाने, मिल व फैक्टरी स्थापित हो जाते हैं और वहां पर लोगों की आवश्यकताओं की वस्तुयें बहुत बड़ी मात्रा में बनाई जाती हैं। बड़ी २ गूढ़ मशीनों का प्रयोग होता है और कार्य करने का साधन भी अत्यन्त गूढ़ किन्तु अधिक सरल व लाभदायक बन जाता है। बड़ी २ मंडियां व बाजार स्थापित हो जाते हैं और उनमें दूरस्थ स्थानों की बनी हुई वस्तुओं का क्रय विक्रय होता है।

(७) देश में स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े नगर बन जाते हैं। ग्रामों का महत्व प्रतिदिन कम होता जाता है। उद्योग एवं व्यापार ग्रामों की अपेक्षा नगरों में अधिक उन्नति करता है। यह बड़े-बड़े नगर व्यापार और शिक्षादि के केन्द्र बन जाते हैं।

यह सब आधुनिक काल के देशों के विशेष चिन्ह हैं। वर्तमान सभ्य देशों में अमेरिका, इङ्गलैण्ड फ्रांस तथा रूस इत्यादि सम्मिलित हैं। इन देशों में ऊपर लिखित सब चिन्ह पाये जाते हैं और यह सब आधुनिक प्रगतिशील देश हैं।

पाश्चात्य देशों में आर्थिक परिवर्तन—पिछले लगभग २०० वर्षों में इङ्गलैंड, फ्रांस, जर्मनी तथा अमेरिका आदि देशों में महत्व-पूर्ण आर्थिक परिवर्तन हुये हैं। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक यह देश भी पिछड़े हुये देश थे। लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। लगभग तीन-चौथाई लोग गांव में रहते थे। प्रत्येक गांव स्वयंमेव सब प्रकार से पूर्ण था और लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से कर लेते थे। गांव के रहने वाले अपने लिये आवश्यक वस्तुएं जैसे कपड़ा, खाद्य पदार्थ आदि स्वयं उत्पन्न करते थे। प्रत्येक गांव स्वावलम्बी था। कृषि के ढंग भी पुराने थे। शिल्प की उन्नति बहुत थोड़ी हुई थी। अपने-अपने घरों में भिन्न भिन्न व्यवसाय के लोग भिन्न-भिन्न वस्तुएं उत्पन्न करते थे। बड़े-बड़े कारखाने उस समय में नहीं थे। बड़े-बड़े नगर बहुत थोड़े थे। ये बड़े-बड़े नगर भी धार्मिक केन्द्र होने के कारण प्रसिद्ध हो गये थे। व्यापार अधिक विस्तृत नही था। वस्तुओं की अदल-बदल मुख्य विनिमय का साधन था। बैंकों साख आदि ने उन्नति नहीं की थी। यातायात के साधन भी बहुत कठिन थे। रेलों, मोटर, समुद्री जहाज तथा वायुयानों का आविष्कार नहीं हुआ था। इस प्रकार मनुष्य का जीवन बहुत सादा था और आर्थिक पद्धति भी बहुत ही सरल थी।

इसके पश्चात इन देशों में एक घोर परिवर्तन आया जिसे शिल्प क्रान्ति के नाम से पुकारते हैं। यह क्रान्ति सर्व प्रथम इंगलैंड में आई। १७६० ई० और १८३० ई० के मध्य में इंगलैंड में ऐसे वैज्ञानिक आविष्कार हुये जिन के द्वारा देश की काया पलट गई। हारग्रीव, आर्कराइट, क्रोम्पटन आदि ने कपड़ा बुनने के सम्बन्ध में आश्चर्यजनक आविष्कार किये। इनके पश्चात १७६६ में जेम्स वाट ने भाप का इञ्जन तैयार किया।

इन सब के परिणाम स्वरूप शिल्पकारी ने अद्भुत उन्नति की। बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियां स्थापित की गईं और बड़े परिमाण में वस्तुएं उत्पन्न की जाने लगीं। जनसंख्या में बहुत उथल-पुथल हुई। जन-संख्या देश के एक भाग से दूसरे भाग में चली गई। नगरों के गांव और गांवों के इसी समय में नगर बन गये। यातायात के साधनों में भी महत्वपूर्ण उन्नति हुई। पक्की सड़कों के बनाने के ढङ्ग ज्ञात कर लिये गये। नाविक कला में भी बहुत उन्नति हुई।

मशीनों द्वारा अधिक परिमाण में वस्तुओं के बनाये जाने के फलस्वरूप व्यापार में भी उन्नति हुई। मुद्रा का प्रयोग होने लगा। बैंक स्थापित हुये और साख की उन्नति हुई। व्यापार ने अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण कर लिता। अन्त में शनै-शनै यह सब बातें और अधिक उन्नति करती गईं और इन सब का परिणाम यह हुआ कि आज हम देखते हैं कि आर्थिक व्यवस्था बहुत जटिल हो गई है। अब यह पाश्चात्य देश उन्नतिशील देशों में गिने जाते हैं। इन्हीं देशों ने संसार के अन्य देशों पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर रखा है यद्यपि एशिया के देशों में स्वतन्त्र रहने की प्रबल इच्छा के आधीन यह प्रभुत्व नष्ट होता जा रहा है। इन देशों में वर्तमान आर्थिक पद्धति की लगभग सब विशेषताएं पाई जाती हैं।

भारतवर्ष की पुरानी आर्थिक पद्धति

भारतवर्ष पुरातन काल से ही एक कृषक देश रहा है। अब भी अधिकतर लोग गांव में ही रहते हैं और कृषि ही देश का सब से अधिक महत्वपूर्ण व्यवसाय हैं। उस समय अधिकतर लोग गाँव में रहते थे और कृषि या व्यवसाय करते थे। भूमि कृषकों की होती थी और उसे वह स्वयं ही जोतते थे।

प्रत्येक गांव में लोहार, सुनार, बढ़ई आदि भी थे जो गांव वालों की सेवायें करते थे और उन की भिन्न-भिन्न प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करते थे। कृषि पुराने ढङ्ग से की जाती थी। सिंचाई के साधन भी बहुत सीमित थे और इस कारण किसानों को वर्षा पर ही अधिक भरोसा करना पड़ता था। लोग संयुक्त कुटुम्ब में रहते थे। प्रत्येक गांव स्वावलम्बी था। लोगों का जीवन बहुत कठिन था। आवश्यकता की समस्त वस्तुएं अमुक गांव में ही प्राप्त हो जाती थीं। प्रत्येक गांव में एक महाजन होता था जो कृषकों को आर्थिक सहायता देता था। मुद्रा का प्रयोग बहुत ही कम था। वस्तुओं की अदल-बदल अधिक प्रचलित थी। लोगों की सेवावों का वेतन भी वस्तुओं द्वारा दिया जाता था। रीति रिवाजों का अधिक महत्व समझा जाता था। गाँव में पंचायत होती थी जो गाँव के लोगों के झगड़ों का फैसला करती थी।

उस समय भारतवर्ष में नगर बहुत कम थे। इन में से अधिकतर धार्मिक केन्द्र थे। इन्हीं नगरों में बहुत से राजाओं ने अपनी राजधानियां स्थापित करली थीं। व्यापार केवल नगरों में ही उन्नति पर था। यह बात अवश्य थी कि उस समय के भारतवर्ष के नगर अन्य देशों के उस समय के नगरों से बहुत अधिक महत्वपूर्ण थे। क्लायू के कथानुसार मुर्शिदाबाद लन्दन से अधिक उन्नतिशील था। उस समय भारतवर्ष में व्यापार ठीक प्रकार से संगठित था। बैंक आदि की भी बहुत उन्नति थी और हुन्डी का प्रयोग प्रचलित था।

यद्यपि भारतवर्ष एक कृषक देश था तथापि यहां के उद्योग धन्धे उस समय बहुत उन्नति पर थे। योरप के देशों की अपेक्षा

भारतवर्ष अधिक उन्नतिशील था। भारतवर्ष की बनी हुई वस्तुएँ संसार में प्रसिद्ध थीं और यहां का घरेलू धन्धों का बना हुआ माल अन्य देशों को जाता था। इन में बारीक कपड़ा, सिल्क, छपे हुए कपड़े, हीरे ज्वाहरात, क़ीमती पत्थर, हाथी दांत की वस्तुऐं मुख्य थीं। ढाका की मलमल इन में बहुत प्रसिद्ध थी। दूसरे देशों से व्यापार में भारतवर्ष को बहुत लाभ होता था। विदेशों का सोना भारतवर्ष में आकर जमा हो गया और इसी कारण दूसरे देशों के लोग इस को सोने की चिड़िया कहते थे। घरेलू धन्धे अधिकतर गाँव में उन्नति पर थे।

इन सब बातों के होते हुये यातायात के साधन बहुत कठिन और दोषयुक्त थे। यातायात का मुख्य साधन बैल गाड़ी था और अब तक भी भारतवर्ष के गांव में यातायात का मुख्य साधन बैलगाड़ी ही है। इस के अतिरिक्त, घोड़े, ऊंट, गधे आदि भी प्रयोग में आते थे।

भारतवर्ष की वर्तमान अवस्था —

अब हम भारतवर्ष की गणना न तो वर्तमान रीति के देशों में कर सकते और न प्राचीन रीति के देशों में। वास्तव में इस समय भारत की दशा को देख कर केवल यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतवर्ष इन दोनों में से किसी की ओर भी नहीं रक्खा जा सकता। भारतवर्ष इस समय परिवर्तन काल में से निकल रहा है। फलतः यहां पर हम प्राचीन एवं नवीन रीतियों को साथ साथ पाते हैं। कुछ बातें ऐसी हैं जिन्हें देखने से हमें प्रतीत होता है कि भारतवर्ष आधुनिक सभ्य देश है किन्तु अनेक बातें ऐसी हैं जिनमें अभी तक प्राचीन सभ्यता के चिन्ह विशेषतया पाये जाते हैं। भारतवर्ष परिवर्तन काल से निकल

रहा है परन्तु कुछ अंश प्रगतिशील हो गये हैं और शेष अभी पीछे ही लुढ़क रहे हैं। भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध नगरों देहली, बम्बई तथा कलकत्ता इत्यादि में नवीनता के समस्त चिन्ह पाये जाते हैं। और इनको देखकर हम सम्पूर्ण भारत के विषय में भी यही अनुमान लगा लेते हैं। किन्तु ऐसा नहीं है। भारतीय ग्राम अत्यन्त असभ्य हैं और पुरानी रीतियों को त्यगने में बहुत आलस्य कर रहे हैं।

प्राचीन रीतियां आधुनिक रीतियों व सभ्यता के कारण शनैः शनैः परिवर्तित हो रही हैं। परन्तु यह परिवर्तन अत्यन्त ढीला है। अतीत काल की रीतियों का प्रभाव व उसका महत्व प्रतिदिन कम हो रहा है। यातायात के प्रचलित साधनों के कारण ग्राम परस्पर मिलते जा रहे हैं। व्यापारी नगर, मंडियां तथा उद्योगिक केन्द्र प्रति दिन स्थापित हो रहे हैं। मनुष्य शीघ्र ही व्यापार की ओर अग्रसर हो रहे हैं। नवीन मिल व फैक्टरियां बन रही हैं, तथा उन में आधुनिक मशीनों का प्रयोग उन्नतिशील हो रहा है व इसका रूप भी परिवर्तित हो रहा है। रुपया, बैंक, चैक और ऐसे ही व्यापारिक साधनों को बड़ी शीघ्रता से अपनाया जा रहा है। राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों की स्थापना हो रही है और भारतवर्ष सम्पूर्ण संसार के अधिक निकटवर्ती होता जा रहा है। समाज का प्राचीन ढांचा नूतन ढांचे में परिवर्तित हो रहा है। यातायात के साधनों में असाध्य उन्नति हो रही है। ग्राम भी इस उन्नति से प्रभावित हो रहे हैं। वास्तव में प्रत्येक वस्तु उन्नति की ओर प्रगतिशील है किन्तु अभी लक्ष्य बहुत दूर है। यह परिवर्तन अभी तक अपूर्ण है। इसमें अभी बहुत कुछ होना अवशेष है। इसलिये भारतवर्ष को किसी ओर भी रखना बहुत कठिन है। यह तो परिवर्तित हो रहा है और इस मार्ग पर शीघ्र-

गामी है। लक्ष्य आने में अभी बिलम्ब है। इस कारण भारत-की अवस्था संसार के अन्य देशों की अपेक्षा सर्वथा भिन्न है।

भारत की आर्थिक स्थिति

प्रत्येक देश की व्यापारिक एवं आर्थिक उन्नति प्राय: दो बातों पर अवलम्बित होती है। एक तो प्राकृतिक वस्तुएँ दूसरे वहां के निवासी। यदि एक देश को प्रकृति की ओर से वह समस्त स्तुएं प्राप्त हो जायं जो उसकी उन्नति के लिये आवश्यक हैं तो बहुधा वह देश संसार के सभ्य देशों में सम्मिलित हो जाता है। किन्तु यदि किसी देश को वह सब वस्तुएँ अप्राप्त होती हैं तो यह अत्यन्त कठिन है कि वह अन्य देशों की उन्नति के साथ अपने को भी चला सके। प्राकृतिक वस्तुएँ नवीन सभ्यता के उत्पादन में अति आवश्यक हैं। और यदि किसी देश को दुर्भाग्य-वश वह अलभ्य हैं तो उसके अभाव को पूर्ण नहीं किया जा सकता। परन्तु एक बात और है। यद्यपि प्राकृतिक वस्तुओं पर एक देश की प्रत्येक भांति की उन्नति आश्रित है फिर भी प्राणियों के कार्य और साहस का उस देश की उन्नति पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यदि एक देश में प्रकृति ने वहाँ के निवासियों के लिये प्रत्येक भांति की वस्तुएं प्रदान कर रक्खी हों तो भी सम्भव है कि वह देश दुर्भाग्यवश दरिद्रता तथा भूख का शिकार हो। ऐसा हो सकता है कि वहाँ के निवासी सुस्त, निकम्मे व असभ्य हों। और या तो वह उन प्राकृतिक वस्तुओं का प्रयोग करने के अयोग्य हों अथवा करना न जानते हों। ऐसी अवस्था में वह देश प्राकृतिक सहायता एवं वस्तुओं के होने पर भी उन्नतिशील नहीं हो सकता।

जहाँ तक भारतवर्ष का सम्बन्ध है यह बिलकुल स्पष्ट है कि प्राकृतिक वस्तुओं की प्राप्ति में भारतवर्ष सम्पूर्ण प्रदेशों में एक

महत्त्वशाली स्थान रखता है। भारतवर्ष स्वयं एक महद्वीप के समान है। सम्पूर्ण भारतवर्ष का क्षेत्रफल १२ ½ लाख वर्गमील है। भारतवर्ष का यह क्षेत्रफल रूस के अतिरिक्त यूरोप के बराबर है और इटली, फ्रान्स, जर्मनी, जापान एवं केनाडा के क्षेत्रफल के योग के दुगने से अधिक है। इस देश में समस्त संसार की जन-संख्या का ⅕ भाग निवास करती है। भारतवर्ष पूर्वी संसार के बिलकुल मध्य में स्थित है और अपनी सीमा के कारण व्यापार में सर्वश्रेष्ठ स्थान रखता है। यह संसार के समस्त सभ्य और उद्योगी देशों से जल और स्थल मार्गों से सम्बन्धित है। उद्योग और उत्पादन की आवश्यक वस्तुयें भारतवर्ष को बहुत बड़ी मात्रा में प्राप्त हैं। जल, वायु, लकड़ी, कोयला तथा लोहा भारतवर्ष में बड़े परिमाण में पाया जाता है। यद्यपि १९३७ ई० में बर्मा के भारत से पृथक होने पर भारतवर्ष में पेट्रोल का अभाव हो गया है किन्तु इस पर भी इसकी पानी की शक्ति व मात्रा इस अभाव को पूर्ण कर देती है। भारतवर्ष में गन्ना अत्यधिक उत्पन्न होता है जिससे अलकोहल बड़े परिमाण में निर्माण किया जा सकता है।

भारतवर्ष की खानों से अमूल्य वस्तुयें निकलती हैं तथा इस देश के उद्योग के लिये असाधारण लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। अमेरिका व फ्रान्स को छोड़कर भारत में कच्चा लोहा सबसे अधिक उत्पन्न होता है और सबसे उत्तम भांति का होता है। कोयला यद्यपि भारतवर्ष में बहुत कम उत्पन्न होता है, इसकी मात्रा इस देश में अत्यधिक है। पटसन एवं अबरक संसार में केवल भारतवर्ष में ही पाया जाता है। पटसन की बोरियां बनाई जाती हैं तथा अबरक बिजली का सामान बनाने में काम आता है। अबरक यद्यपि भारतवर्ष में इतनी बड़ी मात्रा में पाया जाता है फिर भी इसका प्रयोग इस देश में बहुत कम

होता है। यह सारे का सारा अमेरिका अथवा योरुप भेज दिया जाता है। भारतवर्ष में तांबा, रांग, टीन और सुरमा बहुत बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। आधुनिक काल में यह सब आवश्यकीय धातुयें हैं। नमक भी जो औषधियों के बनाने में बहुत प्रयोग किया जाता है, भारतवर्ष में काफी है। चपड़ा जो फौलाद बनाने में अत्यन्त लाभप्रद होता है रूस को छोड़कर भारतवर्ष में सब से अधिक पाया जाता है। इन सब वस्तुओं के अतिरिक्त भारत में वह सब कुछ उत्पन्न होता है जो किसी भांति के भी उद्योग के लिये आवश्यक हो। भारत के जंगलों में अत्यन्त लाभप्रद एवं अमूल्य वस्तुएं पाई जाती हैं। औषधियां बनाने में भारतवर्ष के जंगलों का विशेष हाथ है। संसार के सम्पूर्ण पशुओं का लगभग ⅓ भारतवर्ष में पाया जाता है और इसी कारण यहां पर चमड़ा व खाल अधिक प्राप्त हैं।

इन बातों से स्पष्ट होता है की भारतवासी बहुत धनवान हैं तथा उनको जीवन के समस्त भोग उपलब्ध है किन्तु ऐसा नहीं है। भारतवासियों की अवस्था अति शोचनीय है। वह दरिद्रता व भूख ग्रस्त हैं। निसन्देह भारत में प्राकृतिक वस्तुओं का अभाव नहीं है परन्तु उसका उचित प्रयोग भारतीय अभी तक करने में असमर्थ हैं। संसार के इतिहास में भारतवर्ष जैसा अन्य प्रमाण मिलना सर्वथा असम्भव है। भारतवर्ष के अनेक व्यक्ति दोनों समय भली भांति पेट भी नहीं भर सकते। भारतवासियों की आय अत्यन्त कम है एवं वह उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बहुत कम है। यदि हम भारतवासियों की औसत आय को देशान्तरों के निवासियों की औसत आय से मिलायें तो बहुत बड़ा अन्तर मिलेगा। एक अमेरिकन की औसत वार्षिक आय १४०६ रु० है। एक अङ्गरेज की १२०० रुपये है। एक जर्मन की ६०३ रु० है किन्तु एक

भारतवासी की औसत आय केवल ६५ रु० वार्षिक है। इस आय से वह एक समय का भोजन भी भली भांति नहीं प्राप्त कर सकता। वस्त्र तथा अन्य वस्तुओं का तो कहना ही क्या ? भोजन के प्रवीण मनुष्यों का विचार है कि एक भारतवासी का भोजन २६०० क्लोरी (Calories) होना चाहिये। किन्तु भारतवर्ष में केवल १८०० क्लोरी मिलता है और उसमें ८०० क्लोरी का अभाव रहता है। एक भारतीय को एक वर्ष में कम से कम ३० गज कपड़े की आवश्यकता है। परन्तु एक भारतवासी के वस्त्र मिलने का औसत केवल १६ गज प्रति वर्ष है। उसको रहने के लिये कम से कम १०० वर्ग फुट स्थान चाहिये किन्तु उसे केवल ३० वर्ग फुट स्थान प्राप्त होता है । भारतवर्ष के अधिकांश मनुष्य ग्रामों में रहते हैं उस की समस्त जन-संख्या का ८० प्रतिशत भाग ग्रामों में निवास करता है । भारतवर्ष में बड़े २ नगरों का अभाव है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में लगभग ७ सात लाख ग्राम है और केवल ३ हज़ार के लगभग बड़े नगर हैं। ग्रामों की दशा नगरों की अपेक्षा अत्यन्त हीन है । भारतवर्ष में दरिद्रता, असभ्यता, बीमारी तथा बेकारी फैली हुई है। यदि ग्रामों की औसत आय निकाली जाय तो वह ६५ रुपये से भी कम निकलेगी। इस कारण भारतीय जीवन-पर्यन्त इन दुखों से ग्रस्त रहते हैं। उनको न पेट भर भोजन प्राप्त होता है न तन ढकने को वस्त्र और न ही रहने को स्थान। आय भी बहुत कम हैं। फलतः भारतवासी अत्यन्त हीन एवं शोचनीय अवस्था में हैं। किन्तु यह सब क्यों ?

निसन्देह भारतवर्ष प्राकृतिक दशा में उन सब देशों से अधिक भाग्यशाली है जो वर्तमान काल के सभ्य व धनाढ्य देश कहे जाते हैं। किन्तु यहां उत्पादन की विशेष कमी है । उत्पादन व उद्योग द्वारा ही एक देश उन्नतिशील होता है।

उदाहरणतया अमेरिका व चीन प्राकृतिक विचार में परस्पर समान है किन्तु फिर भी उनकी उन्नति में एक बड़ा अन्तर हैं। एक उन्नति के उच्च शिखर पर आरूढ़ है और अन्य अति हीनावस्था में है। यह सब इस लिये है कि एक के निवासी परम उद्योगी व परिश्रमी हैं तथा अन्य के सुस्त एवं आलसी। यद्यपि भारतवर्ष में वह समस्त वस्तुएं उत्पन्न हो सकती हैं जिनकी यहां के निवासियों को आवश्यकता है किन्तु फिर भी भारतवर्ष अपनी आवश्यकता की अनेक वस्तुएं विदेशों से मंगाता है। यह बड़े खेद का विषय है। भारतवासी उत्पादन की आधुनिक और अत्युत्तम विधियों से अनभिज्ञ हैं। वह अभी तक प्राचीन नियमों पर आरूढ़ हैं। इसके साथ साथ भारतवर्ष में जो भी धन उत्पन्न होता है वह उचित भांति से भारतीयों के भाग में नहीं आता। कारण कुछ तो धनाढ्य व करोड़पती बन जाते हैं और शेष रोटी के टुकड़े को भी तरसते रहते हैं। आय के विभाजन की यह विधि अत्यन्त दोषपूर्ण व हानिकारक है। हमारे समाज में अमीरी व दरिद्रता के अन्तर और भारतवर्ष की दरिद्रता का यह विशेष कारण है। भारतवर्ष की दरिद्रता का तृतिय करण यह है कि यहाँ के निवासी निर्धन होते हुए भी जन-संख्या कि वृद्धि करने में सबसे अग्र रहते हैं। उनको अपने रहन-सहन का कोई भी ध्यान नहीं है। भारतवर्ष में शिक्षा का बहुत अभाव है। यहाँ की अधिकांश जनता असभ्य है और इसी कारण निर्धन व कङ्गाल है।

हम देख चुके हैं कि भारतवर्ष एक सोने की चिड़िया होते हुए भी अत्यन्त दरिद्र देश है। इस दरिद्रता का कारण यहाँ के निवासियों का प्रमाद है। अब तक यह परतन्त्र था। अब जब इसे स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है हम यह आशा रखते हैं कि भारत अन्य देशों की भांति उन्नति की ओर शीघ्रता से अग्रसर होगा।

इस लिये हम भविष्य में इसके विषय में बहुत बड़ी आशा रखते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१. मनुष्य के आर्थिक जीवन के विकास पर एक लेख लिखिये।

Write an essay on the evolution of the economic life of man.

२. पुराने आर्थिक ढांचे और वर्तमान आर्थिक पद्धति की पृथक-पृथक विशेषताओं को स्पष्ट कीजिये। आप भारतवर्ष को कौन से वर्ग में रखेंगे ?

Explain the main features of the old and new economic orders separately To which economic order would you place India ?

३. शिल्प क्रान्ति का क्या अर्थ है ? इस के क्या कारण थे। इसका मनुष्य के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा ?

What is mêant by the term 'Industrial Revolution' ? What were its causes ? How did it affect the economic and social life of the people of the countries concerned ?

४. 'भारतवर्ष एक धनवान देश है जिस में निर्धन लोग रहते हैं।' आलोचनात्मक दृष्टि से स्पष्ट कीजिये।

"India is a rich country inhabited by the poor'. Discuss critically.

५. पुरातन भारतवर्ष के आर्थिक ढाचें पर एक स्पष्ट टिप्पणी लिखिये। किन २ बातों में उस समय का भारतवर्ष अन्य देशों की अपेक्षा अधिक उन्नतिशील था ?

Write a lucid note on the economic condition of India in olden days. In what respects was India more developed than other countries?

६. पुराने समय के भारतवर्ष की ग्रामीण तथा नागरिक एवं आर्थिक जीवन पर एक नोट लिखिये।

Write a note on the economic life of the Indian village and town in olden days.

: ५ :

कृषि

भारतववर्ष एक कृषि प्रधान देश है। भारत के आर्थिक जीवन में कृषि का एक बड़ा महत्वशाली स्थान है। कृषि ही इस देश का सब से अधिक महत्वपूर्ण व्यवसाय है। लग भग ७०% लोग इस व्यवसाय में संलग्न हैं। भारतवर्ष के एक कृषि प्रधान-देश होने का पता निम्नलिखित बातों से चलता है:—

(१) भारतवर्ष में अमेरिका से अधिक भूमि में कृषि होती है यद्यपि अमेरिका संसार में सब से अधिक महत्वपूण कृषक देश है।

(२) भारतवर्ष में सब देशों से अधिक गन्ना उत्पन्न होता है।

(३) मूंगफली भारतवर्ष में सब देशों से अधिक उपजती है और Linseed की उपज में भारतवर्ष का संसार के देशों में दूसरा स्थान है।

(४) 'लाख' केवल भारतवर्ष में ही पाई जाती है।

(५) भारतवर्ष में संसार के अन्य देशों से अधिक पशु पाये जाते हैं।

(६) कृषि-जन्य पदार्थों की मात्रा की दृष्टि से भारतवर्ष का संसार में तीसरा स्थान है।

(७) सब देशों की सन की मांग भारतवर्ष ही पूरी करता है।

(८) गेहूं, कपास, चावल आदि की उपज में यह संसार के देशों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

(९) चाय की उपज में भारतवर्ष का दूसरा स्थान है।

परन्तु यह सब होते हुए भी भारतवर्ष के रहने वालों की आवश्यकताओं को देखते हुए कृषि की उपज कम है। भारतवर्ष को अन्य देशों से अनाज की आयात करनी पड़ती है। देश के विभाजन का भी भारतवर्ष की कृषि पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। विभाजन के फलस्वरूप पटसन, गेहूं तथा कपास की भूमि पाकिस्तान में चली गई है। इस से भारतवर्ष में इन वस्तुओं की और भी कमी हो गई है। इसी कमी के कारण भारतवासियों और भारत सरकार के सन्मुख एक कठिन समस्या उत्पन्न हो गई है। इस समस्या के कई कारण हैं। इस के पूर्व कि हम अन्य बातों का अध्ययन करें, हमें भारतवर्ष की कृषि की विशेषताओं को भी भली-भांति समझ लेना चाहिये क्योंकि इन का अध्ययन और अन्य बातों के समझने में सहायक होगा। ये विशेषतायें निम्नलिखित हैं:—

(१) भारतवर्ष में अधिकतर भूमि में अनाज की खेती की जाती है।

(२) भारतवर्ष में कोई भी फसल पशुओं के चारे के लिये नहीं बोई जाती। चारा अधिकतर अनाज से प्राप्त होता है।

(३) भारतवर्ष में खाद्य का प्रयोग बहुत कम और दोषपूर्ण हैं। पशुओं का गोबर जो कि बहुमूल्य खाद है जला दिया जाता है।

(४) प्रति एकड़ उपज अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है।

(५) भारतवर्ष के बैल जिन पर कृषि का समस्त भार है, बहुत दुर्बल हैं और बड़े-बड़े हल नहीं चला सकते;

(६) भारतवर्ष में अधिक गहराई तक हल चलाना उपयुक्त नहीं क्योंकि तेज़ वर्षा के कारण हल द्वारा ऊपर लाई गई मिट्टी को पानी बहा ले जाता है।

(७) भारतवर्ष की भूमि से वर्ष भर में एक से अधिक फसलें प्राप्त की जा सकती है।

भारतवर्ष की समस्त भूमि के लगभग ५३% भाग में खेती की जाती है। इस में से ६% भाग प्रतिवर्ष खाली छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार केवल ४४% भूमि में खेती होती है। जितने भाग में कृषि होती है उसके ८०% में अनाज और २०% में अन्य वस्तुओं की खेती की जाती है। यह भूमि लगभग २६ करोड़ एकड़ है। लगभग १५ करोड़ एकड़ भूमि कृषि के योग्य नहीं और १२ करोड़ एकड़ भूमि ऐसी है जो कृषि के योग्य है परन्तु उसमें कृषि नहीं होती। भिन्न भिन्न प्रान्तों में निम्न प्रकार कृषि होती है :—

	समस्त भूमि का प्रतिशत
हैदराबाद	६२
बम्बई	५८
यू. पी.	५२
बंगाल	५०
पंजाब	४७
बिहार	४५
मद्रास	४०
मध्यप्रान्त	३९
मध्यभारत	३८
मैसूर	३६
राजपुताना	३६
उड़ीसा	३२
आसाम	१९

इस अंकों मे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि कई प्रान्तों में कृषि की बहुत उन्नति की जा सकती है। परन्तु वर्तमान परिस्थिति में भारतवर्ष की कृषि की बहुत हीन अवस्था है।

भारतवर्ष की कृषि की हीन अवस्था के कारण

भारतवर्ष में कृषि द्वारा जो उपज होती है वह बहुत थोड़ी है। यहां कृषि द्वारा भूमि से उसी मात्रा में वस्तुएँ उत्पन्न नहीं होतीं जितनी संसार के अन्य सभ्य देशों में हो रही हैं। अमेरिका, इंगलैण्ड, रूस और योरप के अन्य देशों ने पिछले पचास वर्षों में कृषि की उपज तथा साधनों में आश्चर्यजनक उन्नति की है। कृषि की उपज के लिये उन्होंने वर्तमान काल के नवीन से नवीन औज़ार तथा हल इत्यादि खोज निकाले हैं। उन देशों में सर्वोत्तम एंव वैज्ञानिक बीज तथा खाद्य का भी प्रयोग हो रहा है। इसी कारण वे देश कृषि की उपज में उत्तरोत्तर उन्नति कर रहे हैं और अधिक से अधिक सुखी हो रहे हैं। किन्तु भारतवर्ष में कृषि की दशा अत्यन्त हीन व शोचनीय है। यदि देशान्तरों की कृषि की उपज को भारत की उपज से मिलाया जाय तो एक बड़ा अन्तर मिलेगा। निम्न अंकों से यह बात स्पष्ट है :—

उत्पादन प्रति एकड़ (पौंड)

	कपास	गेहूं	चावल
अमेरिका	१५१	७७५	१७५५
जापान	३४७	१३१८	३२३२
मिश्र	२६४	१४६६	२६१०
भारतवर्ष	८६	६७७	१३३६

हमने ऊपर केवल तीन ही वस्तुओं की उपज को अमेरिका

जापान तथा मिश्र की उपज से मिलाकर दिखाया है और इन सब की उपज भारतवर्ष में सब से कम है। वास्तव में जो भी वस्तुएं उत्पन्न होती हैं उन सब की उपज इस देश में न्यूनतम है यद्यपि भारतवर्ष को प्रकृति की ओर से प्रत्येक वस्तु प्राप्त है किन्तु फिर भी यहाँ की उपज बहुत ही कम है। इसके कारण निम्नलिखित हैं:—

(१) भारतवर्ष में उपज की इस कमी का सब से अधिक उत्तरदायी यहां का किसान है। यहां का कृषक अयोग्य व अशिक्षित है। अशिक्षित होने के कारण उसे अन्य देशों के विषय में कुछ ज्ञात नहीं होता। वह नहीं जानता कि संसार कितना आगे बढ़ चुका है और कृषि की उपज एवं साधनों में क्या २ परिवर्तन हो चुके हैं। उसके विचार अत्यन्त पुराने व प्रौढ़ हैं। नवयुग का उस पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है। उसको किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती। वह अत्यन्त निर्धन है। इसी लिये वह किसी प्रकार की उन्नति करने में असमर्थ है और भूमि से अधिक मात्रा में उपज प्राप्त नहीं कर सकता।

(२) किसान की अशिक्षा के साथ एक अन्य बात यह भी है कि वह बहुत ऋणी है। उस पर साहूकार का इतना ऋण होता है कि वह इससे छूट नहीं सकता। जो कुछ भी वह पैदा करता है साहूकार को सस्ते मूल्य पर बेचना पड़ता है। परिणाम स्वरूप उसकी अपने काम में अरुचि हो जाती है और उपज घटती चली जाती है।

(३) उपज के अभाव का तीसरा कारण भारतवर्ष में सिंचाई का अभाव है। अच्छी उपज के लिये पानी अति आवश्यक है। भारतवर्ष में सिंचाई का बहुत अभाव है। यहां पर सिंचाई द्वारा भूमि के केवल $\frac{1}{4}$ भाग को पानी दिया जा सकता

है। शेष भूमि को वर्षा पर आश्रित रहना पड़ता है। यह सबको ज्ञात है कि भारतवर्ष में वर्षा का कोई नियम एवं विश्वास नहीं है। इसलिये कृषकों को बहुधा वर्षा के साथ उपज का जुआ खेलना पड़ता है। इस कारण उपज बहुत कम होती है।

(४) उपज की वृद्धि के लिये उत्तम भांति के बीज प्रयोग करना भी महान् आवश्यक है। किन्तु हमारे देश में उत्तम बीज का अतीव अभाव है। हमारे देश में उत्तम बीज अप्राप्त हैं। वह बहुधा दोषयुक्त होते हैं। यद्यपि वर्तमान समय में उत्तम बीज प्रयोग करने का प्रति दिन प्रयत्न हो रहा है फिर भी भारतवर्ष में १० प्रतिशत से अधिक भूमि में उत्तम बीज नहीं बोये जाते। फलतः कृषि द्वारा बीज का दोष भी दूर नहीं होता। परिणाम स्वरूप उपज घटती चली जाती है।

(५) इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में भली प्रकार की खाद्य भी भूमि को नहीं दी जाती। एक खेत में एक उपज होने के अनन्तर उसकी उपजाऊ शक्ति कम हो जाती है। इस अभाव की पूर्ति के लिये भूमि को खाद्य दी जाती है। सर्वश्रेष्ठ खाद हड्डियों व औषधियों के रूप में होती है। किन्तु इस देश में इनके प्रयोग की रीति नहीं। प्रौढ़ विचारों के कारण वह हड्डियों का प्रयोग नहीं करना चाहते और औषधियों के प्रयोग से वह अनभिज्ञ हैं। इसके पश्चात् खल भी बड़ी लाभदायक वस्तु है परन्तु इसको खाद्य के रूप में प्रयोग करने की अपेक्षा बाहर भेज दिया जाता है। अब केवल गोबर इत्यादि का प्रयोग हो सकता है। पशुओं के गोबर तथा पेशाब द्वारा भी भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकता है। परन्तु भारत में गोबर के उपले बनाने तथा उनको जलाने की रीति प्रचलित है इसलिये भारत-

वर्ष में भूमि को वास्तव में किसी प्रकार का भी खाद्य अप्राप्त है। फलतः उपज कम होती है।

(६) भारतवर्ष की कृषि में एक और बड़ा दोष यह है कि भूमि अधिकतर जमींदारों के हाथ में है और वह स्वयं उसको नहीं बोते। वह भूमि को कृषकों पर छोड़ देते हैं तथा उपज की वृद्धि के लिये स्वयं प्रयत्नशील नहीं होते। किसानों के पास भूमि केवल उसी समय तक रहती है जब तक जमींदार की इच्छा हो। फलस्वरूप उनकी अपने काम में अरुचि हो जाती है और वह भी उपज की ओर ध्यान नहीं देते। परिणाम स्वरूप उपज की वृद्धि का कोई प्रयत्न नहीं होता। जमींदारी अब समाप्त होती जा रही है और इस प्रकार यह दोष दूर होता जा रहा है।

(७) उपज के अभाव का अन्तिम कारण भूमि अथवा खेत की बहुत थोड़ी मात्रा तथा क्षेत्रफल है। वास्तव में भारतवर्ष में किसानों के पास भूमि के इतने छोटे २ टुकड़े हैं कि उनके बोने से लाभ नहीं हो सकता। यह सब इस लिये होता है कि इस देश में भूमि को कई भागों में विभाजित किया जाता है। अनेक भागों में विभाजित होने के कारण इसको बोने में कोई लाभ नहीं होता। फलतः उपज प्रतिदिन घटती चली जाती है।

कृषि की दशा को सुधारने के उपाय—भारतवर्ष में उपज की कमी के प्रधान कारण हम ऊपर वर्णित कर चुके हैं। अब हमारा यह भी कर्त्तव्य है कि हम इस उपज की वृद्धि के उपाय भी सोचें। उपज की वृद्धि के लिये यह आवश्यक है कि हम ऐसे उपाय खोजें जिनसे भूमि की अवस्था में सुधार हो और इस प्रकार उपज प्रति एकड़ बढ़े। विदेशों में इस विषय में असाधारण उन्नति की जा चुकी है। इसी प्रकार यह सब कुछ भार-

तवर्ष जैसे धनाड्य देश में और भी भली प्रकार हो सकता है। इस लिये हमको कृषि में सर्वोत्तम बीज, खाद्य तथा हल इत्यादि का प्रयोग करना चाहिये। वर्तमान सभ्य देशों से नवीन उपाय सीखने चाहियें। इसके साथ २ कृषकों की अवस्था सुधारने में प्रयत्नशील होना चाहिये। जमींदारों के अधिकार कम करने चाहियें। भमि किसानों के अधिकार में होनी चाहिये। उनको उपज बढ़ाने के लिये उत्साहित करना चाहिये। इसके अतिरिक्त पौदों की बीमारियों को रोकना तथा अधिक सिंचाई का प्रबन्ध करना भी आवश्यक है। भूमि की मात्रा में वृद्धि करनी चाहिये जिससे इसको बोने में लाभ हो और उपज प्रति एकड़ बढ़े।

इसके अतिरिक्त एक उपाय यह भी हो सकता है कि अधिक भूमि को बोया जाय। भारतवर्ष में जितनी भूमि बोने योग्य है उसका केवल ६३ प्रतिशत भाग बोया जाता है। शेष ३७ प्रतिशत में से अधिक भूमि को बोने का प्रयत्न करना चाहिए। यह स्पष्ट है कि जितनी अधिक भूमि बोयी जायेगी उतनी ही उपज बढ़ेगी। इसके अतिरिक्त इस ६३ प्रतिशत भूमि का १८ प्रतिशत प्रतिवर्ष खाली भी छोड़ना पड़ता है। यह खाली इसलिये छोड़ी जाती है कि अपनी खोई हुई उपजाऊ शक्ति को फिर से प्राप्त कर ले। किन्तु भूमि को खाद्य तथा अन्य उपायों से भी अधिक उपजाऊ बनाया जा सकता है इसलिये हमको यह प्रयत्न करना चाहिये कि अधिक से अधिक भूमि बोई जाय और कम से कम खाली छोड़ी जाय।

इस प्रकार भारतवर्ष की उपज में वृद्धि की आशा की जा सकती है।

भारतवर्ष में भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े

भारतवर्ष में कृषि की भमि कई छोटे-छोटे भागों में विभा-

जित है और एक ही व्यक्ति की भूमि इन छोटे-छोटे भागों में दूर-दूर विस्तृत है। प्राय:एक व्यक्ति के पास जो भूमि होती है वह कई टुकड़ों में विभाजित होती है और उस भूमि का प्रत्येक टुकड़ा परस्पर बहुत दूर होता है। भारतवर्ष में पैतृक नियमानुसार एक व्यक्ति की भूमि उसकी मृत्यु के अनन्तर उसकी सन्तानों में समानत: विभाजित कर दी जाती है। उदाहरण के लिये मान लो एक व्यक्ति जिसके पास दो एकड़ भूमि है, मर जाता है, उस की दो संतानें 'अ' तथा 'ब' हैं। 'अ' और 'ब' के भाग में भूमि का एक-एक एकड़ आयेगा। तदनन्तर मानलो 'अ' और 'ब' दोनों के दो-दो लड़के हैं। 'अ' और 'ब' की मृत्यु पर भूमि का पुन: विभाजन होगा। अब उनकी सन्तानों के भाग में ½ एकड़ भूमि आयेगी।

इसलिये केवल दो पीढ़ी के पश्चात् ही भूमि दो एकड़ से आधा एकड़ रह जाती है। यदि इसके अनन्तर भी यह विभाजन इसी प्रकार होता रहे तो भूमि के इतने छोटे २ भाग बन जाते हैं कि उनकी कृषि में कोई भी लाभ नहीं होगा। इस देश में भूमि के विभाजन से साधारण व्यक्ति की भूमि का क्षेत्र अत्यन्त थोड़ा रह गया है। बहुधा एक व्यक्ति की औसत भूमि तीन एकड़ होती है। यदि हम भूमि के इस क्षेत्र को अन्य देशों के निवासियों की भूमि के क्षेत्र से मिलायें तो एक बड़ा अन्तर मिलेगा। अमेरिका में साधारण व्यक्ति की भूमि का औसत क्षेत्र १४५ एकड़, डैनमार्क में ४० एकड़, जर्मनी में २१.५ एकड़ और इङ्गलैण्ड में २० एकड़ है। इसलिये भारतवर्ष में भूमि के क्षेत्र को देखकर यह स्पष्ट होता है कि यहाँ की कृषि की दशा अत्यन्त शोचनीय है।

भारतवर्ष में भूमि के इतने छोटे २ भागों में विभाजित होने और उन भागों के एक ही स्थान पर न होने के अनेक कारण

हैं। सब से बड़ा कारण यह है कि भारतवर्ष में पैतृक नियम ऐसे हैं जिनके अनुसार बाप-दादा की जायदाद उनकी संतान में समानतः बाँट दी जाती है। इससे प्रत्येक लड़के के भाग में जो भूमि आती है वह बहुत थोड़ी होती है और उसकी कृषि में कोई लाभ नहीं होता। पैतृक नियम के साथ २ अङ्गरेजी न्यायालय भी हमारी कृषि को अधिक से अधिक हानि पहुँचाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। इनके कारण सम्पूर्ण भारतवर्ष में भूमि का क्षेत्र प्रत्येक व्यक्ति के पास बहुत थोड़ा रह गया है तथा भूमि के पृथक पृथक भाग दूर २ होने के कारण इनमें बहुत हानि हुई है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष की जन-संख्या बढ़ जाने से भी साधारण भूमि के क्षेत्र की औसत प्रति व्यक्ति बहुत घट गई है। जब एक देश में जन-संख्या बहुत बढ़ जाती है तो इसकी भूमि पर बहुत भार पड़ जाता है। इस लिये वहां की भूमि का बहुत थोड़ा भाग प्रत्येक व्यक्ति को मिल सकता है। इस समय देश की समस्त भूमि अनेक भागों में विभाजित हो जाती है और इसका क्षेत्र बहुत कम रह जाता है। जन-संख्या की वृद्धि के साथ साथ भारतवर्ष में एक ही कुटुम्ब में समस्त संतान की एक साथ रहने की रीति भी टूटती जा रही है।

प्रचलित शिक्षा के प्रभाव से मनुष्यों में इंगलैण्ड के समान माता-पिता से अलग रहने की रीति नित्य प्रति उन्नति कर रही है। पहले जब कुटुम्ब के समस्त प्राणी परस्पर मेल-जोल से एक ही घर में रहते थे तो उनकी आय एक ही जगह एकत्रित होती थी और वह एक ही कार्य इकट्ठा मिल कर करते थे। परन्तु अब वर्तमान मनुष्यों के अपने माता-पिता से अलग होने पर भूमि तथा अन्य जायदाद को विभाजित करने का प्रश्न सर्व-प्रथम उठता है। इस प्रकार भूमि के टुकड़े होते चले जाते हैं और इनका कोई भी लाभ नहीं रहता। इसके अतिरिक्त प्राचीन काल

में भारतवर्ष में घरेलू-उद्योग बहुत प्रचलित थे और इनसे बहुत मनुष्य जीविका उपार्जन करते थे। क्योंकि अनेक मनुष्य घरेलू-उद्योग पर आश्रित थे इसलिये भूमि पर कम भार था। किन्तु १६ वीं शताब्दी में उद्योग में बिजली व कलों का प्रयोग होने लगा और इस प्रकार घरेलू-उद्योग को मिलों व कारखानों का सामना करना पड़ा। घरेलू-उद्योग नष्ट हो गये तथा इनमें कार्य करने वाले पुनः भूमि के उत्पादन पर निर्भर रहने लगे। भूमि पर भार बढ़ गया और इस भांति इसके अधिक से अधिक टुकड़े होकर उनका क्षेत्र बहुत कम रह गया। इन कारणों के साथ भारतवर्ष के कृषकों की निर्धनता ने भी भूमि के छोटे २ टुकड़े करने में सहायता दी। इसके परिणाम स्वरूप यह भारतीय कृषि का एक बड़ा दोष बन गया है। इसके कारण न तो उत्पादन अच्छा होता है और न ही कृषि में सुधार किया जा सकता है।

भूमि के इस भांति छोटे-छोटे टुकड़े होने से भारतीय कृषि को बड़ी हानि हुई है। भूमि के टुकड़ों का क्षेत्र इतना छोटा रह गया है कि उनको लाभप्रद रूप में बोना असम्भव हो गया है। जो बचत व लाभ बड़ी मात्रा की कृषि में प्राप्त हो सकते हैं सब नष्ट हो जाते हैं। श्रम की बचत की कलें जैसे ट्रैक्टर, थ्रैशर इत्यादि का प्रयोग नहीं किया जा सकता। भूमि के टुकड़ों का क्षेत्र इतना छोटा है कि उस पर दो बैल भी सुविधा से हल नहीं चला सकते। इस विषय में यह कहा जा सकता है कि निकट के खेतों के कृषक मिल कर एकत्रित कार्य कर सकते हैं और इस प्रकार बड़ी मात्रा में कृषि के लाभ प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु यह बात वही मनुष्य कहते हैं या कह सकते हैं जो ग्रामों की दशा को वास्तविक रूप में नहीं जानते। ग्रामों में निकटस्थ खेतों के कृषक परस्पर मेल-जोल नहीं रखते। वह छोटी-छोटी बातों

पर लड़ते-झगड़ते रहते हैं। भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाने पर सीमा इत्यादि लगाने पर बहुत सी भूमि नष्ट हो जाती है और सीमा व मार्गों के कारण कृषकों में अधिकतर झगड़े होते रहते हैं। यह झगड़े हमारी कृषि के लिये बहुत हानिकारक सिद्ध होते हैं। यह छोटी २ बातों से आरम्भ होते हैं और मुकद्दमे तक पहुँच जाते हैं। कृषकों को इस असभ्यता और झगड़े से बचाने के लिये उन्हें सभ्य बनाना अति आवश्यक है। भारत-वर्ष में वर्षा भी सदा उचित मात्रा में और समय पर नहीं होती। इसके लिये हमको सिंचाई की आवश्यकता होती है। परन्तु हमारी भूमि के टुकड़े इतने छोटे और दूर-दूर वितरित होते हैं कि उनको सुगमता से नहीं सींचा जा सकता। सिंचाई के सभ्य और वर्तमान साधन बड़े-बड़े खेतों के लिये ही लाभ-दायक सिद्ध हो सकते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि भूमि का उत्पादन बहुत कम हो जाता है। छोटे-छोटे खेतों में सीमा व मेंड़ भी नहीं लगाई जा सकती। इसलिये बहुधा मवेशी अथवा जङ्गली जानवर खेत को नष्ट करते रहते हैं। वर्षा न होने से कृषि के उत्पादन का कोई विश्वास नहीं रहता। यह एक प्रकार का जुआ बन गया है। यदि वर्षा हो जाय तो उत्पत्ति अच्छी होती है नहीं तो प्रायः अकाल पड़ जाता है। छोटे २ खेतों की देख भाल कृषक स्वयं नहीं कर सकते। उनमें रक्षा न होने के कारण प्रायः चोरी हो जाती है। कृषक स्वयं दिन-रात खेत पर नहीं रह सकता और इस भांति वह इसकी देख-भाल नहीं कर सकता।

इस के अतिरिक्त कृषि में भी भूमि के छोटे छोटे टुकड़े होने और उनके दूर-दूर वितरित होने से अनेक कठिनाइयां आ जाती हैं। प्रत्येक टुकड़े को खाद्य देने के लिये खाद्य को स्थानान्तरित करना पड़ता है। इससे अधिक व्यय और श्रम होता है। इस

के अतिरिक्त फसल काटने पर समस्त टुकड़ों की उत्पत्ति को एक स्थान पर एकत्रित करना पड़ता है और इस भांति अधिक श्रम होता है। खेती को बोने या हल चलाने में भी पुनः उन्हीं स्थानों पर आना-जाना पड़ता है। कृषक के सम्पूर्ण मवेशी भी एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े में आते-जाते हैं। इस प्रकार उनका गोबर आदि मार्ग में या भिन्न २ स्थानों पर वितरित होकर नष्ट हो जाता है। यदि वह एक ही स्थान पर रक्खे जायं तो एक ही खेत में उनका गोबर इत्यादि तुरन्तु इकट्ठा होकर खाद्य के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

इस लिये यह स्पष्ट है कि भूमि के अनेक टुकड़े होने और उनके दूर-दूर वितरित होने से कृषि को बहुत हानि होती है। इसकी रोक-थाम करना आवश्यक है।

कृषक ऋण

भारतवर्ष की कृषि की हीन अवस्था का एक कारण यह है कि भारतीय ऋण-ग्रस्त हैं। भारतीय-कृषक इतना ऋणीं होता है कि आयुभर इस ऋण से उऋण नहीं हो सकता। यह ऋण कृषि के लिये एक प्रकार का रोग है। जो कृषक ऋणी हैं उनकी काम में रुचि नहीं रहती और इस भांति कृषि की उत्पत्ति भी बहुत कम होती है। निसन्देह प्राचीन-काल में भी भारतीय कृषक ऋणी होते थे परन्तु उनकी वर्तमान दशा बहुत हीन है। उस समय यदि कृषक ऋण लेते थे तो वह ऋण इकट्ठा नहीं होता था और न ही उन्हें भार प्रतीत होता था। किन्तु आधुनिक समय में ऋण की मात्रा उत्तरोत्तर वृद्धि कर रही है और कृषक इससे उऋण होने में असमर्थ हैं। भारतवर्ष में अङ्गरेजों के आगमन के समय से कृषक-ऋण प्रतिदिन बढ़ रहा है। भिन्न भिन्न समय में इसकी मात्रा का अनुमान लगाया गया है। सन् १६२१ में भारत का कृषक-ऋण लगभग नौ सौ करोड़ रुपये था। इसके अनन्तर इसमें वृद्धि

होती रही है और अब यह ऋण १४०० करोड़ रुपये से कम नहीं है। वास्तव में ऋण का भार प्रति कृषक पर तो अधिक नहीं है किन्तु यदि हम भारत के कृषकों की दशा पर दृष्टिपात करें तो हम को वह ऋण अवश्य एक भार स्वरूप प्रतीत होगा। भारतीय-कृषक अत्यन्त निर्धन है और उस के पास बोने के लिये भी बहुत कम भूमि है। फलतः उसको थोड़ा ऋण भी भार प्रतीत होता है। उसकी आय इतनी थोड़ी है कि उसका निर्वाह भी कठिनाई से होता है। इस कारण वह उऋण तो हो ही नहीं सकता। वास्तव में जब वह जन्म लेता है तो भी ऋणी होता है और मृत्यु-शय्या तक इस ऋण से मुक्त नहीं हो सकता।

कृषक-ऋण के इतनी मात्रा में एकत्रित हो जाने के कारणों पर ध्यान देना भी हमारा कर्त्तव्य है। इसके प्रधान कारण निम्न-लिखित हैं :—

(१) कृषक-ऋण की वृद्धि होने का सर्वप्रथम व प्रधान कारण भारत के कृषकों की निर्धनता है। हमारा कृषक निर्धन ही नहीं बल्कि अतीव निर्धन है। उसकी आय इतनी थोड़ी है कि वह अपना निर्वाह नहीं कर सकता। हमको ज्ञात है कि भारतवासी की औसत आय ६५) रुपये वार्षिक है। यह औसत तो उद्योग की आय मिलाने से बढ़ जाती है। यदि केवल कृषकों की ही आय का औसत निकाला जय तो वह अत्यन्त थोड़ा होगा। ऐसी हीन अवस्था का कारण उसकी अशिक्षा है। उसके पास भूमि का अभाव है और कोई घरेलू उद्योग नहीं है। जब आय इतनी अपर्याप्त है कि निर्वाह भी नहीं हो सकता तो उन्हें जीवित रहने के लिये ऋण लेने को विवश होना पड़ता है। यह स्पष्ट है कि आय अपर्याप्त होने के परिणाम स्वरूप वह इस ऋण से मुक्त नहीं हो सकता। इस कारण ऋण प्रति-दिन बढ़ता जाता है।

(२) भारतीय-कृषक अशिक्षित है। अशिक्षित होने के साथ वह अत्यन्त व्ययी है। भारतवर्ष में वर्तमान काल में भी रीति-रिवाजों की अत्यन्त भरमार है। हमारा कृषक अपनी अज्ञता-शून्यता के कारण विवाह, उत्पत्ति, मृत्यु तथा अन्य रीतियों में बड़े परिमाण में रुपया व्यय करता है। वह मुकद्दमेबाज़ी में भी रुचि रखता है। इन सब पर व्यय करने के लिये उसे अवश्य ऋण लेना पड़ता है। क्योंकि यह रुपया नष्ट किया जाता है इससे उसकी आय में कोई वृद्धि नहीं होती। इस लिये उऋण होना असाध्य होता है और यह उत्तरोत्तर वृद्धि करता रहता है।

(३) भारतवर्ष की कृषि की उत्पत्ति निश्चित नहीं है। जैसा हमको ज्ञात है हमारा कृषक वर्षा पर आश्रित हैं। देश में सिंचाई का अभाव है। भारतवर्ष में वर्षा बहुत अनिश्चित है और जब समय पर वर्षा न हो तो प्रायः अकाल पड़ जाता है। हमारा कृषक जो कि अधिकांश भूखा रहता है अकाल के समय में और भी हीनावस्था में हो जाता है। इसके पशुओं की मृत्यु हो जाती है तथा बीज नष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में उसको ऋण लेने के लिये विवश होना पड़ता है और फिर इससे मुक्त नहीं हो सकता।

(४) भारतवर्ष की रीतियों में एक और बड़ा दोष है। यदि एक व्यक्ति अपना ऋण न चुका सके तो उसकी भावी संतान को चुकाना पड़ता है। इस भांति प्रायः बाप-दादा के ऋण से उनकी संतति उऋण होना चाहती है और इस प्रयत्न में वह नया ऋण लेते हैं। परन्तु इसका कोई लाभ नहीं होता और उनका ऋण घटने के स्थान पर वृद्धि करता रहता है।

(५) इस देश में भूमि का लगान अत्यधिक है और इसे

वसूल करने का साधन भी अत्यन्त दोषयुक्त है। भूमि का लगान देने के लिये बहुधा कृषक को ऋण लेना पड़ता है और इसको चुकाने में वह असमर्थ हो जाता है।

(६) भारतवर्ष में कृषक-ऋण की वृद्धि होने का अन्तिम कारण इस देश की ब्याज की दर है। ब्याज की दर यहां पर बहुत अधिक है यहां प्रायः साहूकार कृषकों को ऋण देते हैं। वह अत्यधिक ब्याज लेते हैं और प्रायः ब्याज पर ब्याज की रीति से ब्याज का अनुमान करते हैं। कभी कभी वह बेईमानी से कृषकों की अशिक्षा से लाभ उठा कर अपने बही खाते में भी गड़बड़ कर लेते हैं। इस कारण ऋण का भार उन पर उत्तरोत्तर वृद्धि करता रहता है।

कृषक ऋण का आर्थिक अवस्था पर प्रभाव कृषक-जीवन और देश के आर्थिक जीवन पर ऋण का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। जब कृषक ऋणी हो जाता है तो उसकी अपने कार्य में रुचि नहीं रहती, वह उत्पत्ति की वृद्धि करने तथा भूमि की दशा में सुधार करने का कोई प्रयत्न नहीं करता। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी वह भूमि से उत्पन्न करता है वह समस्त उसे साहूकार को ब्याज के रूप में देना पड़ता है अथवा कभी साहूकार उसके माल के बदले में रुपये दे देता है। उसके माल को साहूकार बहुत ही कम मूल्य पर क्रय करता है। बहुधा ऐसा भी होता है कि अन्न के साथ साहूकार ऋणी-कृषक का मकान, पशु इत्यादि भी गिरवी रख लेता है और इस प्रकार उसके बैल व रहने के घर तक साहूकार के अधिकार में चले जाते हैं। उसके पास कोई भूमि नहीं रहती और अन्त में उसे साहूकार के यहां मुफ्त काम भी करना पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक बार ऋण में फंसकर वह इससे

मुक्त नहीं हो सकता तथा आयु भर आपत्तियों का सामना करता रहता है।

सुधार के साधन अब इस दशा को सुधारने के उपाय सोचना भी अति आवश्यक है। वास्तव में यदि हम कृषक की दशा सुधार कर उसका जीवन सुखी बनाने के इच्छुक हैं तो उसके ऋण चुकाने की समस्या को सुलझाना अति आवश्यक है। इस विषय में कृषक की अधिक से अधिक सहायता की जानी चाहिये। उसकी दशा को सुधारने के लिये सर्वप्रथम समस्त कृषकों के ऋण का हिसाब-किताब देखना आवश्यक है। इस काम के लिये बहुत योग्य व्यक्ति और विशेषज्ञ नियत किये जाने चाहियें और इस प्रकार जो भी झूठा एवं अनुचित ऋण हो उसे तुरन्त काट देना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य ऋणों को भी बहुत कम कर देना चाहिये। कृषक अपने ऋणों पर लगातार १० साल तक ब्याज दे चुके हों तो उनसे उस ऋण के लिये और रुपया न लेना चाहिये और ऐसे ऋण को चुकाया हुआ समझना चाहिये। इसके पश्चात् जो भी ऋण अवशेष हो उसको चुकाने के उपाय सोचने चाहियें। इसका एक रूप तो यह हो सकता है कि सरकार ऐसे ऋण को अपने सिर लेकर स्वयं उसको चुका दे। परन्तु इस प्रकार एक देश के ऊपर बहुत भार पड़ता है। इसके अतिरिक्त पारस्परिक सहायता के भूमि रहन रखने वाले बैंक (Co-operative Land Mortgage Banks) स्थापित किये जाने चाहिये। ऐसे बैंक कृषकों को लम्बे समय के लिये ऋण दे सकते हैं और इस प्रकार ऋण चुकाये जा सकते हैं।

परन्तु इन उपायों के साथ-साथ कृषकों की आर्थिक-दशा सुधारना भी परमावश्यक है। यदि उनकी आर्थिक दशा न

सुधारी जाये तो उनका ऋण एक बार चुकाने के पश्चात् फिर एकत्रित हो जायेगा। इसलिये इस रोग का वास्तविक इलाज केवल उसी समय सम्भव है जब इनकी आर्थिक-दशा में सुधार हो। इनकी उत्पत्ति में वृद्धि का अधिक से अधिक प्रयत्न करना चाहिये और इस प्रकार उसकी आय बढ़ानी चाहिये। इसके साथ-साथ उसे शिक्षित एवं सभ्य (दूरदर्शी) भी बनाना चाहिये। उसको यह भली भांति ज्ञात करा देना चाहिये कि निकम्मी व प्रौढ़ रीतियों में फसकर व्यर्थ रुपया नष्ट करने से उसका सम्पूर्ण जीवन नष्ट हो जाता है। ऋण केवल बड़ी और वास्तविक आवश्यकता के ही समय लेना चाहिये। इसके अनन्तर ऋण-दाताओं को भी सुधारना आवश्यक है। अधिक मे अधिक ब्याज की दर निश्चित करनी चाहिये और पारस्परिक सहायता के बैङ्कों को उन्नति करनी चाहिये। इन सब उपायों का प्रयोग करके काम करने से ही कृषक की दशा में सुधार की आशा की जा सकती हैं।

भारतवर्ष की पशु सम्पत्ति

भारतवर्ष में दुनियां के अन्य देशों से अधिक पशु हैं। लगभग दुनियां के पशुओं का ⅓ भाग भारतवर्ष में पाया जाता है। खेती के लिये पृथ्वी के अतिरिक्त पशु भी अति आवश्यक हैं। भारतवर्ष में लगभग ३१ करोड़ पशु हैं। हमारे देश में कृषि के लिये एक किसान के अधिकार में बहुत छोटे छोटे और कम क्षेत्रफल वाले खेत होते हैं। किसान की कुल भूमि भी एक स्थान पर नहीं पाई जाती परन्तु गाँव के भिन्न २ भागों में बिखरी होती है। इसलिये बड़ी २ मशीनों को प्रयोग में नहीं लाया जा सकता। पशुओं के बिना भूमि में हल नहीं चलाया जा सकता। अनाज को खेतों से गोदाम तक नहीं लाया जा सकता। खाने

पीने में भी पशुओं के न होने से बहुत कमी पड़ जाती है और भोजन शक्ति-शाली नहीं होता क्योंकि भारततर्ष में अधिकतर मनुष्य मान्साहारी नहीं हैं। ऐसे मनुष्यों के भोजन में घी और दूध का होना अत्यन्त आवश्यक है। यह दोनों वस्तुएं पशुओं से ही प्राप्त की जा सकती हैं। पशु किसान को गोबर के रूप में खाद्य भी देते हैं। यद्यपि भारतवर्ष के पशुओं की अवस्था ठीक नहीं है फिर भी पशुओं से प्रतिवष बारह सौ पंसठ करोड़ रुपये की आय होती है।

भारतवर्ष में अधिकतर और शक्ति-शाली पशु उत्तरी और पश्चिमी भागों में पाये जाते हैं। यह भाग काठियावाड़ से राजपूताना होते हुए पंजाब और काश्मीर तक जाता है। भारतवर्ष में सब से उत्तम पशु काठियावाड़ में मिलते हैं। मालवा और उत्तरी मद्रास में भी पशु पाये जाते हैं। भेड़, बकरियाँ काश्मीर की पहाड़ियों पर सबसे अधिक संख्या में पाई जाती हैं। पंजाब के शुष्क मैदान और दक्षिण की पहाड़ियों पर भेड़, बकरियाँ पाई जाती हैं। राजपूताना और सिन्ध में ऊंट लदाई और सवारी के काम आता है। आसाम में हाथियों से यही काम लिया जाता है।

परन्तु यहाँ के पशुओं की अवस्था शोक-जनक है। यह बहुत दुर्बल हैं और अधिकतर लाभदायक भी नहीं हैं। इसके निम्न-लिखित कारण हैं :—

(१) भारतवर्ष में अधिक संख्या में पशु पाये जाते हैं। जिनमें अधिकतर बेकार हैं। हमारे देश में लगभग ३१ करोड़ पशु पाये जाते है, और लगभग २१ करोड़ एकड़ पृथ्वी की खेती होती है। इस प्रकार सवासौ एकड़ में लगभग सौ पशु हैं। हॉलैण्ड में १०० एकड़ के लिये ३८ और मिश्र में २५ हैं।

भारतवर्ष में ३० करोड़ पशुओं में से केवल ६ करोड़ पशु लाभप्रद हैं। दस एकड़ भूमि में बैलों की एक जोड़ी है जो कि खेती-बाड़ी के काम के लिये कम है। इस प्रकार भारत में अधिक-तर पशु बेकार हैं। किसी अर्थशास्त्र के विज्ञाता का कथन है कि भारतवर्ष के पशु भारतवर्ष को खा रहे हैं। बंगाल में १०० एकड़ में १०६ पंजाब में ६८ और बम्बई में ४३ पशु पाये जाते हैं।

(२) भारतवर्ष के पशुओं को ठीक और शक्तिशाली भोजन नहीं मिलता।

(३) भारतवर्ष के पशु प्रतिवर्ष भिन्न भिन्न बीमारियों के कारण मर जाते हैं।

(४) भारतवर्ष के लोग बेकार पशुओं को अपने धर्म के विचारों से मारना ठीक नहीं समझते।

(५) Cross-breeding का न होना।

भारतवर्ष के पशुओं की अवस्था सुधारने के लिये इन सब विकारों को दूर करना चाहिये। Breeding के लिये विशेष प्रकार के पशुओं को छांट कर रखना चाहिये। Imperial Agricultural Research Institute पशुओं की नस्ल अच्छी करने और दूध इत्यादि की मात्रा बढ़ाने में अत्यन्त कोशिश कर रहा है। पशुओं के लिये खाने का प्रबन्ध भी ठीक करना चाहिये और जो भी चारा होता है उसे अच्छी प्रकार से उपयोग में लाना चाहिये। पशुओं की बीमारियों को रोकने के लिये साफ पानी का प्रबन्ध करना चाहिये और उन्हें साफ-सुथरी जगह में रखना चाहिये। किसानों को प्रोपैगन्डा और विद्या द्वारा सफाई का महत्त्व विशेष रूप से बतलाना चाहिये। देहातों में पशुओं के हस्पताल भी खोले जाने चाहियें और पशुओं की बीमारी की दवाई हर ढंग से करनी चाहिये। इन बीमारियों

को रोकने और उनका इलाज करने के तरीके ज्ञात करने चाहियें। Crossbreeding से पशुओं की नसलों को भी अच्छा करना चाहिये। वास्तव में भारतवर्ष को अधिक अच्छे लाभदायक, शक्तिशाली पशुओं की आवश्यकता है जो इन सब विकारों को दूर करने से हो सकता है।

सिंचाई के साधन

वर्षा के अतिरिक्त दूसरे अप्राकृतिक उपायों से खेत में पानी देने को सिंचाई (Irrigation) कहते हैं। भारतवर्ष में लगभग ¾ लोग कृषि का काम करते हैं। इसलिये यहां के लोग भूमि को हर प्रकार की हानियों और कमी से सुरक्षित रखना चाहते हैं और भूमि से अधिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। सिंचाई इन उपायों में से एक उपाय है। इससे भारतवर्ष की कृषि स्थायी और अधिक सुरक्षित हो जाती है। सिंचाई भारतवर्ष के लिये अति लाभदायक है। इस का विशेष कारण यह है कि भारतवर्ष में वर्षा कभी होती है और कभी नहीं। देश के भिन्न-भिन्न भागों में वर्षा आवश्यकतानुसार नहीं होती। भारतवर्ष की मिट्टी भी शुष्क है। देश के एक न एक भाग में अकाल प्रत्येक वर्ष बहुत हानि पहुँचाता है। राजपूताना, सिन्ध, दक्षिण-पश्चिमी-पंजाब में नहीं के बराबर वर्षा होती है। परन्तु इनमें से कुछ भागों की भूमि अत्यन्त उपजाऊ है। सिंचाई के बिना इन भागों में भूमि से कोई उपज उत्पन्न नहीं की जा सकती। गन्ना इत्यादि ऐसी उपज हैं जिनके लिये अधिक और निश्चित समय के पश्चात् पानी की आवश्यकता पड़ती रहती है। वर्षा से इनकी आवश्यकता पूरी नहीं हो सकती। भारतवर्ष के अधिकतर लोगों का साधन केवल खेती-बाड़ी होने के कारण ही भूमि पर काफ़ी ज़ोर है और इस आवश्यकता को पूरा करने के लिये जाड़ों में भी उपज तैय्यार करनी पड़ती

है। किन्तु जाड़ों में भारतवर्ष में वर्षा नहीं होती। केवल देश के एक दो भागों में कुछ वर्षा होती है इसलिये जाड़े को उपज बिना सिंचाइ के नहीं की जा सकती।

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में सिंचाई के लिये बहुत सी सुविधायें भी हैं। उदाहरण के लिए—सदा बहने वाली नदियां, नदियों का ढलान धीमा और धीमी चाल, मैदानी भाग होना और उपजाऊ भूमि और भूमि में अधिक पानी का होना। इन सब बातों के कारण सिंचाई भारतवर्ष के लिए अति आवश्यक है।

खेती के लिये जल की कितनी आवश्यकता है यह हम सब जानते हैं। परन्तु भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में वर्षा एक-सी नहीं होती। यदि चेरापूंजी में ४६० इंच प्रति वर्ष वर्षा होती है तो देश के कुछ भाग ऐसे भी हैं जहां केवल चार या पांच इञ्च वर्ष भर में वर्षा होती है। आसाम, बङ्गाल के पूर्वी भाग तथा पश्चिमी घाट के तट प्रदेश में इतनी जल-वृष्टि अवश्य होती है कि वहां खेती के लिये सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं, किन्तु अन्य भागों में सिंचाई के बिना खेती भली प्रकार नहीं हो सकती। यह बात भी निश्चित नहीं है कि देश के प्रत्येक भाग में साल भर में कितनी वर्षा होगी। देश के एक ही भाग में किसी वर्ष वर्षा औसत से अधिक होती है और किसी वर्ष बहुत कम। भारतवर्ष की वर्षा की एक और विशेषता यह है कि वर्षा केवल एक मौसम में होती है।

भारतवर्ष में वर्षा का कितना अधिक महत्व है यह तो इसी से प्रकट होता है कि जिस वर्ष भी वर्षा कम होती है उसी वर्ष अकाल पड़ जाता है। असंख्य जन-संख्या का जीवन कष्टमय बन जाता है और पशु भी मरने लगते हैं। इसी

कारण हम देखते हैं कि भारवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से सिंचाई के लिये नहरें, तालाब और कुओं का उपयोग किया जाता था। भारतवर्ष में कुआं, तालाब या नहर बनवाना एक महत्वपूर्ण कार्य समझा जाता था। प्राचीन समय में शासक, धनी मानी व्यक्ति सभी सिंचाई के लिए तालाब या बावड़ी बनवाना एक पुण्य-कार्य समझते रहे हैं। ब्रिटिश शासन काल में भी देश में नहरों का अच्छा विस्तार हुआ है जिससे उन प्रदेशों में सिंचाई के कारण अकाल की सम्भावना कम हो गई है।

देश के भिन्न-भिन्न भागों में सिंचाई का महत्व निम्न-लिखित अंकों से स्पष्ट हो सकता है :—

	खेत।की गई भूमि
सिन्ध	६१ प्रतिशत
पंजाब	५१ ,,
मद्रास	३१ ,,
यू. पी.	२८ ,,
बिहार	२२ ,,
राजपूताना	१८ ,,
उड़ीसा	१६ ,,

इस प्रकार इन अंकों से यह ज्ञात होता है कि पंजाब और सिंध प्रान्त सिंचाई में सब से अधिक महत्व रखते हैं। सिंध तो सारा ही पाकिस्तान में चला गया है। पञ्जाब में भी देश के विभाजन के पश्चात सिंचाई का अधिकतर भाग पाकिस्तान में चला गया है। विभाजन से पूर्व पञ्जाब में १·४ करोड़ एकड़ भूमि में सिंचाई होती थी। विभाज़न के पश्चात केवल ३० लाख एकड़ भूमि जिसमें सिंचाई होती है पूर्वी पंजाब में आई है। पूर्वी

पंजाब की २·३ करोड़ एकड़ भूमि में से केवल ३० लाख एकड़ भूमि में सिचाई होती है। सिचाई की जो बड़ी-बड़ी योजनायें थीं। वह सब पाकिस्तान के भाग में चली गई हैं। इस प्रकार भारतवर्ष की इस सम्बन्ध में दशा और भी खराब हो गई है।

विभाजन से पूर्व भारतवर्ष में जितनी भूमि में खेती होती थी उसके केवल १६ प्रतिशत भाग में सिचाई होती थी। इस समस्त भाग में से ३०% भाग पंजाब का था, १८ प्रतिशत मद्रास १७ यू. पी. और शेष अन्य प्रान्तों का भाग था। जहां तक भिन्न-भिन्न वस्तुओं का सम्बन्ध है. इन में गन्ना, गेहूं, चावल और कपास की उपज के लिये सिचाई अधिक महत्व रखती है।

भारतवर्ष में सिंचाई के निम्न साधन प्रयोग में लाये जाते हैं

(अ) नहरें, (ब) कुएं, और (स) तालाब।

प्रत्येक सिंचाई के साधन का महत्व निम्न चित्र से स्पष्ट हो जाता है: —
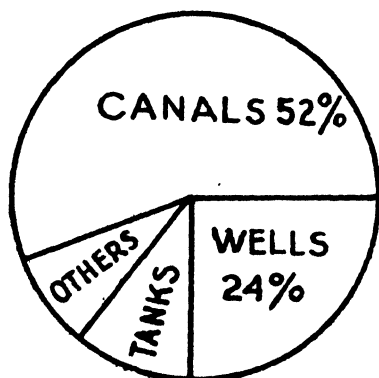
भिन्न-भिन्न सिंचाई के साधनों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है।

१. नहरों द्वारा सिंचाई—भारतवर्ष की भूमि की सिंचाई में नहरें सब से अधिक महत्व रखती हैं।
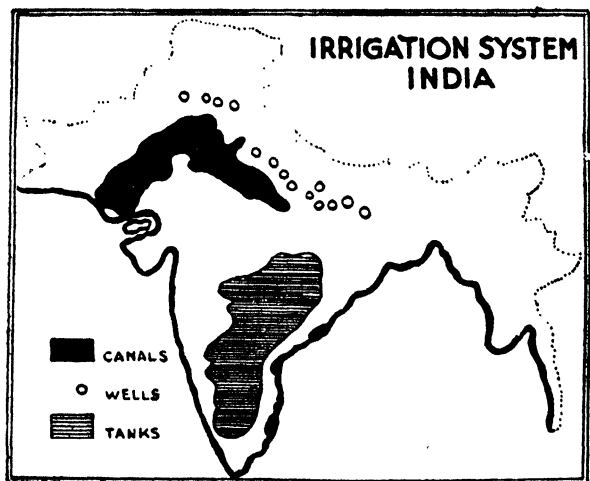
६ करोड़ एकड़ भूमि (सिंचाई होने वाली) में से ३.१ करोड़ एकड़ भूमि की नहरों द्वारा सिंचाई होती है। कुल सिंचाई के क्षेत्रफल का ५२ प्रतिशत नहरों द्वारा सींचा जाता है। हमारे देश की नहरों की लम्बाई लगभग ७५ हज़ार मील है। भारतवर्ष में निम्नलिखित प्रकार की नहरों द्वारा सिंचाई होती है:—

बाढ़ वाली नहरें (Inundation Canals)—इन नहरों में उस समय पानी आता है जब नदियों में बाढ़ आती है और नदियों में पानी एक विशेष सतह तक पहुँच जाता है। जब

नदियों में पानी उतर जाता है तो नहरों में पानी नहीं रहता। यह नहरें नदियों में से निकाली जाती है। अंग्रेजों के भारतवर्ष में आने से पूर्व अधिकतर नहरें इस प्रकार की थीं। इन नहरों से केवल वर्षा ऋतु में जब कि मौनसून चलती थी सिंचाई हो सकती थी। उदाहरणार्थ जून से सितम्बर तक। सक्खर का बन्द खुलने से पहले सिन्ध में अधिकतर नहरें इस प्रकार की थी।

उद्योग से चलने वाली नहरें (Perrenial Canals)—इस प्रकार की नहरें नदियों में एक प्रकार का पुल (barrage) बना कर और इसमें भिन्न-भिन्न दरवाज़े बना कर निकाली जाती हैं। पुल के भिन्न-भिन्न भागों में तख्ते के दरवाज़े लगे होते हैं जिनके द्वारा पानी को कम या अधिक किया जा सकता है और पानी को नहर के लिए बिल्कुल बन्द भी किया जा सकता है। इन नहरों से सिंचाई सारे वर्ष हो सकती है। नदियों के पानी की सतह का इन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। गर्मियों में पहाड़ों की बर्फ़ पिघलने से नदियों में खूब पानी आता है। वर्षा-ऋतु में पानी की अधिकता के कारण कभी-कभी पानी बांध के ऊपर से भी बह जाता है। संयुक्तप्रांत की अधिक-तर नहरें इस प्रकार की हैं।

बान्ध वाली नहरें (Storage Works)—इन नहरों के लिए बड़े-बड़े बाँध बना कर वर्षा का पानी किसी एक विशेष स्थान पर इकट्ठा करना पड़ता है। यह इकट्ठा किया हुआ पानी नहरों द्वारा आस-पास के भागों में सिंचाई के लिये प्रयोग में लाया जाता है। ऐसी नहरें दक्षिणी सी० पी० और बुन्देलखण्ड में पाई जाती हैं।

सरकार के प्रबन्ध और आय-व्यय के हिसाब से नहरें दो प्रकार की होती हैं।

उत्पादक (Productive)—यह नहरें ऐसी होती हैं जो दस साल के भीतर २ अपने मूल्य का ब्याज और व्यय आदि सब आय के रूप में प्राप्त कर लेती हैं। ऐसी नहरें उत्तरी भारतवर्ष और मद्रास में पाई जाती हैं।

रक्षात्मक (Protective)—यह नहरें जिन भागों में खोदी जाती हैं उनको अकाल आदि से बचाने और उनकी सहायता के लिये खोदी जाती हैं। यह नहरें ऐसे भागों में पाई जाती हैं जहाँ वर्षा बहुधा नहीं होती। इन नहरों से उन भागों की पर्याप्त सहायता की जा सकती है जहाँ वर्षा नहीं होती।

प्रांतों के अनुसार नहरें अधिकतर पंजाब, यू० पी० और सिन्ध में पाई जाती हैं। सिन्ध की लगभग कुल खेती नहरों द्वारा ही होती है। पंजाब में गेहूँ, कपास की फसलों की सिंचाई अधिकतर नहरों से होती है। सिन्ध में चावल, गेहूँ और कपास की खेती के लिये नहरों से सिंचाई की जाती है। यू० पी० में कूएं की सिंचाई नहर की सिंचाई की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखती है। यू० पी० में केवल ३० लाख एकड़ भूमि की नहरों से सिंचाई होती है। यह कुल उपज का $\frac{1}{12}$ भाग है और सिंचाई की फसल का $\frac{1}{3}$ भाग। यू० पी० में गेहूं, जौ, गन्ना, कपास इत्यादि की सिंचाई नहरों से होती है। मद्रास में सिंचाई की हुई फसलों के $\frac{1}{3}$ भाग की सिंचाई नहरों से की जाती है। बम्बई और सी० पी० में नहरें बहुत कम पाई जाती हैं।

१८७८-७९ में यहां नहरों से केवल एक करोड़ एकड़ भूमि सींची जाती थी। बीसवीं शताब्दी में यह दो करोड़ एकड़ हो गई और अब यह तीन करोड़ एकड़ से भी अधिक है।

प्रारम्भ में सरकार ने पुरानी नहरों को ठीक करना आरम्भ किया। यह काम कम्पनियों द्वारा किया जाता था। इसके पश्चात् इससे असन्तुष्ट हो कर सरकार ने यह काम अपने हाथ में ले लिया और पंजाब, सिंध तथा यू० पी० के प्रांतों में नहरें बनाईं। अब सिंचाई का विभाग प्रांत की सरकार के हाथ में है। ५० लाख से अधिक खर्च के लिये केन्द्रीय सरकार से सहायता माँगनी पड़ती है।

पंजाब की नहरें—पंजाब की निम्न प्रसिद्ध नहरें हैं:—

१. बारी दोआब नहर—यह नहर रावी नदी से निकाली गई है और लाहौर और अमृतसर के जिलों को सींचती है।

२. सरहिन्द नहर—यह नहर यमुना नदी से निकाली गई है और पंजाब के दक्षिणी—पूर्वी भागों को सींचती है।

इसके अतिरिक्त लोअरचनाब नहर, लोअर झेलम नहर तथा ट्रिपिल प्रोजेक्ट नहरें भी प्रसिद्ध नहरें हैं जो कि अब पश्चिमी पंजाब तथा पाकिस्तान के भाग में चली गई हैं।

सतलज नदी की नहरें—यह नहरें बहावलपुर रियासत, बीकानेर, मुलतान और मिन्टगुमरी के जिलों की सिंचाई करती हैं। फिरोज़पुर, सिलाँकी और पंचनद के स्थानों में लगभग ग्यारह नहरें निकाली गई हैं। १६३३ में यह योजना पूर्ण हुई और इस पर लगभग २४ करोड़ रुपया व्यय हुए। इसके द्वारा लगभग ५० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

संयुक्त प्रान्त की नहरें—इस प्रान्त के पश्चिमी भाग में वर्षा कम होने के कारण अधिकतर नहरों द्वारा सिंचाई की जाती है। पश्चिमी यमुना नहर तथा आगरा नहर तो बहुत पुरानी नहरें हैं जो पुराने समय से चला आती हैं परन्तु

ब्रिटिश सरकार के शासन काल में उन्हें और भी सुधार दिया गया था। अपर गंगा नहर और लोअर गंगा नहरें तो ब्रिटिश सरकार के शासन काल में बनी हैं। इन सब नहरों की सहायता से संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी ज़िलों में सिंचाई की सुविधा हो गई है।

शारदा नहर—यू० पी० के कुछ जिलों में उदाहरणार्थ बुन्देलखण्ड और अवध में सिंचाई को अधिक आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। बुन्देलखण्ड अवध में वर्षा की बहुत कमी थी। और १६२८ में शारदा नहर निकाली गई। यह नहर
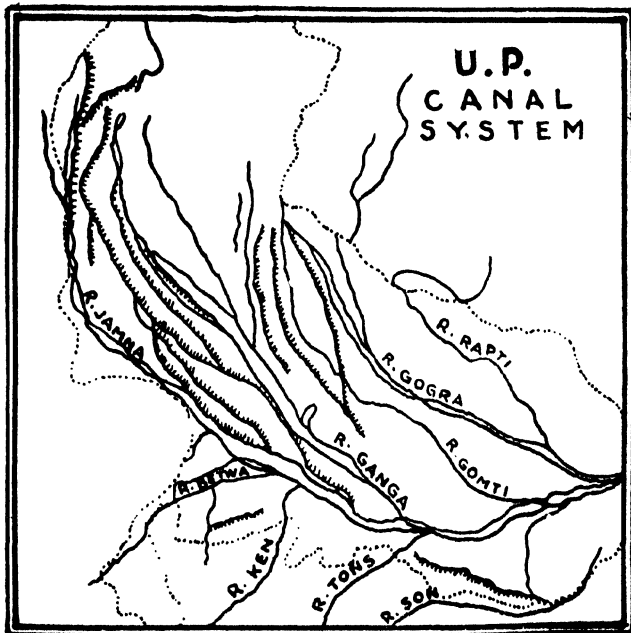
शारदा नदी से निकाली गई है और अवध से होकर घाघरा नदी से मिल जाती है। इस नहर की लम्बाई ५५०० मील से भी अधिक है। यह रुहेलखण्ड और अवध के भागों की सिंचाई के काम आती है और लगभग आठ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई करती है।

कावेरी का बांध—कावेरी नदी पर एक बांध बनाकर यह नहरें निकाली गई थीं। इससे पूर्व कावेरी डेल्टे में नहरों के द्वारा लगभग दस लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती थी। परन्तु नदी पर बान्ध न होने के कारण यह सिंचाई निश्चित नहीं थी। इस प्रकार बान्ध बनाकर नहरों को अधिक उपयोगी बनाने तथा ३ लाख नई भूमि में सिंचाई करने के लिये इस बान्ध का निर्माण किया गया। इस बान्ध को बनवाने में लगभग ७ करोड़ रुपये व्यय हुए। इसकी सहायता से बिजली की शक्ति भी उत्पन्न की जाती है। यह अनुमान लगाया गया था कि इस बान्ध के बनने से कावेरी डेल्टे में १२ लाख टन अधिक चावल उत्पन्न होगा। यह योजना १६४० में पूर्ण हुई थी।

दक्षिण में भानदादर बान्ध और लायड बान्ध बनकर तैयार हो गये हैं। इन बान्धों से जो झीलें बनी हैं उनसे नहरें निकाली गई हैं। इनसे आस पास की लगभग ११ हज़ार एकड़ भूमि सींची जाती है।

बंगाल में दामोदर-नहर बनाई गई जो दो लाख एकड़ भूमि को सींचती है। इस प्रकार यह चावल की खेती में सहायता करती है।

इसके अतिरिक्त पैरियर की नहर भी एक विशेष महत्व रखती है। पैरियर दक्षिणी भारत की ट्रावनकोर रियासत की एक नदी है। यह नहर एक १$\frac{3}{4}$ मील लम्बी सुरंग द्वारा पूर्व

की ओर लाई गई है। इसकी सहायता से मद्रास के मदुरा जिले की सिंचाई होती है। यह कपास, चावल और मूंगफली की उपज में सहायता करती है।

मेट्टूर बन्ध भी एक प्रसिद्ध योजना है।

कूएँ—कुएँ की सिंचाई भारतवर्ष के ग़रीब किसानों के लिए बहुत लाभदायक है क्योंकि कुएँ खोदना आसान है। लागत भी कम आती है और इसके लिये किसी मशीन की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। जहाँ भी किसान चाहें सरलता से कूएँ खोद सकते हैं। किसी किसी स्थान पर कच्चे कूएँ भी खोदे गये हैं। भारतवर्ष में कुल सिंचाई का लगभग २४ प्रतिशत भाग कूओं से ही सींचा जाता है। भारतवर्ष में लगभग २५ लाख कूएँ हैं। कूओं द्वारा सिंचाई निम्नलिखित भागों में होती है:—

(१) गंगा नदी की उत्तर पश्चिमी घाटी—इसमें यू० पी० दक्षिणी बिहार का भाग और पश्चिमी बंगाल सम्मिलित हैं।

(२) कालीकट का भाग जहाँ पर कि मिट्टी पर्याप्त गहराई तक पाई जाती है।

(३) पूर्वी घाट और पश्चिमी घाट का भाग—इसमें बम्बई, मद्रास, कौयम्बैटूर और मदुरा सम्मिलित हैं।

कुओं द्वारा सिंचाई यू० पी०, पंजाब और मद्रास में पर्याप्त मात्रा में होती है। नहरों द्वारा सिंचाई वाले भागों में भी कुओं द्वारा सिंचाई की जाती है। अभी हाल में यू० पी० की सरकार ने कुछ पश्चिमी भागों में ट्यूब वैल्स द्वारा सिंचाई आरम्भ की। इस समय इस प्रान्त में लगभग २००० ट्यूब वैल्स हैं

और अधिकाधिक ट्यूब वैल्स प्रान्त में बनाये जाने की योजना सरकार के सम्मुख है। ट्यूब वैल द्वारा सिंचाई से व्यय कम होता है, किसान जिस समय चाहे अपने खेत को पानी दे सकता है और पानी व्यर्थ नष्ट नहीं होता। ट्यूब वैल से गाँव में पीने के पानी की कमी नहीं रहेगी और ट्यूब वैल पर ही एक रेडियो लगा कर गाँव वालों को संसार भर के समाचार दिये जा सकेंगे तथा कृषि विषय को जानने योग्य बातों की शिक्षा दी जा सकेगी। ये ट्यूब वैल्स यू० पी० प्रान्त के बदायूँ, बिजनौर, मुज़फ़्फ़रनगर, मेरठ, बुलन्दशहर, अलीगढ़ और मुरादाबाद ज़िलों में खोदे गये हैं। पूर्वी पंजाब में भी इस प्रकार के कुएँ खोदने की योजना सरकार के सम्मुख है। इस प्रकार के कुओं से बिजली लेकर, गाँव के घरेलू धन्धों की उन्नति के लिये भी प्रयोग की जा सकती है।

तालाब Tanks:—सिंचाई की हुई कुल भूमि के लगभग $\frac{1}{10}$ भाग में तालाबों द्वारा सिंचाई की जाती है। अधिकतर तालाब मद्रास में पाये जाते हैं। यह तालाब सरकार के अधिकार में होते हैं। पंजाब और सिन्ध को छोड़कर लगभग अन्य सब प्रान्तों में यह तालाब पाये जाते हैं। अकेले मद्रास में लगभग ४०,००० तालाब पाये जाते हैं। ये तालाब विशेषकर बम्बई, मद्रास, मैसूर, हैदराबाद, राजपूताना तथा मध्य भारत में सिंचाई का मुख्य साधन हैं। इन प्रदेशों में भूमि पथरीली होने के कारण कुएं और नहरें यहां नहीं खोदी जा सकतीं। यहां की नदियां मौसमी होती हैं, इस कारण यहां नहरें अधिक लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकतीं। देश के इन भागों में सिंचाई का एक मात्र उपाय वर्षा के पानी को बान्धों द्वारा रोकना है। चारों ओर पहाड़ियां होने के कारण केवल बहाव

को एक बान्ध द्वारा रोक देने से वह एक विशाल जलाशय का रूप धारण कर लेता है। इन तालाबों के बनवाने में अपेक्षाकृत व्यय कम पड़ता है। प्रत्येक गांव सहयोग के आधार पर इन तालाबों को बनवाता है और सब गांव वाले मिलकर प्रति वर्ष बान्ध की मरम्मत करते हैं। यह गांव के बान्ध छोटे होते हैं। परन्तु सरकार और देशी राज्यों ने सिंचाई के उपयोग करने के लिये बड़े बड़े बान्ध और झीलें बनवाई हैं जिन में वर्षा का पानी अनन्त राशि में इकट्ठा हो जाता है और नहरों द्वारा सिंचाई के काम आता है। इन बान्धों में से मुख्य बान्ध निम्नलिखित हैं:—

बम्बई प्रान्त में फाइफ (Fife) और ह्विलिंग झीलें। ट्रावनकोर राज्य की पेरियर झील। मेवाड़ की प्रसिद्ध ढेबर (जय समुद्र) झील है जो संसार में सब से बड़ी बनाई हुई झील है। इस झील का क्षेत्रफल पचास वर्ग मील से भी अधिक है। मैसूर राज्य द्वारा बनाया हुआ, कृष्ण राजा सागर और हैदराबाद का निज़ाम सागर। इनके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न प्रान्तों में और भी बड़े तालाब हैं।

सिंचाई द्वारा देश को बहुत लाभ हु‍आ है। देश की उपज में उन्नति हुई है, और भिन्न २ प्रकार की अच्छी २ वस्तुओं की उपज, जैसे अमेरिकन कपास आदि के बढ़ाने से हमारे विदेशी व्यापार में भी उन्नति हुई है। इसके द्वारा जन-संख्या का बटवारा भी ठीक प्रकार से हो गया है। उन भागों से जहां जन संख्या अधिक थी, हटा कर उन भागों में बांट दी गई है जहां बहुत कम मनुष्य रहते थे। नहरों के होने से अकाल की कठिनाइयों से छुटकारा मिल गया है और सरकार को अकाल वालों की सहायता में जो खर्च करना पड़ता था उसमें भी कमी हो गई है। नहरों द्वारा

वृक्ष इत्यादि लगाकर जंगलों को भी बढ़ाया जा सकता है। सरकार की आय में भी उन्नति हुई है।

नहरों के होने से कुछ हानि भी हुई है, जैसे पानी का इकट्ठा होना, नमक इत्यादि का घुल जाना। इनका भूमि की उपज पर अधिक प्रभाव पड़ा है। दुनियां में भारत में सिंचाई के सब से अधिक साधन हैं फिर भी यह सब साधन देश की वर्तमानकाल की आवश्यकता को पूरा करने के लिये पर्याप्त नहीं हैं। भारतवर्ष की उपजाऊ भूमि के केवल १६ प्रतिशत भाग में सिंचाई होती है, और भारतवर्ष के सब साधनों का केवल ७ प्रतिशत भाग अभी तक प्रयोग में आया है। इसलिये सिंचाई के साधनों की अधिक उन्नति हो सकती है और उसके द्वारा देश की उपज और भी अधिक बढ़ाई जा सकती है। वर्तमान सरकार ने इसमें अधिक चाव से काम किया है और भारतवर्ष के सिंचाई के साधनों को बढ़ाने की पूरी कोशिशें की जा रही हैं। इस समय इस सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी योजनायें सरकार के सम्मुख हैं।

कृषि की उपज का क्रय-विक्रय

उपज को बाज़ार में अधिक मूल्य पर विक्रय करने और किसान को अपनी उपज का ठीक मूल्य प्राप्त करने के लिये कुछ बातों का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रथम तो उपज की किस्म श्रेष्ठ होनी चाहिये, बीज अत्यन्त अच्छा होना चाहिए और अच्छी और ख़राब किस्म की उपज को मिलाकर बेचना नहीं चाहिए। दूसरे विक्रेता को कुछ समय तक ठहरने और बाज़ार—भाव को देखने की शक्ति होनी चाहिए। किसान के पास प्रति-दिन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए साधन होने चाहियें ताकि वह ठीक समय पर अपनी उपज को

बेच कर उसके ठीक दाम प्राप्त कर सके। इसके अतिरिक्त यातायात के साधन सुगम और अच्छे होने चाहियें। किसान को बड़ी २ मंडियों के भावों का पूरी तरह पता होना चाहिये और गांव से मंडी तक उपज को ले जाने के लिए आसान यातायात के साधन होने चाहियें। गांव से कम दूरी पर नये उपायों की वास्तविक मंडियां भी होनी चाहियें, जिनमें आधुनिक उपायों से माल ठीक प्रकार से बेचा जा सके, और किसान को अपनी उपज का पूरा मूल्य मिल सके।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए यदि हम भारतवर्ष की दशा पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि यह सब बातें यहां नहीं पाई जातीं और किसानों के लिए इनमें से कोई भी सुविधा प्राप्त नहीं। भारतवर्ष में किसानों को अपनी उपज को बेचने के लिए निम्नलिखित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है: —

(अ) उपज की किस्म भी अच्छी नहीं है और अच्छी और बुरी किस्म की चीजें आपस में मिला दी जाती हैं।

(ब) किसान बहुत ग़रीब है, महाजन का ऋण चुकाने के लिए और सरकार का लगान देने के लिए वह अपनी उपज को अधिक समय तक अपने पास नहीं रख सकता। इस लिए वह ऐसे समय में उपज को बेचता है जब कि पूर्ति मांग की अपेक्षा बहुत अधिक होती है और अधिकतर वह उपज गांव में महाजन के हाथ ही बेच देता है। अनुमान लगाया गया है कि लगभग ६०% गेहूं, ३५% कपास और ७०% तेल के बीज पंजाब में गांव में ही बेचे जाते हैं। यू. पी. में ८०% गेहूँ ४०% कपास और ७५% तेल के बीज, बिहार, उड़ीसा और बंगाल में लगभग ८५% तेल के बीज, ६०% जौ गांव में ही बेचे जाते हैं।

(स) भारतवर्ष में यातायात के साधन सस्ते और श्रेष्ठ नहीं हैं। अधिक-तर माल गाँव से बैलगाड़ियों, ऊँटों, और गधों पर नगरों और कस्बों में लाया जाता है जो बहुत ही महंगा पड़ता है।

(क) किसान और क्रय करने वाले के मध्य बहुत से बीच के आदमी आढ़ती के रूप में होते हैं जो उपज के मूल्य में से अधिकतर भाग ले लेते हैं।

(ख) बाज़ार और मंडियों में सीधे-साधे किसानों को भिन्न-भिन्न प्रकार से धोखा दिया जाता है। उदाहरणार्थ गलत तोल और कम मूल्य आदि।

(ग) किसान के पास माल को सुरक्षित रखने के लिए बड़े २ गोदाम भी नहीं होते।

इन सब बातों के कारण किसानों को अपनी उपज का ठीक मूल्य नहीं मिलता और उन्हें बहुत ही हानि उठानी पड़ती है। इन सब बुराइयों को बड़ी बड़ी मंडियां बना कर ही ठीक किया जा सकता है। कोऑपरेटिव सोसाइटियां स्थापित करके भी इसमें काफी सहायता की जा सकती है। सरकार ने इस सम्बन्ध में बहुत दिलचस्पी ली है और भिन्न २ प्रांतों में भिन्न २ विधानों के आधीन इन सब बुराइयों को दूर करने की कोशिश की गई है। इन सब प्रयत्नों का यह परिणाम है कि अब लगभग यह सब बुराइयां दूर हो गई हैं। परन्तु यातायात के साधनों की समस्या अभी तक हल नहीं हुई। रेडियो आदि द्वारा भी देहात वालों को बाज़ार-भाव और दुनियाँ के भिन्न-भिन्न बाज़ारों के भावों का काफ़ी पता रहता है।

क्रय विधि और उसके दोष—वर्तमान काल में बेचने की विधि के अनुसार सब से पहले किसान अपनी उपज को अपने गाँव के मुखिया या व्यापारी के हाथ बेचता है। इस प्रकार प्राय: व्यापारी को लाभ रहता है। फिर व्यापारी द्वारा पक्के आढ़ती के पास माल आता है और पक्का आढ़ती थोक बेचने वाले को माल बेचता है। थोक बेचने वाले से छोटे दुकानदार माल मोल लेते हैं और सबसे पश्चात् उपभोग करने वाले लोगों के हाथ वह वस्तु आती है। इस प्रकार सर्व-साधारण लोगों को बहुत अधिक मूल्य पर चीज़ मिलती है और किसान को भी अपनी उपज का ठीक मूल्य नहीं मिलता। इसी कारण उनकी दशा बहुत ख़राब है और उन सब बुराइयों के कारण उसे हानि उठानी पड़ती है जो इससे पहले बताई जा चुकी हैं।

सरकार द्वारा मण्डियों का प्रबन्ध—इन बुराइयों को नीचे लिखे विधान पास करके दूर किया गया है। सबसे पहले सन् १८९७ में बम्बई में Berar Cotton and Grain Markets Law पास किया गया। इसके द्वारा बड़ी २ मंडियों में माल को बेचने का प्रबन्ध चुने हुए आदमियों की कमैटी द्वारा होने लगा। आढ़तियों के लिये अपना नाम रजिस्टर कराना आवश्यक हो गया और तोलने वाले सब दलालों के लिये भी लाएसेन्स लेना अनिवार्य कर दिया गया। अन्य कम्पनियों को समाप्त कर दिया गया। इसके विरुद्ध काम करने वालों को कड़ा दण्ड दिया जाने लगा। सन् १९२७ में इस कानून में कुछ वृद्धि करदी गई। इस प्रकार हैदराबाद रियासत में १९३० में, मद्रास में १९३३ में मध्य-प्रान्त में सन् १९३५ में, मैसूर में सन् १९३९ में और पञ्जाब में १९३९ में एक्ट पास किये गये और बाज़ार की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया गया। इन

Marketing Acts द्वारा इन बुराइयों को दूर किया जा सकता है।

अभी कुछ समय पहले ही कई प्रान्तों में Marketing Organisations स्थापित किये गये। सन् १६३४ के अप्रैल में Mr. Livingstone को इस बात की जांच करने के लिये नियुक्त किया गया। उसी साल प्रांतों की एक Economic Conference हुई जिसमें निम्नलिखित बातें तय हुई :—

(१) भारतवर्ष के किसानों को भारतवर्ष के तथा संसार के बाज़ारों के भावों का ज्ञान होना चाहिये।

(२) माल गोदाम आदि स्थापित करने और शीघ्र खराब होने वाली वस्तुओं को बेचने का प्रबन्ध करना।

(३) माँग के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से किसानों को ज्ञान देना।

(४) उपज की किस्म की उन्नति करना।

(५) अच्छे बाज़ारों को स्थापित करना और उनकी उन्नति करना।

८ मई सन् १६३६ को भारतवर्ष की सरकार ने एक विधान द्वारा प्रांतों और केन्द्र में Marketing Organisations स्थापित किये। केन्द्रीय स्टाफ में एक Agricultural Marketing Adviser है और Senior Marketing Officer और एक Supervising officer, grade के लिए और बारह Marketing Officers नियुक्त किये गए। प्रांतों के स्टाफ में एक Chief Marketing Officer और कई Assistant Marketing officers हैं। इस स्टाफ का काम तीन भागों में बांट दिया गया:—

१. छान-बीन और नई बातें प्राप्त करना।
२. उन्नति के साधन प्राप्त करना।
३. Grade आदि स्थापित करना।

इस विभाग ने इन सब बातों में अधिक काम किया और मंडी की दशा को काफी सीमा तक सुधार दिया है। इस विभाग ने बहुत सी वस्तुओं के सम्बन्ध में नई बातों की खोज की और Grade स्थापित किये। रेडियो द्वारा देहाती प्रोग्राम प्रारम्भ किये। १६४१ में देहली में इसके सम्बन्ध में एक Conference भी हुई। इस प्रकार पूरी दशा के सुधारने के लिए बहुत जोर-शोर से काम किया गया और अब बहुत सी बुराइयां जो थीं वह दूर हो गई हैं।

भारत की कृषि और सरकार की नीति

१८वीं शताब्दी में सरकार ने भारत में खेती-बाड़ी की उन्नति में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं ली। केवल प्रजा की सहायता के लिये और गांव के खेती-बाड़ी के साधनों को अच्छा बनाने के लिये कुछ कार्य किया गया। आसाम में चाय की खेती में रुपया लगाया गया और जङ्गलों को साफ करके चाय की खेती के लिये खेत तैयार किये जाने लगे। यह काम १८३३ ई० के पश्चात् आरम्भ हुआ। कपास के पेड़ लगाने वाले १२ अमरीकन १८३६ में भारतवर्ष में लाये गये ताकि वह कपास को ठीक प्रकार से उत्पन्न करने के साधन भारतवासियों को सिखायें।

१८६४ में वाष्प से चलने वाले हल और अन्य शस्त्र लाये गये परन्तु खेती-बाड़ी के साधनों में कोई विशेष परिवर्तन न हुआ। क्योंकि भारतवर्ष की सरकार की नीति इसके विपरीत

थी इसलिये खेती-बाड़ी ने कोई विशेष उन्नति नहीं की।

१८८० के फैमिन कमीशन के परामर्श पर सन् १८८४ में केंद्रीय खेती-बाड़ी सैकरेट्रएट खोला गया और इसकी Agency विभिन्न प्रांतों में स्थापित की गई परन्तु इसका काम दशा और संख्या मालूम करना था। सन् १८८६ ई० में सब से पहले डा० वालेकर इंगलैंड से भारत भेजे गये ताकि वे ज्ञात करें कि खेती बाड़ी में Chemistry किस प्रकार सहायता करती है और खेती-बाड़ी में किस प्रकार उन्नति की जा सकती है। १८६१ में डा० वालेकर ने अपनी रिपोर्ट उपस्थित की। फिर १६०५ में लार्ड कर्ज़न के समय पूसा में इम्पीरियल एग्रीकलचरल इन्सटीयूट स्थापित किया गया और एक साल के भीतर ही इसने अपना काम आरम्भ कर दिया। यह इन्स्टीयूट १६३४ तक पूसा में रहा परन्तु उस वर्ष बिहार में एक भयानक भूंचाल आया जिसके कारण इसको बहुत हानि पहुंची। उसी वर्ष इसको देहली में स्थापित कर दिया। इस इंस्टीयूट ने गेहूँ और गन्ने की खेती की उन्नति के लिए बहुत ही अच्छा काम किया। इसके ६ भाग हैं:—

१) खेती-बाड़ी (२) केमैसट्री और मिट्टी की साइंस (३) Botany (४) Mycology & Plant Pathology (५) Sugarcane Breeding (६) Entonology.

इसके पश्चात् शनैः शनैः यह काम बढ़ता गया और भारत सरकार की ओर से पूना, कानपुर, नागपुर, लायलपुर, कोयमबटूर में खेती-बाड़ी के कालेज खोले गये जिनमें वर्तमान साइन्टिफिक उपायों के अनुसार खेती-बाड़ी की शिक्षा दी जाती है। १६०५ में आल इण्डिया बोर्ड आफ एग्रीकलचर स्थापित किया गया जो कि सब प्रान्तों के काम को ठीक प्रकार चलाने का काम करता था।

इसके पश्चात् १६१६ की रीफार्म के आधीन खेती-बाड़ी का विभाग प्रान्त की सरकार के आधीन चला गया और प्रत्येक प्रान्त में यह विभाग एक मंत्री के आधीन होगया। इम्पीरियल डिपार्टमेंट आफ एग्रीकलचर अब समस्त भारत की खेती-बाड़ी की समस्याओं को सुलझाता है और इसके निम्न-लिखित भाग हैं :—

(1) Agricultural Research Institute, Delhi (2) Imperial Institute of Veterinary Research, Mukteshwar (3) Imperial Institute of Animal Husbandry & Dairying, Bangalore and Wellington (4) Cattle Breeding Farm, Karnal (5) Cremeary at Anand (6) Cattle Breeding Station Coimbatore, (7) Sugar Burean, Cawnpore.

१६१६ के सुधारों के पश्चात् एक केन्द्रीय विभाग की कमी को अनुभव किया गया। १६२६ के कमीशन ने इस बात का परामर्श दिया कि इस काम में और अधिक खोज की जानी चाहिए। और समस्त भारतवर्ष के काम को इकट्ठा करना चाहिए। इसलिए १६२६ में Imperial Council of Agricultural Research Board स्थापित की गई। इसके दो भाग हैं। प्रथम Advisory Board जिसमें साइंस के विद्वान् काम करते हैं और दूसरा प्रबन्ध विभाग है। इसमें सब प्रान्तों और यूनिवर्सिटियों के प्रतिनिधि लिये जाते हैं। इसके पश्चात् १६३५ में Central Agricultural Marketing Department उपज को भिन्न-भिन्न ग्रेडों में विभाजित करने, बाजार का ठीक नियम पर प्रबन्ध करने, कृषकों के माल को मालगोदामों में रखने और उसको बेचने के लिए देहात में

सड़कों के प्रबन्ध को अच्छा बनाने के लिए स्थापित किया गया। इसके अनुसार इस समय तक १४ चीजों के विभिन्न अंश स्थापित कर दिये गये हैं। इन चीजों पर Agmark की सील होती है। इसके अतिरिक्त Indian Central Committees जूट कपास और तम्बाकू के लिए हैं जो इनमें विशेष दिलचस्पी लेती हैं।

इसके साथ-साथ खेती बाड़ी के तरीकों को अच्छा बनाने के लिए भी सरकार विज्ञान और प्रोपेगेण्डा आदि से काम ले रहे हैं। देहात सुधार, अकाल में सहायता और लगान इत्यादि और खेती बाड़ी की दशा को अच्छा बनाने के लिये सरकार बहुत परिश्रम कर रही है।

अब क्योंकि विदेशी राज समाप्त हो चुका है, वर्तमान सरकार खेती बाड़ी की उन्नति में बहुत दिलचस्पी ले रही है। जल-सिंचन के साधनों को पर्याप्त बनाने और अच्छा करने के लिये बड़ी २ योजनायें तैयार की गई हैं। जो भूमि बेकार पड़ी है उसे भी खेती बाड़ी के आधीन लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इन सब कामों के लिये सरकार सब प्रकार से किसानों की सहायता करने को प्रस्तुत है परन्तु अभी तक वास्तविक कार्य बहुत कम हुआ है। पारस्पारिक सहायता सभाओं (Co-operative Societies) द्वारा भी अब खेती बाड़ी की उन्नति करने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है। कई प्रान्तों में इस सम्बन्ध में कुछ कार्य हुआ भी है। आशा है कि इन सब मिले हुये प्रयत्नों द्वारा भारतवर्ष में कृषि अब बहुत उन्नति करेगी।

वर्तमान अन्न समस्या

भारतवर्ष में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। लगभग तीस

करोड़ एकड़ भूमि में कृषि की जाती है और समस्त जन-संख्या ७० प्रतिशत लोग कृषि करते हैं। भारतवर्ष में जितने क्षेत्रफल में सिंचाई की जाती है वह संसार के छः बड़े-बड़े देशों को मिलाकर जिनमें अमरीका भी सम्मलित है, से भी अधिक है। हमारे देश की भूमि भी बहुत उपजाऊ है। जल-वायु भी सब प्रकार के खाद्य पदार्थों की उपज के लिये आदर्श पाई जाती है। मौनसून पवनों से वर्षा भी पर्याप्त होती है। नदियां भी बहुत हैं। जङ्गल भी अधिक संख्या में हैं। काम करने के लिए संसार भर में सब से अधिक मनुष्य हमारे पास हैं। संसार में सब से अधिक संख्या में पशु भी हमारे देश में पाये जाते हैं। परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी भारतवर्ष के लोगों को पेट भर खाना नहीं मिल रहा है और यह कहा जाता है कि साधारण परिस्थिति में भी लगभग एक तिहाई जन-संख्या को भोजन नहीं मिलता। युद्ध के समय में तो की खाने कमी और भी अधिक हो गई। १६४३ में बङ्गाल में अकाल से लाखों लोगों की जानें गईं।

अब प्रश्न यह है कि इसका क्या कारण है। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष ६·१ करोड़ टन अनाज की उपज होती है और ८५ लाख टन दालें, जिसमें से लगभ ७० लाख टन बीज आदि के लिए खर्च हो जाता है। इस प्रकार भारतवर्ष की समस्त उपज ६·२५ करोड़ टन है। भोजन में प्रवीण लोगों का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम एक पौंड अनाज और आधा पौंड दाल की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। इसके अनुसार यदि भारतवर्ष की समस्त जन-संख्या को ३० करोड़ युवक की जन-संख्या मान लें तो ७·३ करोड़ टन अनाज की प्रतिवर्ष आवश्यकता है। इस प्रकार साधारण समय में भी भारतवर्ष में एक करोड़ पांच लाख टन अनाज की प्रति वर्ष कमी रहती

है। प्रत्येक व्यक्ति को भारतवर्ष में साढ़े चार आउंस दूध मिलता है। इसमें से तीस प्रतिशत पीने के काम आता है और साठ प्रतिशत का घी निकाल लिया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए कम से कम तीस आउंस दूध की आवश्यकता होती है। इस प्रकार दूध भी हमारे देश के रहने वालों को बहुत कम मिलता है। राधा कमल मुकर जी ने इस कमी को इस प्रकार लिखा है :—

हमारी आवश्यकता	390 Billion	Calories	
उपज	280	,,	,,
कमी	110	,,	,,

इसका अर्थ यह हुआ कि १६४३ से पहले भी भारतवर्ष में लगभग ११ करोड़ आदमियों के लिए खाना नहीं था। अर्थात् देश की २४ प्रतिशत जन-संख्या के लिये खाना नहीं था और यह कमी दूसरे देशों से खाद्य पदार्थ मंगाकर पूरी की जाती थी। इसके पश्चात् १६४६ में खाद्य पदार्थों की कमी और भी बढ़ गई। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) दक्षिणी भारतवर्ष में लगातार वर्षा न हुई और खरीफ़ की फ़सल मारी गई। इससे लगभग ३० लाख टन अनाज की हानि हुई। (२) उत्तरी पश्चिमी भारतवर्ष में वर्षा का न होना जिससे रबि की फसल वाली वस्तुयें अर्थात गेहूँ चने को लगभग ४० लाख टन की हानि हुई। (३) उत्तरी पूर्वी बङ्गाल में बाढ़ का आना और पश्चिमी बङ्गाल में वर्षा का न होना। (४) दूसरे महायुद्ध के पश्चात् संसार के समस्त देशों में ही अनाज की बहुत कमी पड़ गई। (५) उपज के कम होने से बर्मा, मलाया, हिन्दचीन, जो प्रायः चावल भारतवर्ष को देते थे, नहीं दे सके, (६) चीन और जापान में फसलें ख़राब हो गईं। (७) संसार

में अनाज की कमी के कारण सारे अनाज को भिन्न भिन्न देशों में ठीक प्रकार से बाँटे जाने का प्रश्न उठा (८) पूर्वी एशिया में युद्ध छिड़ जाने के कारण चावल, बर्मा, आसाम और हिन्दचीन से न आ सका इसके कारण २५ लाख टन चावल की कमी हो गई जो लगभग एक करोड़ बीस लाख मनुष्यों के लिये पर्याप्त हो सकता था (६) १६४०, १६४१, १६४२, और १६४३, में अधिक मात्रा में अनाज विशेष कर गेहूँ ईराक, ईरान, और मध्य देशों को भेजा (१०) साधारण जनता से अधिक अनाज सेना के लिए लिया गया। भारतवर्ष में अङ्गरेजी और अमरीकन सिपाहियों के अधिक संख्या में होने का भी बहुत प्रभाव पड़ा क्योंकि वह लोग हिन्दुस्तानी सिपाहियों से लगभग दुगना खाते हैं। इसके अतिरिक्त इटली और दूसरे देशों के क़ैदी भी भारतवर्ष में लाये गये (११) अन्त में लड़ाई झगड़ों के कारण भी बहुत सी फ़सलें नष्ट की गईं। (१२) लोगों ने भी अपने पास अनाज जमा रक्खा।

इन सब बातों के परिणाम स्वरूप लगभग १० प्रतिशत भोजन की कमी अनुभव की गई, परन्तु भारतवर्ष जैसे देश के लिये यह कमी भी बहुत है।

इस दशा को ठीक करने के लिए भारतवर्ष की सरकार ने कई विधियों से काम लिया (१) दूसरे देशों से अनाज मंगवाना (२) देश के सब साधनों को पूर्ण रूप से प्रयोग में लाना (३) देश के अन्दर अनाज की उपज को बढ़ाने और उसका ठीक प्रकार से बटवारा करने का भी विशेष प्रयत्न किया गया (४) राशनिंग और कन्ट्रोल लागू कर दिये गये (५) इसके साथ-साथ अनाज के राशन में २५ प्रतिशत की और कमी कर दी गई (६) मूल्य का कन्ट्रोल भीकर दिया गया और अन्य देशों को अनाज भेजना बन्द करदिया गया।

दूसरे देशों से अनाज मँगाने के लिए हिन्द सरकार ने डैलिगेशन भेजे। इन में एक रामास्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में मिले-जुने अनाज के बोर्ड में भाग लेने के लिए अमरिका भेजा गया। दूसरा दिवान चमन लाल की अध्यक्षता में अर्जेनटाइन भेजा गया। इस डैलिगेशन ने लगभग तीन लाख टन मक्का भारतवर्ष के लिए लिया। इस के साथ-साथ इंडोनेशिया से बार्टर समझौता किया गया जिससे पाँच लाख टन चावल, मोटरट्रक्स और कपड़े के बदले में लेने का निश्चय किया गया। महात्मा गाँधी ने यह राय दी कि R.I.N. के लोग मछलियों की पूर्ति बढ़ायें और फौजी लोगों की सहायता से कुएँ खोदे जायं।

इन सब प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप १४ लाख ५० हजार टन गेहूँ दो लाख ४७ हजार पाँच सौ टन चावल और अन्य वस्तुयें दूसरे देशों से मंगाई गईं। यह माल ब्रह्मा, श्याम, ब्राजील इन्डोनिशिया, अर्जनटाइन, अमेरिका, कैनैडा, और आस्ट्रेलिया से, नवम्बर १९४६ तक भारतवर्ष में मंगाया गया। इसके अतिरिक्त ईरान, तुर्की, एबिसीनिया और मिश्र से भी अनाज भारतवर्ष में आया। इस प्रकार हिन्द सरकार अनाज की कमी को पूरा करने में सफल हुई यद्यपि जितने अनाज की कमी थी उतना अनाज भारतवर्ष को दूसरे देशों से नहीं मिल सका।

भारत की वर्तमान सरकार ने यह निश्चय कर लिया है कि १९५१ के पश्चात् अन्य देशों में अनाज नहीं मगाया जायगा और उस समय तक भारतवर्ष को अनाज के सम्बन्ध में स्वावलम्बी बनाने का प्रयत्न कर रही है। अभी हाल में ही सरकार ने इंगलैण्ड के अन्न समस्या के विशेषज्ञ श्री ओ होर को भारत की समस्या का अध्ययन करने और अपने परामर्श

देने के लिये बुलाया था। उस के परामर्श के अनुसार भारत सरकार एक विभाग इस काम के लिये बनायगी जो देश की अन्न समस्या में विशेष दिलचस्पी लेगा। सिंचाई के साधनों को बढ़ा कर, अधिक भूमि को कृषि के आधीन करके और आधुनिक अच्छे कृषि के तरीके प्रयोग में लाकर सब प्रकार से देश की कृषि की उपज को बढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस समय तक लगभग आठ लाख एकड़ भूमि और कृषि के आधीन कर ली गई है।

अभ्यास के प्रश्न

१. 'भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है।' उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।

'India is mainly an agricultural country' explain with examples.

२. भारतवर्ष की कृषि के क्या क्या मुख्य दोष तथा कठिनाइयां हैं ? इनको किस प्रकार दूर करके देश की कृषि को उन्नत किया जा सकता है ?

What are the drawbacks and difficulties of Indian agriculture ? How can these be removed and the condition of the agriculture of the country be improved ?

३. भारतवर्ष में भूमि के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े हो जाने के क्या कारण हैं ? इनके कारण देश की क्या-क्या हानियां होती हैं ? किस प्रकार इस दशा को सुधारा जा सकता है ?

What are the causes of sub-division and fragmentation of agricultural holdings in India?

What are their consequences, Suggest remedies to improve the condition.

४ भारत के कृषक ऋण पर एक विस्तृत लेख लिखिये।

Write a lucid note on the problem of agricultural indebteduess in India.

५. EconomicHolding से क्या अभिप्राय है ? इस की आवश्यकता स्पष्ट कीजिये।

What is an economic holdin ? Bring out clearly its importance.

६. भारत को पशु-सम्पत्ति पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिये।

Write a critical note on the Line Stock of India.

७. सिंचाई का क्या अर्थ है ? भारतवर्ष में सिंचाई की आवश्यकता तथा इतना महत्व क्यों है ? सिंचाई के भिन्न-भिन्न साधनों को विस्तार पूर्वक समझाइये।

What is meant by irrigation ? Why is irrigation necessary and important for India ?

Explain fully the different methods of irrigation used in India.

८. सिंचाई के साधनों की और अधिक उन्नति करने की क्यों आवश्यकता है ? यह उन्नति किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है ?

What is the necessity of improving the means of irrigation in India ? How can this improvement be achieved ?

९. कृषि की उपज को बाजार में ठीक मूल्य पर विक्रय

करने की क्या-क्या विशेषतायें हैं ? भारतवर्ष की कृषि की उपज की विक्रय पद्धति में क्या दोष है ?

What are the essentials of good marketing ? What are the main defects of agricultural marketing in india ?

१०. भारत में कृषि की उपज किस प्रकार विक्रय की जाती है। विक्रय प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिये सरकार ने क्या-क्या महत्व पूर्ण कार्य किये हैं ?

How is agricultural produce sold in India ? What important role has the government played in organising agricultural marketing ?

११. पिछले १५० वर्षों में कृषि सम्बन्धी सरकारी नीति के इतिहास पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिये।

Write a critical note on the policy of the government in connection with agriculture during the last 150 years.

१२. वर्तमान अन्न समस्या के क्या-क्या मुख्य कारण हैं ? सरकार किन-किन साधनों द्वारा इस समस्या को सुलझा रही है ?

What are the causes of the present food crises in India ? How is the government taeckling the problem ?

१३. भारतीय कृषि की अवस्था को किस प्रकार सुधारा जा सकता है ?

How can the agricultural industry of the country be improved ?

: ६ :

पारस्परिक सहायता

सहकारिता एक ऐसा संगठन होता है जिस में प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार सम्मिलित हो कर अन्य व्यक्तियों के साथ अपनी समान आर्थिक समस्याओं के निवारण तथा आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रबन्ध करते हैं। यह संगठन निर्धन तथा निर्बल व्यक्तियों की बहुत सहायता करता है और उनके हृदय में आत्मविश्वास, कम खर्ची, तथा रुपये को लाभ के लिये काम में लगाने के आवश्यक तथा अमूल्य गुण उत्पन्न करता है। अर्थशास्त्र के एक ज्ञाता फे (Fay) के अनुसार "सहकारिता आर्थिक सम्बन्ध के साथ-साथ भिन्न-भिन्न सदस्यों में एकता की भावना तथा आदर्श संगठन उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार के संगठन में कुछ व्यक्ति कुछ आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु संगठित होते हैं।" कुछ लोगों के कथनानुसार यह एक प्रकार की समिति या संगठन है जो सामूहिक व्यापार के लिये किया जाता है। यह संगठन निर्धन लोगों में उत्पन्न होता है जो निस्वार्थ ढंग से इस के सदस्य बनते हैं और अपने परिश्रम तथा कार्य के अनुसार इस से लाभ उठाते हैं। वास्तव में संगठन में शक्ति है। हम संसार में यदि एक छोटा सा भी कार्य करें तो उस में सफल होने के लिये भी संगठन की आवश्यकता है। खेल में भी खिलाड़ी अपने

परस्पर संगठन की मात्रा के अनुसार ही सफल अथवा असफल होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पारस्परिक सहायता द्वारा निर्धन तथा शक्ति हीन व्यक्ति संगठित होते हैं, भागों द्वारा रुपया एकत्रित करते हैं अथवा ऋण लेकर भी रुपये का प्रबन्ध कर लेते हैं। यह एकत्रित किया हुआ धन न तो सदस्यों को कम व्याज पर ऋण देने और न ही जीवन की आवश्यक वस्तुओं को सस्ते मूल्य पर क्रय करने के लिये प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा सदस्यों को भिन्न-भिन्न व्यवसाय चलाने में भी सहायता दी जाती है। इन पारस्परिक सहायक समितियों का कार्य सत्यता के आधार पर चलता है। प्रत्येक समिति के सदस्य परस्पर भली भाँति परिचित होते हैं। सब सदस्यों का समान अधिकार तथा पद होता है। इन समितियों के उद्योग धन्धों में पारस्परिक सहायता के नियम प्रयोग में लाये जाते हैं। सब सदस्य अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग करते हैं। प्रत्येक को सब के लिये और सब को प्रत्येक के लिये कार्य करना पड़ता है। इन समितियों के निम्न प्रकार हो सकते हैं:—

(अ) सहकारी साख समितियां

(ब) कृषि सम्बन्धी सहकारी समितियां

(स) श्रमिकों की सहकारी समितियां

(क) सहकारी स्टोर।

पहली तीन प्रकार की समितियां तो उत्पत्ति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करती हैं और लाभदायक सिद्ध होती हैं। सहकारी स्टोर उपभोग की वस्तुएँ कम मूल्य पर प्राप्त करने में बहुत सहायता करता है। कृषि सम्बन्धी सहकारी समिति के मुख्य कार्य कृषकों को सस्ते मूल्य पर औजार दिलाना, अच्छे

बीज, खाद्य आदि के द्वारा अनाज की उपज में सहायता करना तथा उनकी उपज के विक्रय करने का उचित प्रबन्ध करना है। साख-सहकारी समितियों का मुख्य कार्य सदस्यों को कम ब्याज पर ऋण देना और इस प्रकार उनकी आर्थिक सहायता करना है। ये समितियां दो प्रकार की होती हैं। देहाती साख-सहकारी समिति जिस का कार्य कृपकों की आर्थिक सहायता करना है, तथा नागरिक साख-सहकारी समिति जिसका काम घरेलू धन्धों सम्बन्धी कारिगरों की सहायता करना होता है।

पाश्चात्य देशों में पारस्परिक सहायक योजना ने निर्धनों तथा निर्बलों की महत्त्वपूर्ण सहायता की है। इंगलैण्ड में श्रमिकों को उपभोग सम्बन्धी सहकारी स्टोर से बहुत लाभ पहुँचा है। जर्मनी में साख-सहकारी समितियों ने कृषकों तथा छोटे-छोटे उद्योग धन्धों की आर्थिक सहायता की है और उन्हें महाजन के चंगुल से मुक्त किया है। डैन्मार्क, आयरलैण्ड तथा योरप के अन्य देशों में सहकारिता योजना ने कृषि की सब प्रकार से सहायता की है।

भारतवर्ष के कृषकों की प्रधान कठिनाई पूंजी का अभाव है। देश में कृषि की उन्नति तथा आधुनिक कृषि के साधनों का प्रयोग उसी समय सम्भव है जब कि भारतवर्ष के किसानों को पूंजी की कठिनाई न रहे। भारत के कृषकों का महाजनों के ऋण में फंसा रहना, अनपढ़ तथा अयोग्य होना और उनके जीवन स्तर का बहुत गिरा हुआ होना हमारे देश की कृषि की उन्नति में बाधक हैं। संयुक्त पूंजी वाले बैंकों से कृषकों को ऋण नहीं मिल सकता। डाकखाने के सेविंग बैंक खाते से वह अनपढ़ होने के कारण लाभ नहीं उठा सकते। और अन्य प्रकार के कोई बैंक नहीं हैं जो किसी भी प्रकार से उनकी सहायता करें। विवश होकर उन्हें महाजन से ऋण लेना पड़ता

है, जिस से उन्हें तो क्या उनकी सन्तान को भी छुटकारा नहीं मिलता और महाजन लोग नाना प्रकार के अत्याचारों से उनको कष्ट पहुँचाते हैं।

उनकी यह कठिनाई परस्पर सहायक समितियों द्वारा दूर हो सकती है। यह समितियां इस सम्बन्ध में उनकी अमूल्य सेवा कर सकती है। एक अंग्रेज़ लेखक उल्फ ने कहा है, "कि यदि भारतवर्ष में पारस्परिक सहायक योजना असफल रही तो कृषकों की बहुत सी आशाओं पर पानी फिर जायेगा और उनकी उन्नति के सब मार्ग बन्द हो जायेंगे"। कृषकों को विशेषकर तीन प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये ऋण की आवश्यकता पड़ती है। वे तीन आवश्यकताएँ निम्नलिखित हैं:—

(अ) थोड़े समय के लिये ऋण (Short term credit), जैसे उपज को विक्रय करने तक घर के खर्च के लिये और फसल को काटते समय अंन्य कामों के लिये।

(ब) कुछ अधिक समय के लिये ऋण (Intermediate credit), जिस की आवश्यकता पशु, बीज, औजार, खाद्य आदि के लिये होती है।

(स) लम्बे समय के लिये ऋण (Long term crdit), जिस की आवश्यकता भूमि क्रय करना, ऋण चुकाना, अधिक मूल्य वाले औजार लेना, भूमि में नाना प्रकार के सुधारों के लिये पड़ती है। पहली दोनों प्रकार की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति पारस्परिक समितियों द्वारा भली भांति हो सकती है। इस प्रकार पारस्परिक सहायक योजना भारतवर्ष जैसे निर्धन तथा कृषक देश के लिये एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

सहायक समितियों का विकास

सहायक समितियों का संचालन सर्व-प्रथम रेफैसन और शूल-डेलिज़ ने जर्मनी में प्रारम्भ किया। रैफैसन ने तो इन समितियों का सँचालन ग़रीब किसानों की सहायता के लिये किया था। इसके पश्चात् शूल डेलिज़ ने छोटी-छोटी दस्तकारियों के लिये इसका प्रयोग किया। इसके पश्चात् इटली में Luzzati ने भी इस प्रकार की सोसाइटियां स्थापित कीं। तदनन्तर डेनमार्क, हौलैंड, पौलैंड इत्यादि प्रदेशों में भी इन सोसाइटियों को काफ़ी सफलता प्राप्त हुई। इन देशों में दस्तकारियों इत्यादि ने इन समितियों की सहायता से काफ़ी उन्नति की।

भारत के किसानों की दशा बड़ी शोचनीय है। वह ऋण के बोझ से दबे जा रहे हैं। किसानों को महाजनों को ब्याज अधिक देना पड़ता है। इनको किसी प्रकार से कम ब्याज पर रुपया उधार नहीं मिलता। इसलिये भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अलग-अलग व्यक्ति नियुक्त किये गये जिनका उद्देश्य किसानों की आर्थिक दशा का ज्ञान प्राप्त करना था। उन्होंने इस बात का पता लगाया कि ऋण बहुत अधिक है। पश्चिमी देशों में इन सोसाइटियों की सफलता को देखकर वह इस परिणाम पर पहूंचे कि किसानों की सहायता के लिये रुपया उधार देने के लिये ऐसी सोसाइटियां स्थापित करना भारतवर्ष के लिये लाभदायक सिद्ध होगा। १९०१ के Famine Commission ने भी इन सोसाइटियों की स्थापना का समर्थन किया। इन सब प्रयत्नों के फलस्वरूप १९०४ के एक्ट के अनुसार सोसाइटियाँ स्थापित की गई। १९०४ के एक्ट की धारायें निम्नलिखित हैं:—

(१) कम से कम दस व्यक्ति एक समिति बनाकर इसको रजिस्टर करा सकते थे।

(२) ये सदस्य एक गाँव, कस्बे या जाति के हों।

(३) जिन सोसाइटियों के सदस्यों की संख्या का ¾ भाग कृषिकों से अन्य लोगों का हो इनको नागरिक सोसाइटियां और जिन का किसानों का उन्हें देहाती सोसाइटियों के नाम से प्रचलित किया गया।

(४) देहाती सोसाइटी का दायत्व असीम किन्तु नागरिक सोसाइटियों का दायत्व सीमित तथा असीमित भी हो सकता था।

(५) देहाती सभाओं को अपना कुल लाभ एक बचत कोष में जमा करना पड़ता था और स्थानीय सरकार से आज्ञा लिए बिना यह लाभ सदस्यों में बांटा नहीं जा सकता था। नागरिक सभाओं को केवल लाभ का २५ प्रतिशत बचत कोष में जमा करना पड़ता था और शेष सदस्यों में बांटा जाता था।

(६) कोई भी मैम्बर १०० रु० से अधिक के भाग नहीं ले सकता था। कोई भी मनुष्य सभा के हिस्सों की कुल संख्या के ⅕ से अधिक हिस्से नहीं खरीद सकता था।

(७) प्रत्येक मनुष्य का एक वोट होता था।

(८) केवल सदस्यों को ही ऋण दिया जा सकता था।

प्रान्त में इन सभाओं को रजिस्टर करने के लिये रजिस्ट्रार नियत कर दिये गये।

सरकार ने भी इन सभाओं की सहायता के लिए रुपया दिया और इस पर कोई ब्याज नहीं लिया जाता था। इसके अतिरिक्त टैक्स इत्यादि से भी इन सभाओं द्वारा लाभ को मुक्त कर दिया गया। इस एक्ट के आधीन इन सभाओं ने बड़ी उन्नति की। सन् १९११-१२ तक ८१६६ सभाएँ बन गईं जिनके ४०,३३,१६ सदस्य थे। इनकी पूंजी ३.५ लाख रुपये

थी। इस एक्ट में कई कमियां थीं। पहली तो यह कि इसके आधीन केवल ऋण देने के लिए सभाएं स्थापित की जा सकती थीं। इसके अनुसार कोई भी केन्द्रीय सभा छोटी सभाओं के काम की देखभाल के लिए नियुक्त न की गई थीं और शहरी और ग्रामीण सभाओं के रूप में जो विभाजन किया गया था वह एक्ट में स्पष्ट न था।

१६१२ का ऐक्ट—इस ऐक्ट की कमियों को पूरा करने के लिए १६१२ में दूसरा एक्ट पास किया गया। इसके अनुसार ऋण देने के अतिरिक्त और कामों के लिए भी सभाओं के बनाने की आज्ञा दे दी गई। "यूनियन, सैन्ट्रल बैंक" आदि में विभाजन कर दिया गया।

तीसरा काल—फिर १६१५ में Maclagan Committee ने इन सभाओं की त्रुटियों को दूर करने के लिये कुछ बातें रखीं। १६१६ के सुधारों के अनुसार Co-operation प्रान्त के आधीन आ गया। फिर बहुत सी कमेटियां नियुक्त हुई जिन्होंने इसके बारे में बहुत सी बातें प्राप्त की। इनमें King Committee, Oakden Committee, Townshand Committee के नाम वर्णन करने योग्य हैं। १६३०-३१ में 'सैन्ट्रल बैंकिग कमैटी' ने भी अपनी रिपोर्ट में इनकी उन्नति के बारे में कुछ योजनाए रखीं। कुछ समय पश्चात् रिजर्व बैंक में भी इसका एक पृथक विभाग बन गया। रिजर्व बैंक भी भिन्न-भिन्न उपायों से इन सभाओं की सहायता करने लगा। प्रान्तों में भी कमैटियां नियुक्त की गईं। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक प्रान्त में भिन्न-भिन्न एक्ट पास हुए। १६१५ में बम्बई, १६३२ में मद्रास, १६३५ में उड़ीसा, १६३६ में कुर्ग और १६४१ में बङ्गाल में Co-operation एक्ट पास हुए और इस

प्रकार अब इन सभाओं ने बहुत उन्नति की है। १६४४ में बम्बई में Registrars of Co-operative Societies की सभा हुई। १६४५ में मिस्टर आर. जी. सुरैया के सभापतित्व में एक अखिल भारतीय सभा स्थापित हुई जिस में इन सभाओं की उन्नति के विषय में विशेष ध्यान दिया गया।

इस समय लगभग १,४६,००० प्राइमरी सोसाइटियां हैं जिन के ६६ लाख सदस्य हैं। लगभग ४६६ यूनियन, ६०१ सैन्ट्रल बैंक हैं। जहां तक इन सभाओं की सफलता का प्रश्न है इन्होंने कृषकों की बहुत सहायता की है। सर्व-प्रथम तो ब्याज की दर सब स्थानों पर कम हो गई है। अब किसानों को कम ब्याज पर रुपया इन सभाओं से मिल सकता है। इन सभाओं के काम से लोगों में कम खर्ची और रुपये पैसे को बचाने की आदत उत्पन्न हो गई है। किसानों ने व्यर्थ रुपया उधार लेना बन्द कर दिया है। इन सभाओं के कारण किसानों के चरित्र में बहुत उन्नति हुई है। उन्हें एक प्रकार स्वतंत्रता भी मिल गई है। इसके अतिरिक्त मालदार लोगों और अन्य लोगों में ग्राम से सम्बन्ध रखने वाली बातों में दिलचस्पी भी उत्पन्न हो गई है। इस प्रकार भारतवर्ष के किसानों के ऋण को भी पर्याप्त मात्रा में कम किया गया है। परन्तु इस बात में भी इनको इतनी उन्नति प्राप्त नहीं हुई जितनी कि होनी चाहिए थी। इनकी सफलता और अधिक लाभ के लिए सर्व-प्रथम तो किसान लोग शिक्षित होने चाहियें। वह एक ही धर्म और विचारों के होने चाहियें। उनमें सावधानी और सभा में जुम्मेदारी से काम करने की आदत उत्पन्न होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त ऋण की सोसाइटियों के साथ २ और प्रकार की सभाओं की भी उन्नति होनी चाहिए। इन सब बातों के होने से वर्तमान सभाओं में जो

बुराइयां हैं वह दूर हो जायेंगी और सभाएं बहुत उन्नति करेंगी।

पारस्परिक सहायक समितियों के लाभ तथा कार्य

पारस्परिक सहायता सभाओं का विशेष ध्येय भारतवर्ष में निर्धनों की सहायता करना है और उनकी आर्थिक दशा को सब प्रकार से अच्छा बनाना है। देहात सुधार, और मूर्खता को दूर करना है। दरिद्रता को दूर करने और ऋण को कम करने में इन सभाओं ने बहुत सहायता की है और यह इससे भी अधिक सहायता दे सकती हैं। कृषि की उपज को बढ़ाना, बेकारी और बीमारी के कारणों को नष्ट करना भी इनका विशेष कार्य है। यह सभाएं रुपया उधार देने और उपज को बढ़ाने, धन का उचित प्रयोग करने और ठीक प्रकार से वितरण के लिये स्थापित की जा सकती हैं। यह भिन्न-भिन्न प्रकार से लोगों को लाभ पहुँचा सकती हैं और देश की दशा को सुधार सकती हैं।

प्रारम्भ में भारतवर्ष में ऋण देने के लिये यह सभाएं स्थापित की गई थीं। इस प्रकार की सभाओं ने ही बहुत उन्नति की, परन्तु इनके कार्य में भी बहुत सी बुराइयां पाई जाती हैं। इन बातों के होते हुए भी यह कृषकों के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध हुई हैं। कृषक को महाजन के चंगुल से छुड़ाने, कम ब्याज पर रुपया देने, कम खर्चों और आर्थिक दशा को सुधारने, व्यवसाय की शक्ति को बढ़ाने तथा अन्य चाल-चलन के गुणों के उत्पन्न करने में इन सभाओं ने महत्वपूर्ण कार्य किया है।

ऋण देने की सभाओं की सफलता को देखते हुए और दूसरे कामों के लिये भी यह सभाएं स्थापित की गईं। यद्यपि

इस प्रकार की सभाओं ने पर्याप्त उन्नति नहीं की फिर भी अब इन की ओर बहुत ध्यान दिया जा रहा है और ग्राम सुधार में यह बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं और कर सकती हैं। इस बात को अब सब ने मान लिया है कि जब तक भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये इन सभाओं को स्थापित नहीं किया जायगा और इनकी उन्नति नहीं की जायगी भारत के गांव उन्नति नही कर सकेंगे। गांव के रहने वालों में नई स्फूर्ति उत्पन्न करना, उन्हें आर्थिक बुराइयों से छुड़ाकर उनकी दशा को अच्छा करने में यह बहुत सहायक हो सकती हैं। अब भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये निम्न-लिखित सभाएं स्थापित की जा रही हैं :—

1. Better Living Societies—इनका कार्य कृषकों के जीवन स्तर को ऊँचा करना है और उनके जीवन को अधिक सुखमय तथा मनोरञ्जक बनाना है। गांव में शिक्षा को फैलाना, उपज को बढ़ाना, घरेलू धन्धों की उन्नति करना इनके मुख्य कार्य हैं। लोगों के आचार विचार को सुधारना और समाजी दशा को सुधारना इनका उद्देश है। यह ३६४७ यू. पी. में २०६७ पंजाब में और ५०२ बंगाल में हैं।

2. Health and Medical Societies—इस प्रकार की ११६६ सभायें भारतवर्ष में हैं। इनमें से १०५२ केवल बंगाल और १०६ पंजाब में हैं। इनका विशेष कार्य सदस्यों और उनके बच्चों के स्वास्थ्य को ठीक रखना हैं।

3. Consolidation of Holdings and Co-operative Farming Societies—यह प्रारम्भ में यू. पी. में स्थापित की गई। पंजाब के गांव में लगभग १००० सभाएं इस प्रकार की हैं। बम्बई में Crop Fencing and Protection Societies

स्थापित की गईं। मद्रास में Irrigation Societies और Land Improvement Societies काम करती हैं।

4. Co-operative Marketing and Supply Societies—इस प्रकार की सभाओं ने भी भिन्न २ प्रान्तों में उन्नति की। इनमें Milk Societies और Unions बंगाल, मद्रास और यू पी. में; Potato Marketing Societies अल्मोड़ा और नैनीताल पहाड़ों में; Fruits Societis, इलहाबाद में; Pottery Societies, Dairy Societies, Purchase and Sale Societies, Cane supply and Development Societies, Ghee Societies, Seed Stores, यू.पी. में; Jute and Paddy Sale Societies बंगाल में, Cotton Sale और Groundnut Societies बम्बई और मद्रास में स्थापित की गईं।

5. Housing Societies—इन का मुख्य कार्य मजदूरों की रहने की अवस्था को सुधारना है। इनको सरकार से सहायता मिलती है।

6. Consumers Co-operative Societies—इन्होंने भी देश के विभिन्न भागों में बहुत उन्नति की।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार की सभाओं ने भारतवर्ष में उन्नति की है परन्तु अभी दशा सुधारने के लिये अधिक प्रयत्नों की आवश्यकता है।

सहायक समितियों का संगठन तथा प्रबंध

पारस्परिक सहायक समितियों का प्रबन्ध निम्नलिखित साधनों पर है:—

(१) छोटी सोसाइटी (Primary Society)—सबसे नीचे या पूर्व यह छोटी-छोटी सोसाइटियां होती हैं। एक सोसा-

इटी में दस या दस से अधिक सदस्य होते हैं और यह एक ग्राम में कार्य करती है। इस के सब अधिकारी चुने हुये होते हैं और वह बिना किसी वेतन के काम करते हैं। कुल कार्य सर्व सम्मति के नियमों पर चलता है। प्रत्येक सदस्य की एक राय होती है। रुपया सदस्यों से प्रवेश फास और पूंजी के रूप में लिया जाता है। बाहर से ऋण आदि भी ले लिया जाता है। अन्य सोसाइटयों से और सरकार से भी रुपया इनकी सहायता के लिये लिया जा सकता है। केवल सदस्यों को ही ऋण दिया जाता है और वह भी केवल उन कार्यों के लिये जो वे और धन पैदा करने के लिये करते हैं। और अन्य कार्यों के लिये ऋण सौ रुपये से अधिक नहीं दिया जाता। केन्द्रीय बैंक से भी रुपये-पैसे की सहायता मिलती है। रुपये की प्राप्ति किस्तों द्वारा की जाती है।

(२) **यूनियनें** (Unions)—पांच और पांच से अधिक छोटी सोसाइटियां जो पांच और सात मील के क्षेत्र के अन्दर हों अपनी एक यूनियन बना सकती हैं। इन यूनियनों का कार्य या तो छोटी सोसाइटियों के कार्यों की देख-भाल करना या छोटी-छोटी सोसाइटियों की जमानत देना होता है जबकि वह सोसाइटी का कार्य चलाने के लिये ऋण लें। जो भी छोटी सोसाइटियां इसकी सदस्य होती हैं, उनके सदस्यों की एक कमेटी इसके कार्य को चलाती है। एक मन्त्री भी वेतन पर इसका कार्य चलाने के लिये नियुक्त किया जाता है। इसका कार्य उन छोटी-छोटी सोसाइटियों की सहायता करना है जो इसकी सदस्य होती हैं।

(३) **केन्द्रीय सहायक बैंक** (Central Co-operative Bank)—यह बैंक एक जिले में काम करता है और उस जिले

के हैडक्वाटर में स्थित होता है। एक ओर यह छोटी सोसाइटियों को रुपये पैसे की सहायता देता है। जिन सोसाइटियों में रुपया पर्याप्त होता है, उनसे रुपया लेकर उन सोसाइटियों को देता है जिनके पास रुपये की कमी होती है और स्वयं भी उनकी सहायता करता है। दूसरी ओर प्रान्त के सहायक बैंक से भी इसे पर्याप्त सहायता मिलती है। ऐसे बैंकों की संख्या ५८६ हैं।

(४) **प्रान्तीय सहायक बैंक** (Provincial Co-operative Bank)—प्रत्येक प्रान्त में एक ऐसा बैंक होता है जो सब से ऊपर होता है और यह केन्द्रीय बैंकों के कार्य को संगठित करता है और उसे चलाता है। यह उनकी रुपये से भी सहायता करता है और अन्य साधनों से सारे कार्य की देख-भाल करके उसे ठीक प्रकार से चलाने का प्रबंध करता है। भारतवर्ष में ऐसे ११ बैंक हैं।

(५) **रिजर्व बैंक** (Reserve Bank of India)—इन सब सोसाइटियों और बैंकों की सहायता के लिये रिजर्व बैंक है। इस बैंक में एक अलग विभाग है जो इन सोसाइटियों की और किसानों की विशेषतया सहायता करता है। यह प्रान्तीय बैंक को ऋण भी देता है और हुण्डियों का रुपया भी समय से पूर्व देता है।

ग्रामीण साख सहकारी समित का प्रबंध (Primary Agricultural Credit Societies)—यह सभायें दस या दस से अधिक सदस्यों के होने पर रजिस्टर कराई जा सकती है। सब सदस्यों लगभग एक ही ग्राम के निकट के या दो चार ग्रामों के रहने वाले होने चाहियें। सब सदस्यों का दायित्व असीमित होता है। कोई भी ऋणदाता अलग अलग सदस्य

के विरुद्ध अपना रुपया प्राप्त करने के लिये कोई कार्य नहीं कर सकता। असीमित दायित्व होने के कारण सदस्य सावधान और चौकन्ने रहते हैं। प्रबंध प्रजातंत्र का और बिना वेतन होता है। इसकी एक साधारण कमेटी होती है जिसमें सब सदस्य होते हैं और एक प्रबन्धक कमेटी होती है। इसको पंचायत भी कहते हैं। इसमें पाँच या सात सदस्य होते हैं। यह सदस्य साधारण कमेटी की ओर से चुने जाते हैं। मंत्री को कुछ वेतन दिया जाता है। जो व्यक्ति अच्छे चरित्र वाला हो वह इसका सदस्य बन सकता है। पूंजी सदस्यों से प्रवेश-फीस और पूंजी के रूप में ली जाती है। बाहर से भी ऋण लिया जा सकता है। अपनी आर्थिक दशा को सुधारने के लिये समिति कुछ रुपया बचाकर बचत कोष में रखती है। ऋण किसी काम में लगाने या पुराना ऋण चुकाने के लिये दिया जाता है। कभी २ दो या तीन वर्ष के लिये भी ऋण दिया जाता है। उपभोग सम्बन्धी व्यय के लिये सौ रुपये से अधिक ऋण नहीं मिलता। प्रतिशत ब्याज कम से कम होता है। इसके द्वारा सदस्यों में बचत और मेल-जोल उत्पन्न किया जाता है। ऋण सदस्य की ईमानदारी पर ही दिया जाता है। किन्तु कागजी कार्यवाही पूरी करली जाती है। रजिस्ट्रार खाते की जाँच और देख-भाल करता है कुल लाभ में जमा कर दिया जाता है। इसमें से केवल दस प्रतिशत शिक्षा आदि के खर्च के लिये प्रयोग किया जा सकता है।

सहकारिता के उद्देश्य तथा नियम—आरम्भ में पारस्परिक सहायक सभाओं का उद्देश्य कृषकों की सहायता करना और उनको ऋण से मुक्ति दिलाना था। इसी कारण भारतवर्ष में ऐसी समितियां स्थापित की गई। शनैः २ इसकी सफलता को देखते हुये यह अधिक संख्या

में स्थापित हो गई। अब इन समितियों को ग्राम सुधार का एक प्रधान साधन समझा जाता है। अब इस बात का अनुभव किया जा रहा है कि ग्राम जीवन का इससे अत्यन्त सुधार हो सकता है और ग्राम वासियों में एक नवीन स्फूर्त्ति डाल कर उन्हें सजीव बनाया जा सकता है। इसी कारण अन्य कार्यों के लिये भी इस प्रकार की सभायें स्थापित की जा रही हैं।

पारस्परिक सहायक सभाओं के प्रधान सिद्धन्त ईमानदारी और समानता हैं। प्रत्येक सदस्य को समानाधिकार प्राप्त होते हैं और प्रत्येक सदस्य का कर्त्तव्य होता है कि इन सिद्धान्तों के हेतु पूरा २ प्रयत्न करे।

भारतीय सहकारी योजना की त्रुटियां—परन्तु भारतवर्ष में इन सभाओं में बड़ी त्रुटियां पाई जाती हैं। यही कारण है कि यहां यह योजना अधिक उन्नति नहीं कर सकी। भारतवर्ष में सहकारी समितियों की निम्नलिखित विशेषतायें हैं:—

(१) भारत में यह योजना सरकार की ओर से आरम्भ हुई और जनता का भी ऐसा विचार है। यही कारण है कि जनता अपना उत्तरदायित्व नहीं समझती। यूरुप में यह योजना जनता के प्रयत्न का परिणाम है। जापान को यह सभायें भी सरकारी समझी जाती हैं।

(२) यह योजना अधिकतर कृषकों को ऋण देने तक ही सीमित है। केवल १६१२ ई० में इसका काम कुछ बढ़ा दिया गया था।

(३) जिन लोगों की सहायता के लिये इन सभाओं का निर्माण हुआ वह अधिकतर अनपढ़ ही थे। परन्तु यूरुप में प्रारम्भ में भी ऐसा न था यद्यपि रूस में प्रारम्भ में ऐसा था अर्थात यूरुप के लोग पढ़े हुये नहीं थे।

(४) अनपढ़ होने के कारण इसके सदस्य इसके महत्व को नहीं समझते। और ना ही इसके नियमों का पालन करते हैं। वह लोग यह कार्य सरकार का ही समझते हैं और इसमें सरकार का ही लाभ समझते हैं।

(५) देश के योग्य और बुद्धिमान लोग इस योजना में अधिक रुचि प्रकट नहीं करते और ना ही उनको इसका अवसर ही दिया जाता है।

(६) वास्तविक कार्य के स्थान पर दिखावा अधिक है, यद्यपि पंजाब में वास्तविक कार्य अच्छा हुआ है।

(७) इस योजना का उद्देश्य एक थोड़ी दूर तक ही सीमित रहा और इसके दोषों को दूर करने का प्रयत्न न किया गया।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष में इस योजना में राज्य का अधिक होना, ऋण देने की सभाओं का अधिक होना, अधिक समय, उससे कम समय और बहुत थोड़े समय के लिये ऋण देने के लिये अलग २ प्रबन्ध न होना, सहायक सभाओं के नियमों का न समझना और उनके अनुसार कार्य न करना, हिसाब की जांच का ठीक न होना, आवश्यकतानुसार समय पर ऋण न मिलना, प्रबन्ध के कठिन होने के कारण योजना पर काफ़ी व्यय होना आदि बहुत बड़ी बाधाएं हैं। इनके सदस्य समय पर ऋण नहीं चुकाते। इनके कार्य को चलाने के लिये रु० की भी बहुत कमी है। ऋण देने में सिफारिश का अधिक विचार किया जाता है। कृषक निर्धनता के कारण इनके सदस्य भी नहीं बन सकते। भारतवर्ष में एक लाख सभाओं में से लगभग ८३,६५८ देहाती साख सहकारी समितियां हैं।

सुधार निम्न गुणों को दृष्टि में रखते हुए हो सकता है :—

१. पारस्परिक सहायक सभा के नियमों का जानना प्रत्येक भारतीय के लिये अनिवार्य है।
२. ईमानदारी सर्व प्रथम नियम होना चाहिये।
३. रु० का लेन देन केवल सभासद् के लिए होना चाहिये।
४. सट्टाबाज़ी और व्यर्थ व्यय के लिये ऋण नहीं देना चाहिये।
५. ऋण देने से पूर्व खूब पड़ताल करनी चाहिये।
६. सभा का सारा काम अपने सदस्यों के साथ होना चाहिये।
७. सभासदों में मित्रता होनी चाहिये।
८. प्रत्येक मैम्बर का एक वोट होना चाहिये।
९. पूंजी को रु० बचा कर बढ़ाना चाहिये।
१०. ऋण चुकाने में समय की पाबन्दी का विचार रखना चाहिये।

इन सब बातों के होते हुए यह सभाएं हमारे देश में काफ़ी उन्नति करेंगी। लोगों को इनके नियमों की शिक्षा देनी चाहिये। यह सब काम करके हम इस योजना को अधिक सफल बना सकते हैं। भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश में शिक्षा का प्रचार भी आवश्यक है। डा० R. K. Mukerji कहते हैं :—

‘Above all, there is need of a comprehensive policy of education, for without wide diffusion of education among the villagers, neither the modification of rights in land nor the introduc-

tion of the economically profitable cultivation, neither the facilities given by co-operative credit nor the aids given by improved agricultural implements and methods, can bring about a lasting improvement of the social and agricultural conditions of the country."

"In the absence of this stimulus, the co-operative movement may keep alive as an exotic plant but will never thrive.")

इन त्रुटियों के होते हुये भी ये समितियां हमारे देश के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं। आर्थिक सहायता के साथ-साथ ये आचरण की उन्नति, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक बातों में भी प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं। इन की सहायता से श्रमिकों की दशा में सुधार हुआ है। कृषक ऋण को कम करके कृषकों को महाजन के चगुंल से मुक्त किया है, कृषि और शिल्प की उन्नति हुई है, ग्रामीण लोगों की दशा सुधर गई है, अशिक्षित कृषक शिक्षा की ओर आकर्षित हो चला है। इन्होंने ग्रामीण जीवन में संघठित रूप से कार्य करने की भावना उत्पन्न कर दी है। मुकद्दमें बाज़ी कम हो गई है।

वास्तव में इस योजना की अधिक सफलता के लिये आय अधिक होने और सावधानी से व्यय करने की रीति से रुपये की बचत का होना, लोगों का शिक्षित होना, साधारण लोगों का इस के महत्व को समझकर इस में अधिक दिलचस्पी लेना है। परन्तु भारतवर्ष में अभी यह बातें नहीं पाई जातीं। कृषक लोगों की आय कम है और रीति रिवाजों पर अधिक व्यय करने के कारण उनके पास कुछ नहीं बच रहता। वह अशिक्षित हैं और इसके महत्व को नहीं समझते। वास्तव में

यह योजना जनसाधारण की है और जन साधारण के हितों के लिये है। इस कारण इस में अधिक कार्य जन साधारण को ही करना चाहिये।

वास्तव में कृषकों के अशिक्षित रहते हुये यह योजना उन्नति नहीं कर सकती। इस की उन्नति की योजना बनाते समय इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिये। अब इस के महत्व को पूर्णरूप से समझा जा रहा है। केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें इस योजना को उन्नति का बहुत प्रयत्न कर रही हैं और इन्हें सब प्रकार से सहायता दे रही हैं।

इस योजना ने अभी बहुत कम उन्नति की है। कृषकों के बचाये हुये भाग का केवल १२ प्रतिशत काम में लाया गया है। ३६ वर्ष के समय में केवल दस करोड़ रु० इकट्ठा हुआ है और यदि यही चाल रही तो ४०० साल में पर्याप्त रुपया इकट्ठा होगा।

भारतवर्ष में अकाल पड़ने की समस्या का ऐतिहासिक वर्णन—भारतवर्ष के अधिकतर मनुष्य कृषि से ही अपना निर्वाह करते हैं। इसलिये इस देश की जनता का सुखी-जीवन कृषि की उत्पत्ति पर आश्रित है। यदि उत्पत्ति अच्छी हो जाय तो देश में सुख-शान्ति छाई रहती है, नहीं तो प्रायः अकाल पड़ जाता है। कृषि की उत्पत्ति वर्षा पर निर्भर है। इसलिये वर्षा न होने से उत्पत्ति नहीं होती और अकाल पड़ जाता है। यदि वर्षा आवश्यकता से अधिक हो जावे तब भी फसल नष्ट हो जाती है। वर्षा का अभाव और उसका आधिक्य, दोनों ही का प्रभाव बड़ा हानिकारक सिद्ध होता है। अकाल का कारण मनुष्यों की निर्धनता भी है। भारतवासियों की निर्धनता को कौन नहीं जानता? वह इतने निर्धन हैं

कि बड़ी कठिनाई से अपना निर्वाह कर सकते हैं। उनके पास कोई पूंजी नहीं होती। जब फसल अच्छी होती है तो वह किसी न किसी प्रकार अपना निर्वाह कर लेते हैं। किन्तु जब फसल नष्ट हो जाती है तो उन की दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। उनके पास कोई रुपया अथवा अनाज नहीं होता जिस पर वह ऐसे समय में निर्वाह कर सकें। इस कारण यदि उन्हें कोई सहायता न मिले तो वह अकाल के शिकार हो जाते हैं। अनेक मनुष्यों ने अकाल के और भी कई कारण बताये हैं। स्वर्गीय श्री आर० दत्त ने बताया है कि भूमि का लगान भी कृषकों के लिये बड़ा हानि-प्रद होता है। परन्तु भारतीय सरकार का कहना है कि भूमि के लगान के नियम से अकाल नहीं पड़ सकता। भूमि का लगान बहुत कम करने से भी अकाल पड़ जाते हैं और बहुधा वह लोग अकाल ग्रस्त होते हैं जो न्यूनतम लगान देते हैं। सरकार के अनुसार भारत में अकाल के वास्तविक कारण यह हैं कि यहां पर भूमि बहुत से छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजत है और वह दूर-दूर तक फैले हुये हैं। इसलिये उनकी कृषि में लाभ नहीं हो सकता। जमींदार कृषकों की आर्थिक दशा से अनुचित लाभ उठाते हैं। कृषकों को जो रुपया उधार मिलता है उस पर उनको बहुत ब्याज देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण कृषक दूरदर्शी नहीं होते और इसलिये वह धार्मिक और सामाजिक रीतियों में व्यर्थ रुपया नष्ट कर देते हैं। इसलिये वह अकाल का सामना करने में शक्तिहीन हो जाते हैं और अधिकतर अकाल ग्रस्त होते हैं। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि इस देश में अकाल का कारण यह है कि यहां की जन-संख्या देश के भिन्न २ भागों में ठीक प्रकार से विभाजित नहीं है। देश के किसी भाग में जन-संख्या का भार अधिक है और किसी में कम।

अकाल का कारण जानने के उपरान्त हमें इन्हें रोकने के उपायों की ओर भी ध्यान देना चाहिये।

(१) भारतवर्ष में अकाल को दूर करने के उपायों पर ध्यान देते हुए हमें यह न भूल जाना चाहिये कि कृषि भारतीयों का प्रमुख कार्य है। इसकी उत्पत्ति मौनसून की वर्षा पर निर्भर है। मौनसून का भारतवर्ष में कोई विश्वास नहीं है। इसलिये यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण देश में सिंचाई का समुचित प्रबन्ध किया जाय। इससे कृषि की उत्पत्ति विश्वासनीय हो जायगी। इस भाँति अकाल का भय भी बहुत कम हो जावेगा।

(२) अकाल के समय में रेलें बहुत लाभदायक सिद्ध होती हैं। इनके द्वारा अकाल-पीड़ित स्थानों में खाद्य-पदार्थ उचित समय पर सुगमता से पहुंचाये जा सकते हैं। इस कारण इनकी उन्नति के लिये अधिक से अधिक प्रयत्न करना चाहिये। कुछ मनुष्यों का विचार है कि रेलें एंव सिंचाई दो विरुद्ध वस्तुएं हैं। ऐसा नहीं है। यह दोनों तो परस्पर सहायक हैं। सिंचाई की सहायता से उत्पत्ति होती है और रेलों द्वारा इसको विभिन्न भागों में पहुँचाया जा सकता है।

(३) मनुष्यों में अकाल का सामना करने की शक्ति होनी चाहिये। उनके पास रुपया होना चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि उनमें रुपया बचाने की आदत डाली जाय तथा व्यर्थ व्यय से रोका जाय। इसके लिये परस्पर सहायता का साधन बहुत लाभप्रद हो सकता है।

(४) देश के विभिन्न भागों में जन-संख्या का विभाजन उचित रीति से होना चाहिये।

(५) देश के जङ्गलों को अधिक से अधिक सुरक्षित रखना

तथा बढ़ाना चाहिये। जङ्गल वर्षा में बहुत सहायक होते हैं और इसलिये कृषि की दशा सुधारी जा सकती है।

(६) देश में उद्योग व व्यापार की उन्नति करनी चाहिये। इससे भूमि पर भार कम हो जायेगा तथा देश के धन में वृद्धि होगी। इस प्रकार मनुष्यों में अकाल का सामना करने की शक्ति बढ़ जायेगी।

(७) यह भी आवश्यक है कि अकाल के बीमे की रकम का कुछ भाग निर्धन कृषकों के सुधार के लिये व्यय किया जाय।

(८) कृषि के साथ-साथ घरेलू उद्योग भी चालू होने चाहियें। इनकी सहायता से कृषक अवकाश के समय में कार्य करके अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं।

(९) भूमि का लगान नियत करते समय निर्धन और अकाल पीड़ित कृषकों की दशा का निश्चय ही ध्यान रखना चाहिये।

भारतवर्ष में अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में बड़े भयङ्कर अकाल पड़े थे। यातायात के साधन दोषयुक्त होने के कारण अकाल पीड़ितों की सहायता तुरन्त नहीं की जा सकती थी। भारतवर्ष में सन् १७७० ई०, १७८४ ई०, १८०२ ई०, १८२४ ई० और सन् १८३५ ई० में भीषण अकाल पड़े। इनके कारण भारतीयों की आर्थिक दशा अत्यन्त हीन हो गई और अनेक मनुष्य अकाल-पीड़ित हो गये। तदन्तर भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग फैलने से व्यक्तियों की दशा और भी दयनीय हो गई। पशुओं की अवस्था भी अत्यन्त हीन हो गई। देश के व्यापार व उद्योग को एक भारी धक्का लगा। आरम्भ में तो ईस्ट-इन्डिया कम्पनी ने अकाल-पीड़ितों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया किन्तु बाद में अपना उत्तरदायित्व स्वीकार किया। सन् १८५८ ई० में भारतवर्ष इङ्गलैण्ड के अधिकार में चला

गया। उस समय से अकाल का निवारण करने एवं अकाल-ग्रस्त मनुष्यों की सहायता के नियमों का बराबर पालन हो रहा है। १८६५-६७ ई० के उड़ीसा के अकाल से तो सरकारी सहायता के नियम में सर्वथा परिवर्तन हो गया है।

सन् १८७८ ई० में प्रथम फैमीन कमीशन (Famine Commission) सर रिचर्ड स्टार्ची Sir Richard Starchey) के सभापतित्व में नियुक्त किया गया। इसने यह परामर्श दिया कि सहायता के लिये योग्य मनुष्यों को रक्खा जाय तथा अकाल-पीड़ितों की अधिक से अधिक सहायता की जाय। सरकार ने १८७८ ई० में अकाल-पीड़ितों के बीमे की सहायता का नियम स्थापित किया और इसके लिये डेढ़ करोड़ रुपया नियुक्त कर दिया। इस कमीशन के परामर्श की सन् १८९६-९७ के अकाल में कड़ी परीक्षा हुई। इसके पश्चात् दूसरा फैमीन कमीशन सर जेम्स लायल के सभापतित्व में नियुक्त किया गया। इसने भी अकाल पीड़ितों की सहायता के लिये अनेक परामर्श दिये। किन्तु इस कमीशन के परामर्श पर कार्य करने के पूर्व ही सन् १८९९-१९०० में एक और भीषण अकाल पड़ा। सन् १९०० ई० में महाराजा जयपुर ने १६ लाख रुपये से इण्डियन पीपल्स फैमीन ट्रस्ट (Indian People's Famine Trust) स्थापित किया। सन् १९०१ ई० में एक तीसरा फैमीन कमीशन सर आरथोनी मेकडोनल (Sir Arthony Macdonel) के सभापतित्व में स्थापित हुआ। इसने अनेक परामर्श के साथ-साथ इस बात पर अधिक जोर दिया कि अकाल-पीड़ितों को उत्साहित किया जाय तथा अकाल में ही उन्हें सहायता प्रदान की जाय। इस कमीशन ने मजदूरों के वेतन पर भी पुनः ध्यान दिया। इस कमीशन के सम्पूर्ण परामर्श को सरकार ने मान लिया और इसके अनुकूल कार्य किया।

इसके पश्चात् सन् १६४३ ई० में बंगाल में एक बड़ा भीषण अकाल पड़ा। इसमें भी अनेक प्राणी नष्ट हो गये।

आधुनिक काल में सरकार अकाल का सामना करने तथा उसको रोकने में सफल होती जा रही है। इसका कारण यह है कि देश की उन्नति के साथ-साथ अकाल के अर्थ में भी परिवर्तन हो गया है। आजकल यदि देश के एक भाग में फसल नष्ट हो जाती है तो तुरन्त रेल व सड़कों द्वारा उस भाग में खाद्य पदार्थ पहुँचाये जा सकते हैं। इसलिये वर्तमान-काल में किसी भाग में खाद्य पदार्थों का अकाल पड़ना असम्भव हो गया है। आजकल अकाल केवल यातायात के साधन और आर्थिक दशा के बिगड़ जाने का नाम समझा जाता है। इसी लिये आधुनिक काल में रेल और यातायात के अन्य साधनों के कारण अकाल का रूप इतना भयङ्कर नहीं होता जितना पहले होता था।

अभ्यास के प्रश्न

१. सहकारिता का अर्थ स्पष्ट रूप से समझाइये। इस के क्या मुख्य लाभ हैं ?

What is meant by Co-operation ? Explain its main advantages.

२. भारतवर्ष की आर्थिक उन्नति के लिये सहकारिता के महत्व को स्पष्ट कीजिये।

Explain the importance of Co-operation for the economic progress of India.

३ सहकारी समितियों के विकास तथा उन्नति के इतिहास को स्पष्ट करते हुए एक लेख लिखिये।

Trace the history of the growth of Co-operative movement in India.

४. पारस्परिक सहायक योजना के अभाव तथा त्रुटियों को विस्तार पूर्वक समझाइये तथा इन त्रुटियों को दूर करने के उपाय भी बताइये।

Explain the main defects of the Co-operative movement in India. Suggest lines of reform.

५. निम्नलिखित पर नोट लिखिये :—

(अ) ग्रामीण साख समिति का प्रबन्ध

(ब) प्रान्तीय सहकारी बैंक

(स) सहकारी यूनियन बैंक

(क) सहकारी समितियों का रिजर्व बैंक से सम्बन्ध

Write notes on :—

(i) Organisation of an agricultural credit co-operative society,

(ii) Provincial Co-operative Bank.

(iii) Central Unions.

(iv) Relation of the co-operative societies with the Reserve Bank.

६. १९०४ ई० तथा १९१२ ई० के सरकारी ऐक्ट की मुख्य धारायें स्पष्ट कीजिये.

Explain the main clauses of the Co-operative Movement Acts of 1904 and 1912.

७. ग्रामीण तथा नागरिक सहकारी समितियों के नियमों तथा प्रबन्ध में क्या अन्तर है ?

What is the main difference between the principles of organisation of urban and rural credit societies ?

८. भारत में अकालों के इतिहास पर एक नोट लिखिये।

Write a note on the hisfory of famines in India.

: ७ :

शिल्प तथा घरेलू उद्योग

पुरातन काल में भारतवर्ष अपनी शिल्पकारी के लिये संसार भर में प्रसिद्ध था। भारत में निर्माण की गई वस्तुओं ने विश्व में अत्याधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। ये सब वस्तुऐं श्रेष्ठ प्रबंध के आधीन बड़े बड़े कारखानों में तैयार की जाती थीं। अधिकतर वस्तुओं का निर्माण भारतवर्ष के नरेशों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये किया जाता था। कुछ वस्तुऐं दूसरे देशों को भी भेजी जाती थीं। इनमें मलमल, हीरे-जवाहरात, कैलिको, ऊन और रेशम का माल, बहुमूल्य पत्थर तथा मसाले की विशेष वस्तुऐं थीं। यद्यपि माल बड़े कारखानों में भी तैयार किया जाता था तथापि इन कारखानों में शक्ति का प्रयोग नहीं होता था। माल कारीगरों द्वारा तैयार किया जाता था। उस समय भारत से व्यापार करने में भी बहुत लाभ था और ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इसी व्यापार से लाभ उठाने के लिये भारतवर्ष में अपना प्रबन्ध स्थापित किया।

परन्तु अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में इंगलेंड में एक शिल्प क्रान्ति हुई। माल बड़ी बड़ी मशीनों द्वारा तैयार किया जाने लगा। ये मशीनें शक्ति द्वारा चलती थीं। इधर भारतवर्ष में मुगल राज्य के पतन के पश्चात् शिल्प की उन्नति में दिलचस्पी लेने वाला कोई न रहा। इसी समय में यातायात के साधनों में भी अद्भुत उन्नति हुई। समुद्री जहाज, रेलवे आदि का आविष्कार हुआ। इनके परिणाम स्वरूप दूरस्थ स्थान एक दूसरे के बहुत निकट आगये। इंगलेंड के कारखानों

का बना हुआ माल भारतवर्ष में आने लगा और इस प्रकार भारत के उद्योग नष्ट होगये।

परन्तु धीरे-धीरे ब्रिटिश साम्राज्य के आधीन भारतवर्ष में बड़ी २ फैक्टरियां तथा कारखाने स्थापित होने लगे। सर्व प्रथम सूत के कपड़े का एक मिल १८३६ में कलकत्ते में स्थापित किया गया। परन्तु यह मिल शीघ्र फेल होगया। वास्तव में सबसे पहला सूती कपड़े का मिल १८५४ में बम्बई में स्थापित हुआ था। इसी समय बंगाल में जूट की शिल्पकारी ने उन्नति की। १६०० ई० तक भारतवर्ष में शिल्पकारी ने बहुत अधिक उन्नति नहीं की। १६०० ई० में केवल सूती कपड़, जूट और खान से कोयला निकालने की शिल्प ने ही भारतवर्ष में विशेष उन्नति की थी। इन के साथ-साथ ऊन, कागज़ और चाय के कारखाने भी थोड़ी संख्या में हमारे देश में पाये जाते थे। अमेरिका की घरेलू लड़ाई, योरप की क्रीमिया की लड़ाई तथा अन्य महायुद्धों ने भारत की शिल्प की उन्नति में बहुत सहायता की। १६१४—१८ के प्रथम महायुद्ध के समय में हमारे देश की शिल्प ने पर्याप्त उन्नति की। इसके पश्चात् भारतीय सरकार ने भी शिल्पकारी की उन्नति की ओर ध्यान दिया। इस कारण १६२४—१६३६ के मध्य हमारे देश में शिल्पकारी ने बहुत उन्नति की और बहुत सी वस्तुओं के नये कारखाने खोले गये। १६३८ ई० में भारतवष की गणना संसार के प्रसिद्ध तथा शिल्प की उन्नति वाले देशों में आठवां स्थान था। भारतवर्ष की प्रमुख शिल्पकारियों का वर्णन निम्न शब्दों में दिया जाता है।

भारत की प्रसिद्ध शिल्पकारियां निम्नलिखित हैं:—

(१) सूती कपड़े की शिल्पकारी—सूती कपड़े का सबसे पहला मिल १८१८ ई० में कलकत्ते में स्थापित किया

गया। परन्तु इस शिल्प ने वास्तविक उन्नति १८५१ ई० से की जब कि बम्बई में सूती मिल स्थापित किया गया। यह भारतवर्ष की सबसे पुरानी और सबसे बड़ी शिल्प है। १८५४ के पश्चात् मिलों की संख्या बढ़ती गई। यह मिल विशेष कर बम्बई, नागपुर, अहमदाबाद, शोलापुर तथा कानपुर में स्थापित किये गये। यह शिल्प देश के इन्हीं भागों में केन्द्रित है। इस शिल्प में भारत की १०० करोड़ रुपये की पूंजी लगी है और इसमें छः लाख श्रमिक काम करते हैं। भारतवर्ष के सूती कारखानों में पहले केवल मोटा कपड़ा तैयार होता था। परन्तु १६२८ के पश्चात् बारीक कपड़ा भी तैयार होने लगा। अब भारतवर्ष में बारीक और भिन्न-भिन्न डिजाइनों के कपड़े तैयार होते हैं। इस समय भारतवर्ष के मिलों में भी उतना ही अच्छा कपड़ा तैयार होता है जितना कि संसार के अन्य देशों के मिलों में होता है। इस समय भारत में लगभग ४२१ सूती कपड़े की मिलें हैं जिनमें ४८० करोड़ गज कपड़ा तैयार होता है। देश के विभाजन का इस शिल्प पर भी प्रभाव पड़ा है क्योंकि लम्बे रेशों वाली कपास उत्पन्न करने वाले प्रदेश पाकिस्तान में चले गये हैं।

जूट—जूट की शिल्पकारी भी भारतवर्ष की महत्वपूर्ण शिल्पकारियों में से है। यह शिल्प भी भारत में लगभग उसी समय स्थापित हुइ जब कि सूती कपड़े की शिल्प स्थापित हुई थी। यह शिल्प विदेशी पूंजी द्वारा भारतवर्ष में स्थापित हुई थी। यह बहुत उन्नतिशील शिल्प है क्योंकि भारतवर्ष ही संसार में एक देश था जहां जूट उत्पन्न होता था। इस समय भारतवर्ष में १०० से अधिक जूट की मिलें हैं। यह लगभग सब मिलें कलकत्ते में स्थित हैं। इस में लगभग तीन लाख से अधिक श्रमिक लगे हुये हैं। देश के विभाजन के अनुसार

कच्चा जूट उतपन्न करने वाला अधिकतर भाग पूर्वी बंगाल में चला गया है जो पाकिस्तान में है। कुल जूट की उपज का ७३% भाग पूर्वी बंगाल में उत्दन्न होता है और केवल २७% भाग पश्चिमी बंगाल में उत्पन्न होता है। परन्तु जूट की सब मिलें पश्चिमी बंगाल अथवा भारतवर्ष में हैं। इस कारण अब भारतवर्ष की जूट की शिल्पकारी को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है।

लोहा तथा स्टील—दिल्ली की कुतुब मीनार के पास लोहे के स्थम्भ से पता चलता है कि भारतवर्ष में आज से ३००० वर्ष पूर्व भी यह शिल्प उन्नति पर थी। वर्तमान ढंग पर शिल्प ने १८७५ ई० में उन्नति करना आरम्भ की जबकि बाराकर में आसनसोल के पास लोहे का कारखाना खोला गया। परन्तु वास्तविक उन्नति उस समय से आरम्भ हुई जब कि १९०७ में साकची पर टाटा का लोहे का कारखाना स्थापित हुआ। अब जमशेदपुर में इस शिल्प ने उन्नति की है। भारतवर्ष में इस समय निम्नलिखित प्रसिद्ध लोहे के कारखाने हैं :—

(१) टाटा आइरन एन्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड १९०७

(२) इन्डियन आईरन एन्ड स्टील कम्पनी (हीरापुर और कुल्टी में) १९१८

(३) स्टील कोरपोरेशन ओफ बंगाल १९३९ (हीरापुर में)

(४) मैसूर आइरन ऐन्ड स्टील वर्कस १९३०।

इनके अतिरिक्त और भी कुछ छोटे कारखाने हैं। १९४९ ई० में यह अनुमान लगाया गया था कि अधिक से अधिक ३० लाख टन तक पक्का लोहा (Steel) भारत में प्रति वर्ष तैयार किया जा सकता है। अब केवल १२ लाख टन प्रति वर्ष

तैयार होता है। अप्रैल १६४८ में भारतीय सरकार ने इस बात की घोषणा की थी कि इस शिल्प को सरकार अपने आधीन लेलेगी। इसी कारण सरकार के सम्मुख दो लोहे के कारखाने खोलने की योजना है। इन कारखानों में लगभग १० लाख टन लोहा तैयार होगा। यह शिल्प हमारे देश के लिये बहुत महत्व रखती है। इस समय इस ने बहुत उन्नति कर ली है और यह सब प्रकार की आवश्यक वस्तुएँ तैयार करती है।

(४) **चीनी की शिल्प**—यह शिल्प भी भारतवर्ष की बड़ी शिल्पों में से है। इस शिल्प ने अभी हाल ही में उन्नति की है। इसने विशेषकर १६३२ के पश्चात् बहुत उन्नति की है। १६३२—३३ में भारत में केवल तीन लाख टन चीनी तैयार होती थी परन्तु अब दस लाख टन से भी अधिक चीनी प्रतिवर्ष तैयार होती है। १६३२ से पूर्व भारतवर्ष को लगभग १० लाख टन चीनी प्रति वर्ष बाहर से मंगानी पड़ती थी। इस शिल्प द्वारा एक लाख श्रमिकों को जीविका प्राप्त होती है और इस में लगभग ३३ करोड़ रुपये भारतीय पूंजी लगी हुई है। इस समय भारत में लगभग १४१ चीनी के कारखाने हैं। १६३७ के पश्चात भारत को अन्य देशों से चीनी मंगाने की आवश्यकता नहीं रही। यह शिल्प यू. पी और बिहार के प्रान्तों में केन्द्रित है।

(५) **कागज़**—भारतवर्ष में हाथ से कागज़ तो पुराने काल में भी बनाया जाता था। सब से पूर्व मशीन द्वारा कागज़ १८७० में बनाया जाना आरम्भ हुआ। इस समय भारतवर्ष में लगभग १५ कागज़ के कारखाने हैं। भारतवर्ष में लगभग सब प्रकार का कागज़ तैयार किया जा सकता है। इस शिल्प की बहुत अधिक उन्नति हो सकती है। भारत के प्रसिद्ध कागज़ के कारखाने निम्नलिखित हैं:—

(१) टीटागढ़ पेपर मिल्स, (२) बंगाल पेपर मिल्स, (३) रानीगंज इन्डिया पेपर ऐन्ड पल्प कम्पनी, (४) स्टार पेपर मिल्स, (५) ओरियन्टल पेपर मिल्स, (६) दालमिया पेपर मिल्स, (७) मैसूर पेपर मिल्स, और (८) श्री गोपाल पेपर मिल्स,

भारत की सबाई घास काग़ज़ बनाने के काम आ सकती है। बांस से भी कागज़ बनाया जाता है जो भारत में काफी मिलता है। इस समय वर्षिक काग़ज़ की उत्पत्ति लगभग एक लाख दस हज़ार टन है।

(६) **माचिस**—इस शिल्प की भी भारतवर्ष में हाल ही में उन्नति हुई है। १९२२ ई० में भारत में केवल एक माचिस बनाने वाली फैक्टरी थी परन्तु १९२८ में इन की संख्या ४० और १९३८ में ८८ हो गई। इस समय भारत में लगभग १५० माचिस की फैक्टरियां हैं जिन में लगभग १६ हज़ार श्रमिक काम करते हैं। भारत की वैस्टरन इन्डिया मैच कम्पनी लिमिटेड ने बहुत उन्नति की है। इस के मिल अमरनाथ, बरेली कलकत्ता और मदरास में हैं। यह लग भग भारत की ८०% मांग की पूर्ति करती है। इस से पता चलता है कि विदेशी लोगों का इस शिल्प पर अधिक प्रभाव है। इन कम्पनियों के मालिक अधिकतर स्वीडन के लोग हैं।

(७) **सिमैन्ट**—चीनी की शिल्प की भांति इस शिल्प ने थोड़े समय हुए उन्नति की है। इस समय भारत में १८ सिमैन्ट फैक्टरियां हैं। अब यह शिल्प भारत की सिमैन्ट की समस्त मांग की पूर्ति करती है। अधिकतर फैक्टरियां उत्तरी तथा मध्य भारत में पाई जाती है। प्रति वर्ष लग भग २० लाख टन सिमैन्ट भारत में तैयार होता है। सिमैन्ट की मांग दिन

प्रति दिन बढ़ती जा रही है। इस कारण इस शिल्प की और उन्नति हो सकती है।

(८) **चाय**—यह शिल्प भी है और कृषि से भी सम्बन्ध रखती है। प्रत्येक चाय की फैक्टरी के साथ साथ एक चाय का बाग़ भी होता है। पहले भारतवर्ष में चाय बहुत कम प्रयोग में लाई जाती थी परन्तु अब भारत में भी इसका प्रयोग बढ़ता जा रहा है। भारतवर्ष में लगभग ५८५ लाख टन चाय प्रति वर्ष तैयार होती है।

(९) **रसायन शिल्प** (Chemicals)—यह शिल्प किसी देश के लिये बहुत आवश्यक है क्यों कि यह देश के बचाव, भूमि को अधिक उपजाऊ बनाने, देश के स्वास्थय को अच्छा करने तथा अन्य शिल्पकारियों में बहुत सहायक होती है। इस शिल्प ने भारतवर्ष में अभी पूरी उन्नति नहीं की है। यह शिल्प विशेषकर बंगाल, बम्बई और मद्रास के प्रान्तों में स्थापित हुई है। मैसूर और बड़ौदा राज्यों में भी इस शिल्प की उन्नति हुई है।

(१०) **शीशी** (Glass)—यह भी एक उन्नति करती हुई शिल्प है। इस समय भारत में १७० शीशे की फैक्टरियां हैं। यह शिल्प यू० पी०, कलकत्ता, बम्बई और मैसूर में केन्द्रित है। इन में सब से अधिक शीशा यू० पी० में तैयार किया जाता है। भारतवर्ष नाना प्रकार की शीशे की वस्तुएँ तैयार करता है। अब यह शिल्प इतनी उन्नतिशील हो गई है कि यह समस्त भारत की ८०% मांग की पूर्ति करती है। इस के और उन्नति होने की भी आशा है।

इसके अतिरिक्त भारत में विजिगापट्टम में समुद्री जहाज बनाने, बैंगलौर में वायुयान बनाने की शिल्पकारियां स्थापित

हो गई हैं। इस के साथ-साथ देश में सिल्क, ऊन, साबुन, लाख आदि के कारखाने भी पाये जाते हैं। विभिन्न शिल्पकारियों का देश के भिन्न भागों में जो महत्व है वह निम्न कोष्ठक से स्पष्ट हो जाता है :—

प्रान्त	जन-संख्या का प्रतिशत श्रमिक	सूती कपड़े	जूट	लोहा	इंजिनियरिंग	चीनी	कागज	रसायन	शीशा
बंगाल	१५.५	५.४	६ ३	३६.३	४७ ७	४.३	५०.५	४७.७	२२.५
यू० पी०	१४.१	७.३	२.४	—	४.२	५५.४	११.३	२.३	४६.६
बम्बई	५.४	४६.६	—	—	११.७	३.५	७.७	५.८	१०.१
मद्रास	१२.७	११.६	१.७	—	६.६	५.६	—	०.५	१.०
बिहार	६.४	०.४	१.७	५३.३	१३.२	१६.६	११.१	—	—
सी०पी० और बरार	४.३	३.८	—	—	०.६	—	—	—	३.७
पंजाब	७.३	१.६	—	—	६.५	१.६	—	—	२.०

इन सब बातों के अतिरिक्त भी भारतवर्ष की शिल्प ने

अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम उन्नति की है। इस समय भारतवर्ष में लगभग १३००० कारखानें हैं जिनमें २५ लाख श्रमिक कार्य करते हैं। इङ्गलैण्ड जिसकी जनसंख्या भारतवर्ष की जनसंख्या का केवल $\frac{1}{8}$ भाग है में लगभग एक लाख से अधिक कारखानें हैं। अभी लड़ाई का सामान, मशीनें, मोटर-कारें, टैंक तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ हमारे देश में बनना प्रारम्भ नहीं हुई। रसायन, इन्जन आदि भी भारतवर्ष को विदेशों से ही मंगाने पड़ते हैं। भारतवर्ष में बड़े बड़े कारखानें भी बहुत कम हैं। यह बात निम्न अंकों से स्पष्ट होती है:—

श्रमिकों की संख्या	कारखानों की संख्या
एक लाख से अधिक	५
५००००—१०००००	४
१००००—५००००	३१
५०००—१००००	१३
१०००—५०००	३८
५००—१०००	१८
५०० से कम	३८

इसके अतिरिक्त मशीनों द्वारा भारतवर्ष में उत्पत्ति भी बहुत कम होती है। कच्चा लोहा, स्टील और कोयले की प्रति एक (per capita) उत्पत्ति भारतवर्ष में ·००५,·००३ और ·००७ टन है जब की ब्रिटेन में यह ०·३, ०·४ और ३ टन अमेरिका में ०·२,०·३ और ५·२ है। भारतवर्ष में समस्त संसार की मशीनों द्वारा उत्पादक वस्तुओं का केवल १·४ प्रतिशत उत्पन्न होता है जब कि अमेरिका में ३२·२, रूस में १८·५ प्रतिशत और ब्रिटेन में ६·२ प्रतिशत होता है। भारतवर्ष के लोगों की प्रति एक आय (per capita) भी संसार के अन्य सब देशों से कम है (६५ रु०)। इस प्रकार इन सब बातों से यह

बात स्पष्ट है कि भारत उद्योग में अभी तक एक पिछड़ा हुआ देश है। इसके निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) भारतीय उद्योग की हीन-अवस्था का सर्व प्रथम कारण तो यह है कि जब कि अन्य देशों में सरकार ने देश के उद्योग को उन्नति देने के लिये असीम प्रयत्न किया है, हमारी सरकार इस विषय में सर्वथा चुप रही है। जर्मनी और जापान ने उद्योग में अपनी अपनी सरकार के कारण ही उन्नति की है। परन्तु भारतीय सरकार का अपने उद्योग से सौतेली माँ का सा बर्ताव रहा है। उद्योग को सरकार की वास्तविक और विशेष सहायता की आवश्यकता है जो अब तक प्राप्त नहीं हुई है। परन्तु अब भारत स्वतन्त्र हो गया है, अब सौतेली मां का प्रश्न आता ही नहीं।

(२) भारतवर्ष में विदेशों का बना हुआ माल हमारे देश के माल का प्रत्येक बाज़ार में मुक़ाबला करता है। यह अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुआ है। इसका सबसे बड़ा कारण भारत सरकार की टैक्स की नीति है। स्वतन्त्र व्यापार की पोलिसी ने हमारे देश के व्यापार को विशेष हानि पहुँचाई है।

(३) रेल के किरायों की नीति ने भी इस विषय में हमको बहुत हानि पहुँचाई है। इसके कारण आयात अधिक होती है, और निर्यात कम, अर्थात् एक ही स्थान के लिये और एक ही तोल पर निर्यात करने में आयात करने से बहुत अधिक किराया लिया जाता है। इसके कारण भारत की आर्थिक दशा को बहुत हानि पहुँचती है। अब स्वराज्य मिलने से यह आशा की जाती है कि शायद दशा सुधर जाय।

(४) यह सब जानते हैं कि भारत की पूंजी शर्मीली है। लोग पूंजी व्यापार और उद्योग में लगाने से डरते हैं। इससे

उद्योग की उन्नति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा हैं। इसके यद्यपि अनेक कारण हैं।

(५) जर्मनी और जापान ने भारतवर्ष में अपना माल बहुत सस्ते मूल्य पर चा है और यह केवल इसलिये किया गया है कि भारतीय उद्योग की उन्नति न हो। यदि भारत की आर्थिक दशा को सुधारना हो तो इस बुराई को दूर करना आवश्यक है।

(६) उद्योग की उन्नति इसके व्यवस्थापक और प्रबन्धकर्ता की योग्यता पर निर्भर होती है। भारतवर्ष में ऐसे योग्य पुरुषों की कमी है।

(७) भारतवर्ष में एक उद्योग को आरम्भ करने से पूर्व उसके लिये कलें भी बाहर से मँगानी होती हैं। जिससे इन पर बहुत अधिक खर्च होता है। और नया उद्योग आरम्भ करने का उत्साह नहीं होता।

(८ भारतवर्ष में मज़दूर तो बहुत हैं परन्तु उनका कार्य अच्छा नहीं है। वे यूरोपियन मज़दूरों से बहुत कम कार्य करते हैं। इनके अतिरिक्त भारतीय उद्योन को स्थाई मज़दूर भी नहीं मिलते। वह कभी मिल में कार्य करते हैं, और कभी अपने घरों को चले जाते हैं। इससे भारतीय उद्योग को बहुत हानि पहुँचती है।

(९) भारतवर्ष में औषधियां और ऐसी ही आवश्यक वस्तुऐं भी नहीं बनती। इनके ही कारण उद्योग उन्नति करता है, परन्तु भारतवर्ष में इनके न होने से इनके लिये व्यय बहुत बढ़ जाता है और उद्योग आरम्भ करने में कठिनाइयां होती हैं।

भारतवर्ष में उद्योग की उन्नति के साधन—अब यह प्रश्न उठता है कि भारतवर्ष में उद्योग की उन्नति की क्या सम्भावना है। प्रत्येक देश में कुछ ऐसी विशेषतायें होती हैं जिनके कारण वहां कुछ न कुछ वस्तु अथवा उद्योग

आरम्भ करने में लाभ होता है। वह बातें किसी विशेष उद्योग के लिये बहुत उचित होती हैं। भारतवर्ष एक कृषक देश है। जहां पर बहुत से प्राकृतिक साधन उपस्थित हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि भारतवर्ष केवल एक कृषक देश ही है और ये उद्योग में उन्नति नहीं कर सकता। भारतवर्ष में वे समस्त वस्तुएँ उपस्थित हैं जिनकी उद्योग की उन्नति के लिये आवश्यकता होती है। इस देश में प्राकृतिक साधन बहुत हैं और प्रत्येक प्रकार के उद्योग के लिये कच्चा माल भी बहुत मिलता है।

भारतवर्ष में बने हुये माल का भारतवर्ष में ही प्रयोग और विक्रय हो सकता है। भारतवर्ष में मजदूर भी बहुत मिलते हैं। जंगल और खनिज पदार्थ भी अधिक हैं। इसलिये भारतवर्ष उद्योग के लिये एक बहुत उचित देश है। जब उन देशों में उद्योग उन्नति कर सकता है जहां प्राकृतिक और अन्य साधन नहीं मिलते, तो कोई कारण नहीं कि यह सब कुछ भारतवर्ष में न हो सके। प्राचीन काल में भारतवर्ष उद्योग में बहुत उन्नति कर चुका था और अब भी यह वही स्थान प्राप्त कर सकता है।

भारत में उद्योग की उन्नति के लाभ भारतवर्ष में उद्योग की उन्नति के अनेक लाभ होंगे :—

(१) इस समय देश की कृषि पर बहुत भार है। जनता इसी से अपना निर्वाह करती है। उद्योग की उन्नति से कृषि पर भार कम हो जायगा, और जनता की आय में वृद्धि होगी, और इस प्रकार उनके रहने का ढंग भी सुधर जायगा।

(२) देश में उद्योग की उन्नति होने से देश के युवकों के लिए कार्य के नये साधन खुल जायेंगे, और इस प्रकार बेकारी दूर हो जायगी।

(३) लोगों की आय में वृद्धि से सरकार को भी लाभ होगा, और इससे सरकार को टैक्स अधिक मिलेगा। इस प्रकार सरकार देश की उन्नति के लिए अधिक प्रयत्न करने में उत्साहित होगी।

(४) उद्योग की उन्नति से जनता के विचारों में भी परिवर्तन हो जायगा। वह प्रौढ़ विचारों को त्याग कर उद्योग की ओर रुचि करेगी।

(५) मजदूर अन्य शहरों में जाकर कार्य करेंगे। इस प्रकार एक ही व्यक्ति पर रोटी कमाने का समस्त भार न रहेगा।

(६) देश की पूंजी भलीभांति प्रयुक्त होगी और रुपया उद्योग और व्यापार में लगाने के लिये जनता का उत्साह बढ़ेगा।

(७) युद्ध या ऐसी ही किसी तत्कालीन आवश्यकता के समय भारतवर्ष उद्योगिक देश होते हुए सरकार को अधिक सहायता दे सकेगा। इससे सरकार की आर्थिक दशा में वृद्धि होगी।

सरकार को, उद्योग में देश की अधिक से अधिक सहायता करनी चाहिये। विदेशी माल की आयात पर टैक्स लगाकर अपने देश के उद्योग को उन्नति का अवसर देना चाहिये। सरकार को विदेशों में कार्य सीखने के लिये भी लोगो को भेजना चाहिये और इस विषय में उनको समस्त प्रकार की सुविधायें देनी चाहियें। उनके लिये छात्रवृत्ति नियत करनी चाहियें। इस प्रकार विद्यार्थीयों को बाहर जाने का उत्साह होगा और सहायता मिलेगी।

इसके अतिरिक्त सरकार को उद्योग में जांच पड़ताल (Research) का भी प्रबन्ध करना चाहिये। अन्य देश इस विषय में बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। भारतवर्ष को भी ऐसा ही

करना चाहिये। इसके अतिरिक्त सरकार को विदेशों में Trade Commissioners नियुक्त करने चाहियें। वह व्यापार और उद्योग की दशा समझकर देश को बहुत लाभ पहुँचा सकते हैं। सरकार को देश के यातायात के साधनों की पौलिसी पर भी ध्यान देना चाहिये। इनकी नीति ऐसी नहीं होनी चाहियें जिस से देश के उद्योग को किसी प्रकार की हानि पहुँचे। यह प्रयत्न करना चाहिये कि इससे देश को अधिक से अधिक लाभ हो।

भारत के घरेलू धन्धे

घरेलू उद्योग उस उद्योग को कहते हैं जिसमें किसी वस्तु का निर्माण करने के लिये थोड़ी मात्रा में घरों में ही कार्य सम्पादन किया जाय। घरेलू उद्योग प्रायः वह लोग आरम्भ कर लेते हैं जिनके पास कुछ समय ऐसा हो जिसको वह अपने मुख्य काम में भली भांति-लगा सकने में असमर्थ हों। ऐसे उद्योग हमारे कृषकों के लिये विशेषतया लाभप्रद हैं। वर्ष में लगभग चार पांच मास तक उनके पास कोई कार्य नहीं होता। इस समय वह घरेलू उद्योग द्वारा अपनी आय बढ़ा सकते हैं। घरेलू उद्योग में काम थोड़े परिमाण में होता है। इसलिये पूंजी भी थोड़ी ही लगानी पड़ती है। यह पूंजी कार्य कर्त्ता स्वयं लगाते हैं तथा इसी भांति जिस औजार अथवा छोटी मशीन इत्यादि की आवश्यकता होती है उसे भी स्वयं प्राप्त करते हैं। इस लिये घरेलू उद्योग का प्रबन्ध तथा काम करने की अवस्था फैक्टरी अथवा मिल से सर्वथा भिन्न होती है। इनमें काय करते हुए किसी विशेष शर्त आदि का ध्यान नहीं रक्खा जाता। प्रत्येक कार्य व बात, कार्य-कर्त्ताओं की सुविधा तथा इच्छा-नुकूल होता है। इसके विपय में प्रत्येक बात का उत्तरदायी वह

स्वयं होता हैं। माल बनाने के पश्चात् उन्हें स्वयं ही इसको विक्रय करने का प्रबन्ध भी करना पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के उद्योग में वह प्रत्येक कार्य अपनी सुविधा व इच्छानुसार करते हैं।

भारतवर्ष के आर्थिक-जीवन में घरेलू उद्योग का बड़ा महत्त्व-शाली स्थान है। निस्सन्देह घरेलू उद्योग का प्रत्येक देश के आर्थिक जीवन में महत्त्व होता है। किन्तु इस देश में इनका महत्त्व विशेषतया अधिक है। भारत की वर्तमान दशा को देख कर हम यह कह सकते हैं कि हमारे देश में अत्याधिक बेकारी है। बेकारी का निवारण करना हमारा सर्व प्रथम कर्त्तव्य है। भारतवर्ष में असंख्य मनुष्य बेकार रहते है। उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जिनको वर्ष में कुछ समय के लिये कार्य मिल जाता है, किन्तु शेष समय वह बेकार रहते हैं। हमारे कृषक विशेष-तया इस गिनती में आते हैं। इनके पास वर्ष में चार पांच मास कोई कार्य नहीं होता। उनकी यह बेकारी अत्यन्त हानि-कारक है। इस समय में वह कुछ अच्छा कार्य करने की अपेक्षा आलस्य व बुरी आदतों में फंस जाते हैं। इस बेकारी को दूर करने के लिये बड़े-बड़े कारख़ानों व फैक्टरियों से कोई सहायता प्राप्त नहीं हो सकती क्योंकि इनमें एक बड़ी पूंजी की आवश्यकता होती है और कार्य को बन्द करना भी हानि कारक होता है। हमारे कृषकों की बेकारी का तो केवल घरेलू-उद्योग ही निवारण कर सकते हैं। घरेलू उद्योग में न तो अधिक पूंजी की आवश्यकता पड़ती है और न ही किसी विशेष कला की। इसके अतिरिक्त घरेलू-उद्योग प्रत्येक मनुष्य आरम्भ कर सकता है। इससे उसके अन्य कार्यों में भी कोई हानि नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति अपने अवकाश के समय इसे कर सकता है। वह इसे जब चाहे आरम्भ कर सकता है तथा जब चाहे समाप्त

कर सकता है। बड़े-बड़े मिल व कारख़ाने इस विषय में अनुचित हैं। इसमें एक बड़ी पूंजी व्यय होती है तथा बड़ी-बड़ी कलें होने के कारण परिश्रम करना पड़ता है। किन्तु भारत की दशा पर दृष्टिपात करते हुए उन उद्योगों की आवश्यकता है जिनमें कम से कम पूंजी व्यय हो तथा अधिक से अधिक व्यक्तियों को कार्य मिल सके। भारतवर्ष एक कंगाल देश है। यहां पर रुपये का अभाव है एवं बेकारी बड़े परिमाण में है। फलतः इस देश के आर्थिक-जीवन में सुधार करने के लिये घरेलू-उद्योग अति लाभदायक हैं। इनमें अधिकाधिक व्यक्ति कम से कम पूंजी व्यय करके कार्य कर सकते हैं। इसके विरुद्ध बड़े-बड़े मील व कारखाने मनुष्यों को कार्य देने की अपेक्षा बेकारी फैलाते हैं। इनमें बड़ी-बड़ी कलों का प्रयोग होता है और क्योंकि एक कल कई व्यक्तियों का कार्य कर सकती है इस लिये बड़े-बड़े कारखानों में अधिक व्यक्तियों को कार्य नहीं मिल सकता। यद्यपि इस देश में लगभग पचास वर्ष से बड़े २ कारख़ाने स्थापित हैं परन्तु उनमें काम करने वालों की संख्या बहुत थोड़ी है। इसलिये बेकारी का निवारण करने के लिये बड़े कारखानों की अपेक्षा घरेलू-उद्योग अधिक लाभप्रद हैं। परिणाम स्वरूप भारत के आर्थिक-जीवन में वह बड़ा महत्व रखते हैं।

इसके अतिरिक्त आजकल इस देश में बड़े २ कारखाने केवल गिने चुने प्रसिद्ध व बड़े बड़े नगरों में स्थापित हैं। एक देश की उन्नति के लिये यह परमावश्यक है कि देश की उन्नति तथा उद्योग में देश के प्रत्येक भाग का सम भाग हो। यदि बड़े बड़े कारखाने केवल गिने चुने नगरों में ही स्थापित हो जावें तो इससे उन नगरों की जनसंख्या बहुत बढ़ जाती है और साथ-साथ प्रान्तीय ईर्षा भी जाग्रत हो जाती है। इसके अति-

रिक्त देश के सम्पूर्ण कारखानों का एक ही स्थान पर स्थापित होना युद्ध के दिनों में विशेष कर हानिदायक हो जाता है। ऐसे केन्द्र बड़ी सरलता से नष्ट कर दिये जाते हैं। इसलिये सम्पूर्ण देश में कारखानों तथा उद्योग का विभाजन उचित रीति से होना आवश्यक है। इस काम के लिये घरेलू-उद्योग अत्यन्त लाभ-दायक हैं। इनके द्वारा शनैः शनैः देश के आर्थिक-जीवन में परिवर्तन किया जा सकता है।

बड़े बड़े कारखानों के स्थापित होने से हमारे समाज में एक बड़ा हानिकारक रोग उत्पन्न हो गया है। कुछ व्यक्ति तो अत्यन्त धनवान बन गये हैं किन्तु अधिकांश मनुष्य ऐसे हैं जो भूखे मरते हैं। पुंजीवाद प्रतिदिन शोचनीय रूप धारण करता जा रहा है। आज निर्धन और धनवान के अन्तर का निवारण करना परमाअवश्यक है। मजदूरों की दशा अत्यन्त हीन है। उन पर मिल मालिक तथा पूंजीपति बहुत अत्याचार करते हैं फल-स्वरूप वह कार्य भी भली भांति नहीं कर सकते। इसकी समाप्ती करने के लिये घरेलू उद्योग बहुत उचित हैं।

घरेलू उद्योग में प्रत्येक कार्य कार्य-कर्ताओं की सुविधा, रुचि तथा इच्छानुसार होता है। इसलिये कार्य-कर्ताओं को अपनी रुचि के अनुकूल उन्नति करने के बहुत सुअवसर मिलते हैं। इनमें प्रत्येक व्यक्ति अधिक काम करके अपनी आय में वृद्धि कर सकता है। इसलिये भारत जैसे निर्धन देश में घरेलू उद्योग अति अवश्यक है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में ग्रामों की एक बड़ी संख्या है। भारत की जनसंख्या का ९० प्रतिशत भाग ग्रामों में रहता है। इस कारण इस देश की उन्नति केवल उसी समय सम्भव है जब कि ग्रामों की दशा को अधिक से अधिक सुधारा जाय। ग्रामों की दशा में सुधार करने के लिये घरेलू-उद्योग हमारे देश के आर्थिक जीवन का एक आवश्यक अंग है।

भारत के घरेलू धन्धो के नष्ट होने के कारण—प्राचीन काल में भारतवर्ष में घरेलू-उद्योग की प्रथा प्रचलित थी और इस देश में इनकी अत्यधिक उन्नति हो चुकी थी किन्तु पिछले दिनों में अर्थात् अंग्रेज़ी राज्य स्थापित हो जाने के पश्चात् भारतीय घरेलू-उद्योग अवनति की और अग्रसर होते चले गये। इस अवनति के अनेक कारण थे। पहले जब देश में मुगल राजा राज्य करते थे तो वह घरेलू-उद्योग की ओर अत्यन्त ध्यान देते थे। इनको प्रत्येक प्रकार से सहायता देते थे और इनकी उन्नति करने वालों को विशेष प्रकार से प्रोत्साहित करते थे। इसलिये इनकी राजधानियों जैसे देहली आगरा इत्यादि में घरेलू-उद्योग की विशेष उन्नति हो गई थी, किन्तु इनके राज्य के अनन्तर यही प्रथा न चल सकी और इस प्रकार वह शनैः शनैः नष्ट हो गये। इसके अतिरिक्त योरुप में Industrial Revolution हो चुका था और उद्योग में विशेष प्रकार की आधुनिक कलों का प्रयोग आरम्भ हो चुका था। इनके कारण माल बड़ी मात्रा में बनने लगा। कलों द्वारा बना हुआ यह माल बहुत सस्ता था। इसलिये घरेलू-उद्योग को अत्यधिक हानि हुई एवं यह क्रमशः नष्ट हो गये। इनके नष्ट होने का तीसरा कारण भारतवर्ष में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की पौलिसी थी। यह कम्पनी भारतवर्ष को केवल एक कृषक देश बनाना चाहती थी और यहां से कच्चा माल विलायत को भेजकर वहां से बना हुआ माल मंगाना चाहती थी और इसने ऐसा ही किया। इसकी इस पौलिसी ने भारतवर्ष के घरेलू-उद्योग को असीम हानि पहुँचाई और वह नष्ट होते गये। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ी राज्य के उपरान्त वर्तमान प्रगतिशील काल के साथ साथ मनुष्यों के विचारों, रुचि और स्वभाव में अनेक परिवर्तन होते गये। वह विदेशी वस्तुओं और कलों

द्वारा बने हुए माल को हृदय से अपनाने लगे। इस प्रकार घरेलू-उद्योग की कोई उन्नति न हुई। इनके पश्चात् घरेलू-उद्योग को नष्ट करने का सब से बड़ा कारण भारत सर।ार की टैक्स की पौलिसी थी। विदेशों में विशेष कर बर्तानिया से आये हुए माल पर बहुत कम टैक्स लगता था और इस लिये वह भारतवर्ष में बहुत सस्ता बिकता था। किन्तु भारतवर्ष में घरेलू-उद्योग के माल का मूल्य अत्यधिक होता था। इनका मूल्य अधिक होने के कारण विदेशी माल अधिक बिकने लगा। भारतीय घरेलू-उद्योगों में इसका सामना करने की शक्ति कहां थी ? वह धीरे-धीरे नष्ट हो गये।

घरेलू-उद्योग के पिछले दिनों में नष्ट होने के कारण हम ऊपर देख चुके हैं। अब यह भी आवश्यक है कि उन सब प्रयत्नों पर ध्यान दिया जाय जिनकी सहायता से वह पुनः उन्नति कर सकते हैं।

उद्योग-ध-धों की उन्नति के स।धन के प्रयत्न निम्न प्रकार के हो सकते हैं:—

(१) घरेलू-उद्योग में कार्य करने वाले प्रायः प्राचीन व प्रौढ़ विचारों के होते हैं। उनको वर्तमान साधन सीखने और औज़ार इत्यादि प्रयोग करने के लिये प्रोत्साहन देना चाहिये। इसके लिये यह परमावश्यक है कि उन्हें सर्वोत्तम शिक्षा दी जाय। देश में औद्योगिक-स्कूल स्थापित किये जाने चाहियें। इनकी सहायता से कार्य करने वाले काम करने के नवीन व सर्वोत्तम साधन सीख जायेंगे और उनके प्राचीन साधन व विचार दूर हो जायेंगे।

(२) घरेलू-उद्योग की उन्नति के लिये पारस्परिक सहायक सोसाइटियां Co-operative Societies अत्यन्त लाभदायक

सिद्ध होती हैं। इनके द्वारा घरेलू-उद्योग में कार्य करने वालों को न्यूनतम ब्याज पर रुपया उधार देने का प्रबन्ध किया जा सकता है। ऐसी ही सोसाइटियों द्वारा उनके कच्चे माल को खरीदने व बने हुए माल को बेचने का भी भली प्रकार व सरलता से सुप्रबन्ध किया जा सकता है।

(३) अधुनिक युग में हाइड्रो इलेक्ट्रिक स्कीम के कारण बिजली बहुत सस्ती हो गई है। यदि इसका प्रयोग बड़े बड़े घरेलू उद्योग में किया जाय तो उनको एक बड़ा लाभ प्राप्त हो सकता है। बस बिजली के सदुपयोग से अपनी उन्नति को फैक्टरी तथा कारखाने के समान बढ़ा सकते हैं और इसके साथ-साथ अपने-अपने घरों में भी कार्य कर सकते हैं। देशान्तरों जैसे नार्वे इत्यादि में हाइड्रोइलेक्ट्रिक स्कीम द्वारा घरेलू उद्योग अत्यन्त उन्नतिशील हो चुके हैं। बिजली का उपयोग ग्रामों में भी बहुत उन्नति कर गया है और इस भांति वहां के कृषक फालतू समय में अपनी आय की वृद्धि करने के लिये कार्य कर सकते हैं। भारतवर्ष में भी ऐसे साधन प्रयुक्त करने चाहिये जिनके द्वारा घरेलू-उद्योग की उन्नति हो।

(४) सरकार भी घरेलू उद्योग को प्रोत्साहित करने के लिये उन्हें रुपया उधार दे सकती है। सरकार को इस भांति उनकी सहायता अवश्य करनी चाहिये।

(५) नुमाइशों द्वारा भी घरेलू-उद्योग की सहायता की जा सकती है। इनके द्वारा घरेलू-उद्योग का माल अधिक लोकप्रिय बनाया जा सकता है। अच्छी वस्तुओं के नमूनों से कार्य करने वालों को भी अच्छी वस्तुएं बनाने में सहायता मिलती है।

(६) सरकार को समस्त देश में औद्योगिक विद्यालय खोलकर घरेलू-कार्य करने वालों को सर्वश्रेष्ठ वस्तुएं निर्माण करने की शिक्षा देनी चाहिये। बम्बई में ऐसे छः विद्यालय

सरकार की ओर से चल रहे हैं। अन्य प्रान्तों में भी ऐसे विद्यालय स्थापित किये जाने चाहियें।

(७) सम्पूर्ण देश में वर्तमान एवं उत्तम भांति की कलें तथा औज़ार प्रयोग करने का प्रचार किया जाना चाहिये। मध्य-प्रान्त में ऐसा प्रचार किया जा रहा है और यह अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ है। इस प्रचार द्वारा बिहार व उड़ीसा में भी घरेलू उद्योग को बहुत लाभ पहुँच चुका है। वहां पर घरेलू-उद्योग में आधुनिक औज़ार, कच्चा माल तथा नमूनों इत्यादि से लाभ उठाया जाता है। इसी भांति समस्त देश को भी लाभ पहुँच सकता है।

(८) घरेलू-उद्योग में अपना बना हुआ माल रखने के लिये गोदामों इत्यादि का भी अत्यन्त अभाव है। इनके बने हुए माल को सरकारी गोदाम में रखने की आज्ञा देकर इनकी सहायता करनी चाहिये। इस प्रकार घरेलू-उद्योग को बैंकों और पारस्परिक सहायक सोसाइटियों की सहायता प्राप्त हो सकती है और वह कारखानों के बने हुए माल का सामना कर सकते हैं।

(९) घरेलू-उद्योग का सबसे बड़ा शत्रु विदेशी माल है। घरेलू उद्योग का निर्माण किया हुआ माल अधिक उत्तम न होने के कारण विदेशी माल उससे बाज़ी ले जाता है। इसके लिये यह आवश्यक है कि विदेशी माल को इस प्रकार घरेलू उद्योग का सामना करने से रोका जाय। इसके लिए विदेशी माल की आयात पर प्रतिबन्ध और अत्यधिक टैक्स लगाना चाहिए। इससे घरेलू-उद्योग को यह सन्तोष हो जाता है कि विदेशी माल उनको नष्ट नहीं कर सकता।

इसलिए घरेलू-उद्योग की उन्नति के लिये घरेलू-उद्योग में कार्य करने वालों को अधिकाधिक सहायता देनी चाहिये और

इनकी उन्नति के लिए सरकार को प्रयत्नशील होना चाहिए।

भारत के उद्योग-धन्धों की कठिनाइयाँ—घरेलू-उद्योग का भारतवर्ष के आर्थिक जीवन में एक विशेष हाथ है, किन्तु इस समय इनकी अत्यन्त हीनावस्था है। इनमें अनेक दोष हैं और इनको अनेक प्रकार की कठिनाइयां सहन करनी पड़ती हैं। यदि हम यह चाहते हैं कि वह देश की आर्थिक उन्नति में उचित भाग लें तो यह आवश्यक है कि उनको वर्तमान कठिनाइयों से छुटकारा दिलाया जाय। इनके दोष व कठिनाइयां निम्नलिखित हैं। कठिनाइयों व दोष के साथ उनको दूर करने के साधनों का ज्ञान होना भी अनिवार्य है। इसलिए इनके साथ वह भी वर्णित किये गये हैं:—

[१] **पूंजी**—प्रत्येक उद्योग के लिये आवश्यक होती है। भारतवर्ष में घरेलू-उद्योग के लिये पूंजी का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं है। उनको रुपया उधार नहीं मिलता। बैंकों और आपसी सहायक सोसाइटियों से भी रुपया मिलना अति कठिन है। इसके फलस्वरूप उनको रुपया साहूकार से लेने के लिये बाध्य होना पड़ता है। साहूकार उनसे न केवल अधिक ब्याज ही लेता है वरन् उनको अपनी बनाई हुई वस्तुएं साहूकार को ही बेचनी पड़ती हैं। इनका उन्हें बाज़ार से बहुत कम मूल्य मिलता है। इसलिये घरेलू-उद्योग में उन्हें साहूकार को वस्तुओं के बेचने से हानि होती है।

पूंजी की समस्या हल करने के लिये यह आवश्यक है कि सरकार इस कार्य में सहायक हो। सरकार को यह चाहिये कि घरेलू कार्य करने वाले को थोड़ा २ रुपया उधार दे जिससे वह अपने उद्योग के लिये कच्चा माल और अनिवार्य वस्तुएं खरीद सके। औज़ारों को भी सरकार की सहायता से प्राप्त किया

जा सकता है। इसके लिये औद्योगिक आपसी सहायक-बैंक स्थापित करने चाहियें।

[२] **कच्चा माल**—अपने उद्योग को भली भांति चालू रखने के लिये घरेलू कार्य करने वालों को कच्चे माल की आवश्यकता होती है। किन्तु इसके प्राप्त करने में उनको बहुत कठिनाई होती है। उत्तम भांति का माल एजेन्ट लोग बड़ी-बड़ी मिलों के लिए खरीद लेते हैं और यह निर्धन व्यक्ति उनका सामना नहीं कर सकते। इसलिए इनको अच्छा माल अप्राप्त रहता है। इनको माल भी अच्छा नहीं मिलता और मूल्य भी अधिक देना होता है।

इस दोष का अति शीघ्र निवारण करना चाहिये। इसका अत्युत्तम साधन यह है कि इनके लिए कच्चे माल को आपसी सहायक सोसाइटियों द्वारा खरीदा जाय। इस विषय में सरकार भी उनकी सहायता कर सकती है और ऐसी सोसाइटियां स्थापित करवाई जा सकती हैं।

[३] **वस्तुएं निर्माण करने का ढङ्ग**—घरेलू-उद्योग का एक और बड़ा दोष यह है कि इनमें कार्य करने वाले कार्य की कला और नियम से अनभिज्ञ हैं। वस्तुएं निर्माण करने के नियम एवं कल अत्यन्त प्राचीन हैं। इनसे कोई वस्तु भली-भांति व अधिक संख्या में निर्माण नहीं की जा सकती।

औज़ारों और वस्तुएं निर्माण करने की कला एवं नियमों में बहुत सुधार किया जा सकता है। विज्ञान के आधुनिक आविष्कारों से बहुत सहायता प्राप्त की जा सकती है। वस्तुएं निर्माण करने के औज़ारों व नियमों में नियमानुसार जांच पड़ताल की जानी चाहिये। इसमें सरकार की सहायता भी अनिवार्य है। भली प्रकार के औज़ार व निर्माण-साधनों को

जनता में विज्ञापन नुमाइश, मेले आदि द्वारा लोक-प्रिय बनाया जा सकता है।

[४] **बनी हुई वस्तुओं का विक्रय**—घरेलू कार्य करने वालों को अपनी निर्माण की हुई वस्तुएँ बेचने में भी अत्यन्त कठिनाई होती है। वह अपना बनाया हुआ माल स्वयं ही मनुष्यों को पृथक-पृथक बेचते हैं। किन्तु मनुष्यों के स्वभाव तथा दैनिक प्रयोग की वस्तुओं में एक बड़ा परिवर्तन हो चुका है। उनकी बनाई हुई वस्तुएं घटिया तथा भद्दी होती हैं। इसके अतिरिक्त व्यय भी अधिक होता है। इसलिये हानि होती है। घरेलू कार्य करने वालों को वस्तुओं के उचित नमूने तथा दैनिक बाज़ारी समाचार भी ज्ञात होते हैं।

घरेलू उद्योग की बनी हुई वस्तुओं के विक्रय की ओर अधिकाधिक ध्यान देना चाहिये। इसके माल की बिक्री के लिये विशेष प्रकार की संस्थाएं स्थापित की जानी चाहिये और इनके द्वारा घरेलू कार्य करने वालों का बाज़ार से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। इन संस्थाओं द्वारा घरेलू उद्योग की वस्तुओं को विज्ञापन एवं ऐसे ही अन्य साधनों की सहायता से अधिक से अधिक सर्वप्रिय बनाना चाहिये। इनके माल की बिक्री में सरकार भी बहुत सहायता कर सकती है। परमावश्यक बात यह है कि घरेलू उद्योग करने वालों को एकत्रित होकर कार्य करने चाहियें। इसके लिये पारस्परिक सहायक सोसायटियों की सहायता लेनी चाहिये।

[५] **टैक्स**—घरेलू-कार्य करने वालों को यह भी शिकायत है कि उन्हें टैक्स अत्यधिक देने को बाध्य किया जाता है। कच्चा माल लाते हुए तथा बनी हुई वस्तुएं ले जाते हुए बहुत चुंगी देनी पड़ती है। इसके लिये यह आवश्यक है कि टैक्स

के नियम मे सुधार किया जाय और इन पर टैक्स कम से कम लगाया जाय।

उद्योग धन्धों के जीवित रहने के कारण

हम घरेलू उद्योग की प्रचलित दशा, कठिनाइयां, दोष और साथ-साथ उनके सुधार के उपाय भी वर्णन कर चुके हैं। किन्तु हमें यह भी ज्ञात है कि इन कठिनाइयों और दोषों के होते हुए भी यह मिलों व कारखानों के साथ साथ उन्नति कर रहे हैं। कारखाने के बने हुए माल के सस्ता बिकने पर भी यह अपनी जीवकोपार्जन कर रहे हैं और इसमें कार्य करने वाले कारखानों में नहीं जाना चाहते। इसके कई कारण हैं। सर्व प्रथम कारण यह है कि घरेलू कार्य करने वाले अपने अपने घरों में आराम से स्वेच्छानुसार कार्य करते हैं। कारखानों में कार्य करने की रीति नियम और प्रबन्ध उनको अच्छा नहीं लगता। इस कारण वह मिल में कार्य करने की अपेक्षा अपने घरों में स्वयं कार्य करना उचित समझते हैं। इसके अतिरिक्त यद्यपि भारतवर्ष में यातायात के साधनों की बहुत उन्नति हो चुकी है फिर भी अनेक ग्राम अन्य ग्रामों की अपेक्षा सर्वथा भिन्न हैं। इन स्थानों पर मनुष्य घरेलू कार्य करके भली भांति अपना निर्वाह कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त घरेलू उद्योग में कार्य करने वालों को अपना समस्त समय लगाने की आवश्यकता नहीं। इसमें कृषक व किसान अपने खाली समय में कार्य कर सकते हैं। घरेलू-उद्योग के अब तक भली-भांति स्थापित रहने का एक और कारण यह भी है कि कुछ उद्योग ऐसी वस्तुओं का निर्माण करते हैं जो कारख़ानों में बनी हुई वस्तुओं की अपेक्षा अधिक मज़बूत व सुन्दर होती है। इनमें कुछ ऐसी वस्तुएँ बनाई जाती हैं जिनका कारखानों में कलों द्वारा निर्माण सर्वथा असम्भव है।

घरेलू-उद्योग के स्थापित रहने का अन्तिम कारण यह है कि इस उद्योग ने अपने प्रबन्ध और कार्य की रीति व नियमों में वर्तमान समय के अनुकूल परिवर्तन कर लिया है। इनमें वर्तमान समय के अनुसार वस्तुएं बनाई जाती हैं और इसके लिये उचित प्रकार के औजार तथा माल प्रयोग किया जाता है। उदाहरणतया कपड़ा बुनने में कारखानों के अनेक साधन प्रयोग किये जाते हैं। इस प्रकार रंगरेज ने भी कपड़े रंगने के लिये आधुनिक, वैज्ञानिक औषधियों तथा नियमों को सीख लिया है। ऐसा ही प्रत्येक अन्य भाँति के उद्योग में होता है।

इसके अतिरिक्त जाति प्रथा के कारण जुलाहे, कुम्हार आदि अपने पूर्वजों के ही काम करते हैं। कारखानों में मिलने वाली मज़दूरी इतनी अधिक नहीं हुई कि गांव से लोग नगर में रहने की असुविधाएँ और व्यय सहन कर सकें। परदे की प्रथा के कारण स्त्रियां बाहर जाकर काम नहीं कर सकतीं, उन के लिये घरेलू धन्धे ही हितकर हैं। कृषकों को चार से छः मास तक बेकार रहना पड़ता है, इस कारण उनके लिये उद्योग धन्धे बहुत महत्व रखते हैं। इन सब बातों के कारण आधुनिक सभ्य समय में भी घरेलू उद्योग का बड़ा महत्व है।

घरेलु धन्धों के विभाजन—भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न घरेलू धन्धों ने उन्नति की है। इसका मुख्य कारण उत्पन्न द्रव्यों में भिन्नता और उनके व्यापार में भिन्नता है। इस सम्बन्ध में देश के घरेलू धन्धों का अध्ययन हम निम्न प्रकार कर सकते हैं:—

(१] **आसाम, बंगाल, बिहार और उड़ीसा** के भागों में रबर, तिलहन, लाख, तेल, जूट, नील, चमड़ा, काग़ज़, रेशम, अफीम, तम्बाकू, चाय, चीनी, [शोरा, लोहा, [अभ्रक इत्यादि

वस्तुएँ उपजती हैं। इन भागों में हाथी दाँत का काम, छाता बनाना सीप, शंख का काम बेल बूटे, चटाई बनाने और ढाके की मलमल के काम प्रसिद्ध हैं।

(२) संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रदेश, राजपूताना, मध्य भारत, पंजाब और काशमीर में टीन की वस्तुएँ, लाख की रंगे हुये धातु की वस्तुएँ, इनामिल, सोने, चांदी, ताँबे; पीतल और फौलाद की वस्तुएं, पत्थर खोदने और पत्थर काटने का काम, मिट्टी का काम, लकड़ी का काम, चमड़े का काम, हाथी दांत, रंगने, छापने, रूई, रेशम और ऊन के कपड़े, शाल-दुशाले, दरी, ग़लीचे इत्यादि के काम होते हैं।

(३) बम्बई और बरार में सोने चांदी की वस्तुएँ, सींग चमड़े तथा जरदोज़ी के काम होते हैं।

(४) मद्रास, हैदराबाद, मैसूर और कुर्ग में सोने-चांदी, तांबे, पीतल, पत्थर, लकड़ी, हाथी दांत, कपड़ा रंगने, और छापने, रेशमी कपड़ा बनाने और चिकन इत्यादि बनाने के काम प्रसिद्ध हैं।

(५) कृषकों के लिये दो प्रकार के धन्धे हैं। (अ) ऐसे धन्धे जो खेती में सहायक हो सकें जैसे पशु पालन, दूध मक्खन का काम चटाई, टाट पट्टी बुनना, टोकरी बनाना, गुड़ बनाना, सूत कातना इत्यादि (ब) ऐसे धन्धे जो स्वतन्त्र धन्धों के रूप में किये जा सकते हैं जैसे धान कूटने या आटा पीसने के मिल।

सरकार की उद्योग-नीति पर आलोचनात्मक दृष्टि— पुराने समय में भारतवर्ष का बना हुआ माल विदेशों में एक बड़ी मात्रा में जाता था। यह माल बड़े २ कारखानों में तैयार किया जाता था। भारतवर्ष का बना हुआ माल संसार-भर में प्रसिद्ध हो गया था। यह काम श्रेष्ठ प्रबन्ध के आधीन होता

था। अच्छे कारीगरों को राजाओं के लिये कार्य करना पड़ता था। अधिकतर माल भारतवर्ष में ही बिकता था। कुछ माल विदेशों में भी भेजा जाता था। ।वदेशों के व्यापारी इन वस्तुओं का क्रय विक्रय किया करते थे। भारतवर्ष को बनो हुई वस्तुएं, उदाहरणतया मलमल, हीरे जवाहरात, कैलिको, सुनहरी कार्य, ऊन और रेशम के माल कीमती पत्थरों और मसालों आदि के व्यापार से ईस्ट इन्डिया कम्पनी को बहुत लाभ था। इन्हीं वस्तुओं के व्यापार से लाभ उठाने के लिये भारतवर्ष के समुद्री मार्ग की खोज में युरोप के बहुत से यात्री निकले थे।

प्रारम्भ मे तो ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने अपने लाभ को देखते हुए भारतवर्ष की शिल्पकारी की उन्नति में भाग लिया। परन्तु इसके पश्चात् इंगलैंड के व्यापारियों के लाभ को ध्यान में रखते हुए भारतवर्ष की शिल्पकारी की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और न ही उनकी उन्नति के लिये कोई प्रयत्न किया। इंगलैण्ड की पार्लियामैंट ने भारत के बने हुए माल, उदाहरणतया मलमल, ऊनी और रेशमी कपड़े पर अधिक कर लगाया और इस प्रकार भारतवर्ष की बनी हुई वस्तुओं का इंगलैंड में आयात बन्द कर दिया गया। यह कर दो सौ व तीन सौ प्रतिशत तक भी लगाया गया था। इसके पश्चात् जब इंगलैंड में शिल्प क्रान्ती (Industrial Revolution) हुई तो बर्तानिया ने (Free Trade) बिना किसी कर के व्यापार की नीति को अपनाया। इससे इंगलैंड के व्यापार को लाभ हुआ और भारतवर्ष की शिल्पकारी को हानि। तत् पश्चात् सरकार की स्थायी नीति यह हो गई कि भारतवर्ष को इंगलैंड के लिये कच्चा माल तैयार करने के लिये कृषि प्रधान देश बनाया जाय और भारतवर्ष में इंगलैंड की मशीनों का तेयार किया हुआ माल अधिक मात्रा में बेचा जाय। उन्नीसवीं शताब्दी में इसी

नीति के अनुसार कार्य किया गया और भारतवर्ष की शिल्पकारी में कोई दिलचस्पी नहीं ली गई। सन् १८६० और १६१४ के मध्य यू० पी०, पंजाब, सी० पी०, और बम्बई में शिल्पकारी के सम्बन्ध में कई योजनाएं बनाई गईं परन्तु सब व्यर्थ हुईं। सन् १८३३ और १८५३ के मध्य में लोहे की शिल्पकारी की उन्नति के लिये प्रयत्न किया गया। फिर सन १८८१ में बंगाल में लोहे, आलमोनियम, चमड़े को कमाना (Tanning) इत्यादि की शिल्पकारी के लिये कोशिश की गई। यू० पी० के कुमायूं जिले में भी कुछ प्रयत्न किया गया परन्तु कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई।

इसके पश्चात् सन १६०५ में लार्ड कर्ज़न के काल में एक अलग विभाग विभाग शिल्पकारी के लिये बनाया गया। परन्तु इंगलैंड के व्यापारियों ने इसकी खूब बुराई की। सन् १६०८ में मद्रास की सराकार ने एक डायरेक्टर औफ इन्डस्ट्रीज़ नियुक्त किया। इसके लिये एक राय देने वाला बोर्ड (Advisory Board) भी स्थापित किया गया। २६ जुलाई सन १६१० ई० के पत्र में लार्ड मार्ले ने इन सब कोशिशों की अप्रशंसा की और शिल्प की उन्नति की प्रगति कम हो गई। मद्रास में १६१४ में फिर दोबारा शिल्पकारी का विभाग स्थापित किया गया। सन् १६१६ के शिल्पकारी कमीशन (Industrial Commission) ने भी इस बात पर अधिक ज़ोर दिया कि भारतवर्ष में शिल्पकारी की उन्नति के लिये राज्य ने कुछ नहीं किया और राज्य ने देश की शिल्पकारी की उन्नति के लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। इसी कमीशन की सिफारिश से पहली लड़ाई समाप्त होने तक सब प्रान्तों में शिल्पकारी विभाग स्थापित हो गये। सन् १६१४-१८ की लड़ाई के होने से भी भारतवर्ष की शिल्पकारी में कुछ उन्नति हुई क्योंकि विदेशों से माल आना बन्द हो

गया था। इसी काल में लोहा और स्टील की शिल्पकारी सूती कपड़े और दूसरी छोटी छोटी शिल्पकारियों ने भारतवर्ष में उन्नति की। इस मध्य में जूट की शिल्पकारी ने भी बहुत उन्नति की। सन् १९१९ के सुधारों के अनुसार शिल्पकारी विभाग भी प्रान्तीय सरकार के आधीन चला गया। सन् १९१७ में म्यूनीशन (Munition) बोर्ड स्थापित किया गया था उसने भी शिल्पकारी की उन्नति के लिये बहुत काम किया और इस सम्बन्ध में नई नई बातें मालूम कीं।

सन् १९१९ के पश्चात् भारतीय सरकार ने शिल्पकारी की उन्नति में दिलचस्पी लेनी प्रारम्भ की। सन् १९२२ से कुछ शर्तों पर भारतवर्ष की भिन्न २ शिल्पकारियों को (Discriminating Protection) की नीति के आधीन सुरक्षित किया गया तथा उनकी उन्नति के उपाय भी सोचे गये। इस नीति के अनुसार लोहे और स्टील, सूती कपड़े की शिल्पकारी, चीनी, माचिस और कागज़, इत्यादि की शिल्पकारियों की उन्नति हुई और उन्हें विदेशी खतरे से (Competition) से बचाने के लिये ऐसी विदेशी वस्तुओं के आयात पर अधिक कर लगाया गया और इस प्रकार इन शिल्पकारियों को सुरक्षित किया गया। इसके अतिरिक्त स्वदेशी लहर और स्वदेशी स्टोर परचेज़ (Swadeshi Store Purchase) की नीति से भी शिल्पकारियों को लाभ पहुँचाया गया। प्रान्तों में शिल्पकारियों की उन्नति और सहायता के लिये (State Aid to Industries Act) पास किये गये। इस प्रकार शिल्पकारी ने उन्नति की। परन्तु इस नीति को भी सरकार ने पूर्ण रूप से नहीं निभाया। सदा इङ्गलैण्ड की शिल्पकारियों के हित को अधिक महत्व दिया गया और इसी को सामने रखते हुए हवाई जहाज़, मोटर, समुद्री जहाज़ इत्यादि की शिल्पकारियों

का आरम्भ भारतवर्ष में नहीं हुआ। शीशे की शिल्पकारी को सुरक्षित नहीं किया गया। जिन शिल्पकारियों की सहायता के लिये Protective Duty लगाई गई थी उन पर बाद में Excise Duty लगा दी गई और इस प्रकार उनकी बढ़ती हुई उन्नति को रोक दिया गया। भारतवर्ष की रेलों का किराया इत्यादि और मुद्रा इत्यादि की नीति भी इस प्रकार की रही जिससे इङ्गलैण्ड के सामान की आयात भारत में सदा अधिक रही।

दूसरी बड़ी लड़ाई के मध्य में भारतवर्ष की शिल्पकारी की कमजोरी को भली भांति समझा गया। कांग्रेस की ओर से नेशनल प्लानिंग कमेटी (National Planning Committee) पं० जवाहर लाल नेहरु के सभापतित्त्व में स्थापित की गई थी। इसके मध्य में भारतवर्ष की शिल्पकारी ने अधिक उन्नति की और आस पास के कम उन्नति शील देशों को भारतवर्ष का बना हुआ माल जाने लगा। इसी मध्य में भारतवर्ष से विद्यार्थी विदेशों को शिल्पकारी विद्या सीखने के लिये भेजे जाने लगे और साइकिल, वायुयान, समुद्री जहाज़ इत्यादि की शिल्पकारियां भारतवर्ष में स्थापित हो गईं।

अब भारतवर्ष एक स्वतन्त्र देश हो गया है। भारतीय सरकार अब सब प्रकार से इस देश की शिल्प की उन्नति के लिये प्रयत्न कर रही है। देश के उत्पादन को बढ़ाने और लोगों की दशा अच्छी बनाने के लिये देश में शिल्प-उन्नति अत्यन्त आवश्यक है। अब बीस करोड रुपये की पूंजी से एक औद्योगिक सभा (Industrial Corporation) स्थापित करने की योजना की जा रही है जिसके भागीदार रिजर्व बैंक, भारतीय सरकार और दूसरे शेडयूलड़ (Scheduled) बैंक और बीमा कम्पनियां होंगी। यह कोरपोरेशन कारखानेदारों को

२५ वर्ष तक के लिये ऋण दे सकता है । । आशा है कि देशीय सरकार के आधीन भारतवर्ष के उद्योग बहुत ज्यादा उन्नति करेंगे ।

इस के अतिरिक्त सरकार ने एक Central Advisory Council of Industries भी बनाई है और एक Cottage Industries Board भी स्थापित किया है। इन दोनों का काम उद्योग की उन्नति के लिये परामर्श देना है। खोज करने के लिये एक Council of Scientific and Industrial Research भी स्थापित कर दी गई है। सीमैन्ट, सूती कपड़ा, कपास, जूट, स्टील, सिग्रेट और टायर के उद्योगों में Profit sharing प्रारम्भ करने की नीति का भी परामर्श दिया गया है। इस प्रकार वर्तमान सरकार उद्योग की उन्नति की ओर बहुत ध्यान दे रही है।

अभ्यास के प्रश्न

१. भारत के उद्योग, प्राचीन काल की उन्नति को कारणों सहित स्पष्ट कीजिये ।

Explain the industrial supremacy of India in the past. What factors were responsible for it ?

२. भारत के उद्योग की हीन अवस्था के कारण लिखिये । क्या भारत में उद्योग की उन्नति सम्भव है ? इस उन्नति से देश को क्या लाभ होगा ? इस उन्नति के साधन भी स्पष्ट कीजिये ।

Explain the causes of the industrial backwardness of India ? Is industrial progress possible in India ? If so, what benefits will this progress lead to ? How will you bring about this sort of progress ?

३. भारत की प्रसिद्ध शिल्पकारियों पर लेख लिखिये।

Write notes on the important industries of India ?

४. घरेलू उद्योग किसे कहते हैं ? भारत की आर्थिक उन्नति में घरेलू धन्धों का क्या स्थान है ?

What is a cottage industry ? What is the importance of cottage industries for economic prosperity of India ?

५. घरेलू धन्धों के नष्ट होने के कारण लिखो। इन्हें फिर से किस प्रकार उन्नत किया जा सकता है ?

What causes led to the disappearance of cottage industries in India ? How can these industries be improved ?

६. भारत के घरेलू धन्धों की मुख्य कठिनाइयां क्या हैं ? इन कठिनाइयों के अतिरिक्त भी भारत के घरेलू धन्धे जीवित हैं, इस के कारण लिखो।

What are the difficulties of the cottage industries in India ? What factors are respon sible for their survival in face of all these difficulties ?

७. भारत सरकार की औद्योगिक नीति पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिये।

Write a critical note on the industrial policy of the Government of India.

: ८ :

भारतवर्ष की श्रम व्यवस्था

श्रम का भी धनोत्पत्ति में एक महत्वपूर्ण स्थान है। कारखानों में काम करने के लिये स्वास्थ्य, योग्य तथा कुशल श्रमिकों की आवश्यकता है। यदि देश के श्रमिक कुशल तथा अपने काम में दक्ष न हों तो धनोत्पत्ति कम होती है। एक श्रमिक के कुशल होने के लिये अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि उसे उचित वेतन मिले ताकि वह अपनी जीवन की आवश्यकताएँ सरलता से पूरी कर सके और पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो क्योंकि उसके असन्तुष्ट रहने से मिल मालिकों तथा श्रमिकों का परस्पर झगड़ा रहता है जिसके फलस्वरूप धनोत्पत्ति में हानि होती है।

भारतवर्ष में श्रमिकों की संख्या निम्न प्रकार है :—

खेती	३·२ करोड़
पेड़ लगाना	११ लाख
खान खोदना	३६ हज़ार
यातायात	२५ लाख
उद्योग	१ करोड़, ६७ लाख

उद्योग में लगभग २५ लाख श्रमिक कारखानों में काम करते हैं। अधिकतर श्रमिक घरेलू धन्धों में लगे हुये हैं।

भारतवर्ष के श्रमिकों की एक विशेषता यह भी है कि उन में से बहुत से किसी कार्य को स्थाई रूप से नहीं करते बल्कि अपने कार्य बहुधा बदलते रहते हैं।

भारतवर्ष में श्रम की कुशलता—भारतवासी श्रमिक अन्य देशों के श्रमिकों के समान कार्य नहीं कर सकते। इनकी कार्य करने की शक्ति उन श्रमिकों से कम है। यह कहा जाता है कि एक अंग्रेज या अमरीकन श्रमिक एक भारतीय श्रमिक से चार गुना अधिक कार्य कर सकता है। वास्तव में यह बात ठीक नहीं है अर्थात् भारतीय श्रमिक में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे वह कम कार्य कर सकता हो। यदि उसे ऐसी ही सुविधायें प्राप्त हो जाँय जैसी कि अन्य देशों के श्रमिकों को प्राप्त हैं तो वह भी उतना ही कार्य कर सकता है जितना कि अन्य श्रमिक। उसके कम कार्य कर सकने के कारण ऐसे हैं जिन पर उसका कोई वश नहीं। वे कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) भारत का जलवायु बहुत गरम है, इस कारण, श्रमिक अपनी पूरी शक्ति से कार्य नहीं कर सकते। वह थोड़े परिश्रम से ही थक जाते हैं।

(२) श्रमिकों के प्रयोग के लिये सर्वोत्तम प्रकार के औज़ार और कलें नहीं मिलतीं।

(३) भारतीय कारखानों में मज़दूरों के कार्य करने का समय बहुत अधिक है। इससे उनके कार्य में रुचि नहीं रहती, और वह आलसी तथा सुस्त हो जाते हैं।

(४) भारतीय श्रमिकों के रहने का कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं है, छोटे-छोटे और गन्दे कमरों में कई कुटुम्ब साथ-साथ रहते हैं और इस कारण उनके स्वास्थ्य और चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

५—भारतीय श्रमिक सर्वथा अशिक्षित हैं। वह यह नहीं जानते कि वर्तमान रूपमें कार्य करना उनके लिए लाभदायक है।

६—कारखानों की दशा श्रमिकों के अनुसार नहीं होती वे सदा अपने गांव को लौटने और वहां पर खेती बाड़ी करने का प्रयत्न करते हैं। यह मजदूर प्राय: गांवों से आते हैं, और इनके पास भूमि भी होती हैं। शहरी कारखानों के कार्य, प्रबन्ध, समय, एवं मकान की कठिनाई से तंग आकर वह अपने गाँव में रहना अच्छा समझते हैं।

७—भारतीय मजदूर बहुत निर्धन हैं। वह अपना निर्वाह अच्छी तरह नहीं कर सकते, इसलिए वह दुर्बल होते जाते हैं और भली भांति कार्य नहीं कर सकते।

८—दुर्बल और निर्धन होने के कारण वह प्राय: भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों में फंसे रहते हैं। निर्धन होने के कारण वह भली भांति इसका इलाज नहीं कर सकते। इसका फल यह है कि उनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है और वह काम कम कर पाते हैं।

९—भारतीय मजदूरों को किसी प्रकार की औद्योगिक शिक्षा नहीं मिलती, इसके कारण वह इतना कार्य नहीं कर सकते, जितना कि अन्य शिक्षित मजदूर करते हैं।

१०-कारखनों का प्रबन्ध बहुत दोषपूर्ण और असन्तोषजनक है। मजदूरों के लाभ के लिए और उनको आराम देने का कोई प्रयत्न नहीं होता, यद्यपि ट्रेड यूनियन ने अभी इस ओर ध्यान देना आरम्भ किया है। अभी बहुत कुछ होना बाकी है।

जहां तक देहली प्रान्त का सम्बन्ध है, जो बातें ऊपर बताई गई हैं वह सब देहली के लिये भी ठीक हैं। देहली में मजदूर अधिकतर ठेकेदारों द्वारा आते हैं। देहली के कारखानों में भी

उन्हें बहुत कठिनाईयां होती हैं। वेतन बहुत कम है। निसन्देह उनको महगाई भी मिलने लगी है, परन्तु देहली जैसे शहर में जहाँ खर्च इतना अधिक है वह कोई विशेष प्रकार से लाभप्रद सिद्ध नहीं हुई है। देहली में मकानों की बहुत तंगी है। यह तंगी हर बड़े शहर में होती है। परन्तु देहली में भारत सरकार का दफ्तर होने के कारण वह तंगी बहुत अधिक है। मज़दूर बहुत गन्दे और बुरे मकानों में रहते हैं। देहली क्लोथमिल और बिड़लामिल इत्यादि ने तो कुछ ऊंचे पद के नौकरों के लिये मकानों का प्रबन्ध किया है, परन्तु यह काफी नहीं है। अधिकतर मज़दूरों को मकान का स्वयं प्रबन्ध करना पड़ता है। यह बहुत महंगा और असन्तोष जनक होता है, इस प्रकार और भी सब कारण यहां के सब मज़दूरों पर लागू होते हैं। निसन्देह कानून उनकी रत्ता करता है, परन्तु वास्तविक दशा में बहुत सुधार की आवश्यकता है।

श्रमकी कुशलता में वृद्धि के साधन—मज़दूरों के भारतवर्ष में कम कार्य कर सकने के कारण हम ऊपर देख चुके हैं। अब यह भी आवश्यक है कि हम मज़दूरों की कार्य करने की शक्ति में वृद्धि के उपाय भी सोचें। वास्तव में मज़दूर की दशा सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि वह सब कारण दूर कर दिये जाएँ जिनसे मज़दूरों के काम करने की शक्ति कम होती है। सबसे पहले यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनके प्रयोग के लिए सर्वोत्तम प्रकार की कलें प्राप्त की जाएँ। इससे वह बहुत अधिक कार्य कर सकेंगे। कारखानों में कार्य करने के घन्टे भी कम होने चाहियें। आजकल इस बात की ओर क़ानून बहुत ध्यान दे रहा है। फैक्टरी क़ानून के अनुसार मज़दूरों को कम काम करना होता है। सबसे बड़ी

कठिनाई इनके मकानों का प्रबन्ध है। इसके लिये सरकार और कारखानों के मालिकों को उनकी सहायता करनी चाहिये। मालिकों को चाहिए कि उनके लिए कारखाने के पास मकान का प्रबन्ध करें जिससे वह भली भांति रहें और कार्य भी अधिक कर सकें। इससे वह घर जाने के अधिक इच्छुक न होंगे और ध्यान और रुचि से अपना कार्य करेंगे। कारखानों में स्वच्छता और मजदूरों के स्वास्थ्य तथा आराम इत्यादि का भी विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि उनको औद्योगिक शिक्षा दी जावे जिससे वह भली भांति कार्य कर सकें।

सबसे आवश्यक बात यह है कि उनकी अशिक्षा को दूर किया जावे, वह अच्छा जीवन व्यतीत कर सकें और इसके लिये अधिक से अधिक प्रयत्न करें। जब तक वह शिक्षित न होंगे किसी प्रकार के सुधार का उन पर कोई प्रभाव न होगा। वह बहुत निर्धन भी हैं इसके लिये उनकी आय बढ़ानी चाहिये जिससे वह भली भाँति अपना निर्वाह कर सकें। जब तक उनको भली भाँति रोटी कपड़ा न मिलेगा कार्य अच्छा होना असम्भव है। इन सब बातों में कारखानों के मालिकों के अति-रिक्त सरकार को भी विशेष ध्यान देना चाहिये। तब ही हम देश की आर्थिक दशा और मजदूरों के कार्य में सुधार की आशा कर सकते हैं।

ट्रेड यूनियन संगठन

(Trade Union Movement)

सबसे पहले १६१८ में मद्रास में मजदूर संघ (Trade Union) स्थापित हुआ। १६१७ के पश्चात् जब कि भारत में कई स्थानों पर हड़तालें हुईं तो मजदूर-संघ जैसे किसी संघ या

संगठन की आवश्यकता प्रतीत हुई। आरम्भ के कुछ वर्षो में मज़दूर संघ ने अधिक उन्नति न की क्योंकि जिस कार्य के लिये मज़दूरों को संगठित किया जाता था, उस कार्य के समाप्त होने पर या तो वह संगठन छिन्न भिन्न हो जाता, नहीं तो वह कमज़ोर हो जाता था। १६२६ में Trade Union Act पास हुआ जिससे मजदूर संघ जैसी संगठित मज़दूरों की संस्थाओं को सहायता दी गई। इस विधान द्वारा इस प्रकार के संघों को कुछ सुविधायें दी गईं। इस विधान के फल-स्वरूप मज़दूर संघों की संस्था में एक बहुत अन्तर हुआ। उनकी संख्या बढ़गई संख्या तो बढ़ती गई परन्तु कोई भी ऐसी केन्द्रीय संस्था न थी जो सब अलग २ संघों को किसी कार्य में एक संगठित समूह बनाकर लगा सकेऔर मज़दूर संघ अधिक सफलता प्राप्त कर सके।

१६२० में एक अखिल भारतीय मज़दूर संघ (All India Trade Union Congress) स्थापित हुई जो अपनी बैठक प्रति साल करती रहती है। इस केन्द्रीय संस्था की लगभग २०० छोटी २ संस्थाएं सदस्य हैं और मजदूर सदस्यों की संख्या ३६०५५६ है।। व्यापारी संगठन और मजदूर संस्थाओं में जो बहुत शक्तिशाली हैं, वह हैं रेलवे कर्मचारियों की संस्था, डाकखाने के कर्मचारियों का संघ और लोहा और कोयले की खानों में काम करने वालों की संस्था। अब स्वतन्त्र भारत में जबकि प्रत्येक प्राणी को अपना दुःख प्रकट तथा दूर करने का अधिकार है व्यापारी संस्थाएं दिन पर दिन बढ़ती जा रही हैं और आज मज़दूरों के संघ ने इतनी शक्ति प्राप्त कर ली है कि वह अपनी उन्नति के लिये जो साधन सोचते हैं, उनको प्रत्येक साधन से सरमायेदारों से या सरकार से या अपनी कोशिश से पाने की शक्ति रखते हैं।

इस प्रकार की संस्थाओं से जो लाभ हैं उनको निम्न लिखित शब्दों में प्रकट किया है जा सकता है:—

(अ) मज़दूर अपने संगठन के लिये जात-पात का भेद भाव भूल जाते हैं और एक भाव होकर अपने काम में लग सकते हैं।

(ब) पूंजीपतियों के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठा सकते हैं और जो हानि उनको इस प्रकार हो रही हो उससे अपनी आय को बचा सकते हैं।

(स) केन्द्रीय संस्था भारतवर्ष के सब मज़दूरों की ओर से मज़दूरों का दुख सरकार को बता सकती है और उसके दूर करने के विधान पास करा सकती है।

(ख) अपनी मज़दूरी को बढ़ाने के लिए और नए मज़दूरों को काम दिलाने के लिये यह संस्थायें मिलकर काम कर सकती हैं।

(ग) अपनी मज़दूरी में से मासिक जमा करके एक ऐसा कोष स्थापित कर सकते हैं जिसे सब सदस्यों के लाभ के लिये प्रयोग कर सकें।

भारतीय ट्रेड यूनियनों की कठिनाइयां

अन्य देशों की अपेक्षा भारतवर्ष में मज़दूर संस्थाओं ने इतनी उन्नति नहीं की जितनी होनी चाहिए इस के बहुत से कारण हैं:—

(१) भारतीय श्रमिक एक स्थान पर बहुत दिनों तक काम करने के लिए नहीं ठहरता वह उसी समय शहरों में कारखानों में आता है, जब कि उसे गाँव में काम नहीं मिलता।

(२) मज़दूर शिक्षित न होने के कारण अपने अधिकारों को न समझते हैं, न पहचानते हैं। इस लिए उनको सङ्गठित होने में देर लगती है।

(३) मजदूर को सदस्य बनने में थोड़ा बहुत मासिक चन्दा देना पड़ता है जिसको वह अपनी न्यून वेतन के कारण कठिन समझता है।

(४) एक फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूरों में भिन्न २ भाषायें बोलने वाले होते हैं। वे भिन्न जाति और भिन्न स्थानों के होते हैं। इस लिए उन्हें सङ्गठित होने में देर लगती है।

मजदूरों की भरती करने वाला ठेकेदार भी कभी यह नहीं चाहता कि मजदूरों में सङ्गठन हो, क्योंकि उनके सङ्गठन से उसकी आमदनी कम हो जाती है।

(६) मजदूरों में शिक्षा न होने के कारण वह अपने आप में से अपना नेता नहीं चुन सकते। उन्हें बाहरी मनुष्य को अपना नेता मानना पड़ता है और ऐसा नेता उनके काम में पूरी सहानूभूति रक्खे या न रक्खे यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। यह कारण ऐसे हैं जो दूर किये जा सकते हैं और इस संगठन को शक्तिशाली बनाया जा सकता है।

मज़दूर विधान—१६२६ में Trade union Act पास हुआ। इसका प्रभाव मजदूर संस्थाओं पर बहुत पड़ा। इस विधान में इन संस्थाओं को कानूनी संस्था मान लिया गया। प्रत्येक संस्था को अपना नाम और उद्देश्य और तात्पर्य जिनको पूरा करने के लिये यह स्थापित हुआ है और अपने सदस्यों की लिस्ट रजिस्टर्ड करानी पड़ती है। प्रत्येक रजिस्टर्ड संस्था को अपने वार्षिक हिसाब का जांच करानी पड़ती है। संस्था के पदाधिकारियों में आधे आदमी ऐसे होने चाहियें जो किसी कारखाने में नौकर हों और सस्था का रुपया ऐसे कामों में व्यय किया जावे जिनसे सदस्यों की आर्थिक दशा की उन्नति हो। संस्था के किसी आदमी का कोई काम जो कि वह संस्था की उन्नति के लिए कर रहा हो कानून के विरुद्ध नहीं माना जायेगा।

इस कानून से इन संस्थाओं को यह भी अधिकार दिए गए हैं कि यदि वह चाहें तो अपने रुपये का कुछ भाग अपने सदस्यों के राजनैतिक भागों में व्यय कर सके।

इस कानून के पास होने के पश्चात मज़दूर संस्थाओं (Trade Unions) ने बहुत उन्नति की क्योंकि अब उनको विधान की सहायता मिल गई है और वह अपने विचारों को स्पष्ट करने के योग्य हो गये हैं।

श्रमिकों की कुशलता

कारखाने के मज़दूरों की काम करने की योग्यता के साधन (Welfare of industrial labour in India)—ऐसे काम जो कारखाने में काम करने वाले मज़दूरों के स्वास्थ्य को बनाए रखें और उन्हें कारखानों के खतरों से और बाहर के बुरे वातावरणों से बचाये रखें, उनके काम करने की योगता पर, और उनकी आर्थिक दशा पर अच्छा प्रभाव डालते हैं। ऐसे काम सरकार की ओर से भी किये जाते हैं और मज़दूर भी कर सकते हैं। उत्पत्ति कर्त्ता भी उनके सहायक हो सकते हैं। और अन्य संस्थाएं भी इस काम में भाग ले सकती हैं। जहां तक कारखाने के वातावरण का सम्बन्ध है सरकार को मज़दूरों की रक्षा के लिये और उनके स्वास्थ्य के लिये भिन्न २ प्रकार के नियम बनाने चाहियें। जैसे जिन मशीनों में खतरों में काम होता है वहां मज़दूरों को क्या २ आराम के साधन होने चाहियें। कारखाने ऐसे होने चाहियें जिसमें हवा आ ज़ा सके और बच्चों या औरतों से किस समय से किस समय तक कार्य लिया जाय और उनको उनकी मज़दूरी समय पर दी जाय और उनके स्वास्थ्य के क्या प्रबन्ध हों आदि। परन्तु बहुत से ऐसे काम हैं जो उनकी अच्छाई के लिए कारखाने के बाहर करने भी आवश्यक हैं। उदाहरण तथा विद्या का प्रबन्ध। कारखानों में ऐसे स्कूल होने

चाहियें जहां पर मज़दूरों के बच्चे और बड़े मज़दूर भी अपने काम से अवकाश पाकर शिक्षा प्राप्त कर सकें और अपनी योग्यता बढ़ा सकें और अपने अधिकारों को समझ सकें। इस श्रेणी के स्कूल टाटा जैसे कुछ व्यक्तियों ने खोले भी हैं। परन्तु इनकी आवश्यकता अब भी बहुत है और इनकी संख्या बहुत कम है। मज़दूरों के स्वास्थ्य के लिये कारखानों में डाक्टरों सहित अस्पताल होने चाहियें और वहां से मज़दूरों की बीमारी की दशा में दवा मुफ्त मिलनी चाहिये। यह कारखाने First Aid का काम भी अच्छा प्रकार से कर सकेंगे। औरतों के लिये काफी सुविधा होनी चाहिए। औरतों को बच्चे होने से कुछ पहले और कुछ दिन पश्चात् तक विश्राम करना चाहिये और उनका पूरा वेतन भी उन्हें मिलता रहे इसका ध्यान रखें। उनके उन छोटे बच्चों के लिये अच्छा दूध कारखानों में मिलना चाहिये। बम्बई, मद्रास और बिहार में इस ओर कारखाने वालों ने काफी ध्यान दिया है। मज़दूरों के मनोरंजन के लिये भी कारखानों की ओर से इस सम्बन्ध में भिन्न २ प्रकार के खेल सिनेमा, Magic lantern और भाषण इत्यादि का प्रबन्ध किया गया है। रहन सहन का भी प्रभाव स्वास्थ्य पर बहुत पड़ा है। इसलिये जहां तक सम्भव हो सके कारखानों में मजदूरों के रहने के लिये साफ और सुथरे Quarters होने चाहियें जिनमें पानी, रोशनी और सफ़ाई का अच्छा प्रबन्ध हो। जो जनता की सेवा करने वाली संस्थाएं हैं उनका भी यह कर्तव्य है कि वह मज़दूरों के जीवन को आनन्दमय बनाने का प्रयत्न करें। मज़दूरों को भी अपनी उन्नति के कामों में पूरा भाग लेना चाहिये। वह Co-operative stores खुद भी खोल सकते हैं और कारखाने वाले भी उनके लिये खोलकर उनको लाभ पहुचायें। ऐसे stores से उनको अन्न और अन्य

आवश्यक वस्तुएं अच्छी और सस्ती मिल सकेंगी। यही नहीं बल्कि समय पर stores से माल उधार ले सकते हैं। और दूसरे लोगों के फन्दे से बच सकते हैं।

श्रमिकों के मकान तथा निवासस्थान

कुछ उद्योगी शहरों को छोड़कर मजदूरों के रहने की दशा बहुत शोचनीय है। उनके मकानों में काफी भीड़ होती है। अर्थात अधिक मनुष्य एक मकान में रहते हैं। रोशनी का काफी प्रबन्ध नहीं होता जिसके कारण मजदूरों का स्वास्थ्य गिर जाता है और उनमें बहुत प्रकार की बीमारियां पैदा हो जाती हैं। कानपुर, नागपुर, अहमदाबाद जैसे शहरों में मजदूरों को आस पास के गावों मे बसाने का प्रयत्न किया जा रहा है। कारखाने वाले या सरकार भूमि लेकर मकान बनवायें और उचित किराये पर दें। मजदूरों की बस्तियों को देखने से पता चलता है कि उनके रहने सहने का प्रबन्ध अभी ठीक नहीं है। स्वास्थ्य के नष्ट होने से मजदूर अन्य प्रकार की कुरीतियाँ करने लगते हैं जिनके कारण बहुत सा रुपया अस्पताल में लगाना पड़ता है और खराब हवा में रहने से मृत्यु भी अधिक होती हैं। कानपुर, अहमदाबाद और जमशेदपुर में कारखाने वालों ने इस ओर अधिक ध्यान दिया है। उन्हों ने मजदूरों को स्वस्थ्य रखने के लिये Quarters बनाने की कोशिश की है। श्रम सभा (Labour committee) ने अपनी Report में इस समस्या को हल करने के लिये योजना दे दी है।

उदाहरण—Land Acquisition Act (पृथ्वी प्राप्त करने का कानून) —उसकी सहायता से कारखाने वालों को यह सुविधाएं हैं कि वह भूसरलता से मि ले सकें और उस पर

quarters बना सकें। हर एक प्रांत की सरकार को अपने प्रांत में इस बात की देख भाल करनी चाहिये कि वहां पर मजदूरों के लिये क्या २ कठिनाइयां हैं। उनको कारखाने वालों की सहायता के हेतु प्रयत्न करने चाहियें जिससे मकान समस्या हल हो जाय।

सरकार को ऐसे नियम बनाने चाहियें जिनमें प्रत्येक मनुष्य को एक कम से कम स्थान मिले। मकान को हवादार रखने के लिए क्या बातें होनी चाहियें, रोशनी का क्या प्रबन्ध होना चाहिए और गन्दे पानी निकालने का क्या प्रबन्ध होना चाहिये। किसी मनुष्य को इन नियमों के विरुद्ध काम नहीं करना चाहिए। जिन शहरों में improvement trust हैं उनका पहला कार्य मकान बनाने का होना चाहिए। सुधार सभा (Co-operative societies) पृथ्वी लेने के लिये और मकान बनाने के लिए बननी चाहिए। हर एक Municipal Board को चाहिए कि स्वास्थ्य से और सफाई से सम्बन्ध रखने वाले अच्छे नियमानुसार बेकार जगह इधर उधर हो या खाली जगह मिल सकती है वहां मजदूरों के लिए quarters बनाये।

भारत का श्रम सम्बन्धी विधान—१८८१ से पूर्व तो इस प्रकार का विधान बनाया जाता था जो धनोत्पादकों के अनुकूल हो और उनको श्रमिकों से आर्थिक काम लेने में सहायता मिले। परन्तु इसके पश्चात श्रमिकों की सहायता के लिये विधान बनाया गया।

(अ) Factory Act of १८८१—इस नियम के अनुसार सात वर्ष के बच्चों को factory में काम करने से मना किया गया। सात और बारह वर्ष तक के बच्चों को नौ घण्टे तक काम करना आवश्यक है। प्रतिमास बच्चों के लिये चार छुट्टियां

रखी। परन्तु इस विधान से स्त्रियों को और बच्चों को कोई सहायता नहीं मिली। यह विधान उन कारखानों पर लागू हुआ जिसमें कम से कम सौ आदमी कार्य करते हों और किसी Power अर्थात् शक्ति से काम लिया जाता हो।

(ब) Factory Act of 1911—यह Act सब कारखानों पर लागू होता था। बच्चों का काम करने का समय छः घण्टे कर दिया गया और उन से रात में काम लेना बन्द कर दिया गया। पुरुषों से १२ घण्टे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता था।

(स) Factory Act of 1922—इसमें यह कहा गया कि १२ वर्ष से छोटा बालक मजदूरी नहीं कर सकता और छः घण्टे काम करने का समय नियत कर दिया गया। बच्चों और स्त्रियों से किसी कारखाने में प्रातःकाल ५॥ से पहले और सायंकाल ७ बजे बाद काम नहीं लिया जाय। बड़े मनुष्यों से सप्ताह में ४० घण्टे काम लेना तय किया गया और बीच में छुट्टी का भी प्रबन्ध कर दिया। कारखानों का प्रबन्ध और अच्छा बना दिया गया।'

(क) Factory Act 1934—(१) बच्चों की आयु १५ और १७ मानी गई। (२) ग्यारह घण्टे का दिन और ६० घण्टे का सप्ताह ऐसे कारखानों पर लगे जो पूरे साल न चलते हों, परन्तु पूरे साल चलने वाले कारखानों में दस घण्टे का दिन, ५४ घण्टे का सप्ताह किया गया। और बच्चों की उन्नति के लिये कुछ नियम बनाये गये। प्रान्त की सरकार को यह अधिकार दिये गये कि वह बच्चों के factory में भरती होने से पहले उनके स्वास्थ्य का certifcate दे सकें।

(ख) Workmen Compensatian Act of 1923—इस विधान से यह नियत किया गया कि मजदूरों को अपने काम

में अगर कोई शरीर की हानि हो, उनको उसका कुछ रुपया मिलना चाहिये। कुछ प्रकार के रोगों के लिये भी मजदूरों को इलाज के लिये रुपया देना नियत किया गया। यह Act रेल ट्राम, जहाज, सड़क और पुल पर काम करने वालों पर भी लागू होता है। जो रकम मजदूरों को इस विधान के अनुसार दी जायगी वह उसके मासिक वेतन के अनुसार होगी। उदाहरण—अगर कोई मजदूर १०) या इससे कम रुपये पाता है तो उसके मरने पर उसके सम्बन्धियों को ५००) देना और यदि कोई शारीरिक हानि हो जाय और वह काम करने के योग्य न रह सके तो सात सौ रुपये देना नियत किया गया।

(ग) Payment of wages Act 1936—इस Act में वेतन देने के नियम बनाये गये और जो बहुत प्रकार की कटौती मजदूरी से कटती थी बन्द की गई। मजदूरी १० तारीख तक देनी मंजूर कर दी गई और जिस factory में हजार या हजार से अधिक आदमी काम करते हों वहाँ पर मजदूरी का देना हर दसवें दिन रखा गया।

१६३६–४५ के युद्ध के पश्चात्—इस युद्ध के पश्चात् श्रमिकों और मिलमालिकों के परस्पर झगड़े बढ़ गये। मुद्रा का फैलाव, जीवन की आवश्यकवस्तुओं का अभाव तथा उनके मूल्य में बहुत अधिक वृद्धि तथा श्रमिकों में जाग्रति इस परिस्थिति के मुख्य कारण थे। इन बढ़ते हुये झगड़ों को कम करने के लिये सरकार ने १६४७ में Industrial Disputes Act पास किया जिसके अनुसार इस प्रकार के झगड़ों का निवारण करने के लिये एक सालसी बोर्ड का नियुक्त किया जाना निश्चित हुआ। इस ऐक्ट का एक उद्देश्य इस प्रकार के झगड़ों का कम करना भी था। श्रम कौनफ्रेंसों तथा श्रमिक कमेटियों द्वारा भी इन

झगड़ों को कम करने का प्रयत्न किया गया । फिर १६४८ में State Insurance Corporation का उद्घाटन हुआ । यह योजना सब स्थाई कारखानों पर लागू होती है । इसके द्वारा बीमारी, सन्तान उत्पन्न होने के सम्बन्ध, काम के योग्य न रहने, डाक्टरी तथा बच्चों के सम्बन्ध में सहायता (Sickness benefit, maternity benefit, disablement benefit, dependant's benefit and medical benefit), का प्रबन्ध किया गया । इस प्रकार की सहायता ३६५ दिनों में ५६ दिनों तक लगातार की जा सकती है । औसत मजदूरी का आधा रुपया सहायता के रूप में मिलता है । सन्तान उत्पन्न होने के समय स्त्री को १२ हफ्ते तक बारह आने प्रति दिन के हिसाब से सहायता दी जायगी ।

श्री जगजीवनराम श्रम मन्त्री ने श्रमिकों की कुशलता के लिये एक पांच साला योजना बनाई है । इस योजना द्वारा सब प्रकार से श्रमिकों की दशा सुधारने का प्रयत्न किया जायेगा ।

अभ्यास के प्रश्न

१. 'श्रम का धनोत्पत्ति में महत्वपूर्ण स्थान है' स्पष्ट कीजिये ।

'Labour is very essêntial for production' Explain.

२. भारत के श्रमिक के कम कुशल तथा कम काम करने के कारणों को लिखिये । इन की काम करने की क्षमता को किस प्रकार सुधारा जा सकता है ?

What are causes of low efficiency of Indian labour ? How can this efficiency be increased?

३. श्रम-सम्बन्धी विधान पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिये।

Write a critical note on labour legislation in India.

४. निम्नलिखित को पूर्ण रूप से समझाइये।

(अ) श्रमिकों की रहने की समस्या

(ब) श्रमिकों के जीवन को मनोरंजक बनाने की समस्या

(स) हड़ताल अथवा मिल बन्द कर देना, इनके कारण व परिणाम सहित।

Explain the following:—

(i) Housing problem of labour.

(ii) Labour welfare work.

(iii) Strike and lockout, their causes an consequences.

: ६ :

यातायात

भारतवर्ष एक विशाल भूखण्ड है। यहां की जन-संख्या समस्त संसार की जन-संख्या का लगभग $\frac{1}{5}$ भाग है। परन्तु इसके अतिरिक्त हमारे देश में सुगम, श्रेष्ठ तथा आधुनिक यातायात के साधनों का बहुत अभाव है। यदि अन्य देशों से भारतवर्ष की तुलना की जाय तो हमें ज्ञात होगा कि यातायात के साधनों की भारतवर्ष में बड़ी असन्तोषजनक दशा है। जापान में प्रति वर्ग मील क्षेत्रफल में ३ मील सड़कें हैं परन्तु भारतवर्ष में प्रति वर्ग मील क्षेत्रफल में केवल ०.२ मील हैं। यदि जन-संख्या के अनुसार लें तो प्रति एक लाख मनुष्यों के साथ आस्ट्रेलिया में ६००० मील सड़कें है परन्तु भारतवर्ष में उतनी ही जन-संख्या के लिये केवल २०० मील सड़कें हैं।

यातायात के साधनों का पर्याप्त मात्रा में होना किसी देश की आर्थिक उन्नति के लिये अनिवार्य है। देश में किसी भी प्रकार की व्यवस्था हो, यातायात के साधन हर समय हमारी सहायता करते हैं। अकाल के समय यह खाद्य पदार्थों को शीघ्रता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने में हमारी सहायता करते हैं। युद्ध के समय भी यह युद्ध में विजय प्राप्त करने में सहायक होते हैं। वास्तव में यातायात के साधनों की

की मंडी में ले जा सकते हैं और इस प्रकार उनके माल का तुलना हम शरीर के भिन्न भागों में रक्त ले जाने वाली नसों (Arteries and Veins) से कर सकते हैं। जिस प्रकार शरीर के स्वस्थ्य तथा शक्तिशाली होने के लिये शरीर में रक्त का प्रवाह ठीक होना चाहिये इसी प्रकार देश की आर्थिक व्यवस्था को बनाये रखने और देश को एक समृद्धिशाली देश बनाने में यातायात के साधनों का प्रधान स्थान है। पुराने समय में हमारे देश में भिन्न-भिन्न प्रकार के यातायात के साधनों ने बहुत उन्नति करली थी। हमारे देश का अपना जहाजी बेड़ा था। हमारे देश के जहाज दूर-दूर देशों तक जाते थे। सड़कों की दशा भी अच्छी थी।

यातायात के साधनों का महत्व—यह हम अभी कह चुके हैं कि आवागमन और खबरों के साधनों का देश की आर्थिक दशा पर बहुत बड़ा असर पड़ता है। किसी देश की आर्थिक उन्नति के लिये ऐसे सब साधनों का होना अत्यन्त आवश्यक है।

एक लेखक ने कहा है, "If agriculture and industry are the body and bones of a natural organism, communications are its nerves." देश के वह भाग जो एकान्त-जीवन व्यतीत करते हैं, और देश के साधन से बिलकुल अपरचित, रहते हैं वे यातायात के होने से सब वस्तुओं से लाभ उठा सकते हैं। रेल और तारों की सहायता से बाहर जा सकते हैं और संसार की बातें जान सकते हैं। अब ऐसे स्थान बहुत कम हैं जो अपनी जरूरत खुद ही पूरा कर लेते हैं। अर्थात् उनकी आवश्यकताओं में अब बहुत सी वस्तुएं ऐसी हैं जो कि अन्य मनुष्यों ने तैयार की हैं। गांव और नगर के जीवन में हार्दिक सम्बन्ध हो गये हैं। नये नये शहर और कस्बे बस रहे हैं। देहाती अपनी वस्तु को लाभ के साथ आसपास

बाजार बड़ा होता जा रहा है। उनका माल देश के हर भाग में जहां पर अच्छे पैसे मिल सकते हों जा सकता है और हर देश अपनी प्राकृतिक दौलत का लाभ उठा सकता है। यातायात कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार यातायात के साधन की उन्नति होने से छोटे रूप में बहुत से कारखाने खोले जा सकते हैं। Preservation लोगों को वर्तमानकाल में वस्तुओं को देर तक अच्छी दशा में रखने का तरीका ज्ञात हो गया है। भांति २ के फल और सबजी की खेती गांव में करनी आसान हो गई है क्योंकि ये वस्तु काफ़ी मात्रा में बड़े २ शहरों में ले जाई जा सकती हैं और अच्छी कीमत पर बेची जाती हैं। रेल और सड़कों की उन्नति से भारत अपने जङ्गलों की दौलत से काफी लाभ उठा सकता है। माल के जाने-आने में आसानी हो जाने से वस्तु का मूल्य अधिक तेज न रहेगा क्योंकि खरीदारों में और बेचने वालों में आपस में संघर्ष होगा जिसके कारण कीमत वस्तु की लागत से अधिक ऊपर न रहेगी और साधारण जनता को इससे लाभ होगा।

२. यातायात के साधनों की वर्तमान दशा—दुनियां के देशों में भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहां पर रेल प्रसार में काफी उन्नति नहीं हुई। देश की आवश्यकता और लम्बाई चौड़ाई के अनुसार रेल और सड़कों की बहुत कमी है। देश का देहाती भाग ऐसी रेल और सड़कों से दूर है। उन लोगों को कच्चे मार्ग तय करने के पश्चात् रेल या पक्की सड़क तक पहुँचना पड़ता है। भारतवर्ष में इस समय चार ही बड़ी सड़कें हैं। एक खैबर से कलकत्ते तक, दूसरी कलकत्ते से मद्रास तक, तीसरी बम्बई से मद्रास तक और चौथी बम्बई से देहली तक। पक्की सड़कों की कुल लम्बाई लगभग ८२,२८४ मील है। और कच्ची सड़कों की कुल लम्बाई लगभग २२४,४३३ मील है।

इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि पक्की सड़कों की कितनी कमी है और कितना भाग ऐसा है जहां पर रेलें बिल्कुल नहीं पहुँची हैं। ऐसी छोटी २ पक्की सड़कों की अधिक आवश्यकता है जो देहातों को बड़ी सड़कों से और पास के रेलवे स्टेशनों से मिला सकें। वर्षा ऋतु में बहुत से गांव पानी से घिर जाने के कारण बिलकुल संसार से अलग हो जाते हैं। युद्ध के बाद खेती की स्कीम में इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि काफ़ी सड़कें देश में बनाई जायें। पिछले दस वर्षों में बहुत सड़कें रुपये की कमी से और किसी कमी के कारण ख़राब हो गई हैं क्योंकि उनकी मरम्मत समय पर न की जा सकी। Municipal Board और District Board के आधीन जो सड़कें हैं उनकी दशा बहुत ही बुरी रही है। ये सड़कें बनते-बनते ही खराब हो लेती हैं। परन्तु अब इसका प्रबन्ध Government ने अपने हाथ में ले लिया है और अब आशा है कि सड़कें ठीक हो जायंगी। कुछ प्राकृतिक कारण हैं जिनसे काफ़ी रेल सड़कें न फैल सकीं। नदी-नाले के ऊपर भी काफी व्यय होता है। मजबूत सड़कें बनाने के लिऐ काफी सामान नहीं मिलता और अब trucks के आने-जाने के लिये सड़कों को किसी ढंग से बनवाना आवश्यक होगा। देश की आवश्यकता को देखते हुए हम कह सकते हैं कि रेल और सड़कें और खबरों के पहुँचाने के रास्ते भी अभी कम हैं। उनको शीघ्र ही पूरा करना देश की आर्थिक दशा के लिये जरूरी है।

यातायात की उन्नति के साधन

वर्तमान दशा को ठीक करने के लिए और उससे काम लेने के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं:—

(१) वर्तमान सड़कों को अच्छी मरम्मत कराके ठीक किया जावे।

(२) छोटी २ पक्की सड़कें ऐसी बनाई जायें जो गांव को पास की सड़कों से और रेलवे स्टेशनों से मिला सकें।

(३) देहाती पक्की सड़कें बनाने के लिए जमीदारों और कृषकों पर कुछ ऐसे Tax लगाये जावें जिससे यह काम जल्दी आरम्भ किया जा सके।

(४) मोटर Transport लम्बे सफर का माल ले जाने के लिये बन्द कर दिया जाए क्योंकि इनके कारण बड़ी २ सड़कें ज्यादा खराब हो जाती हैं। यह काम रेलों से अच्छा लिया जा सकता है।

(५) सड़कों के बनाने की अपेक्षा रेलों पर ज्यादा खर्च होता है। इसीलिए वर्तमान समय में सड़कों की उन्नति पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

(६) वर्तमान समय में आवागमन में रेलों को कम किराया लेना चाहिये।

(७) रेलवे स्टेशन पर माल को मंगाने और भेजने में काफ़ी आसानी होनी चाहिये।

रेलें—भारतवर्ष में विभाजन के पश्चात् लगभग ३३८६५ मील रेलवे लाइने हैं। सर्व प्रथम २२ मील लम्बी रेलवे लाइन १८५३ ई० में बम्बई को कल्यान से मिलाने के लिये बनाई गई थी। भारतवर्ष में रेलें बहुत कम हैं जब कि अन्य देशों में भारतवर्ष से कहीं अधिक लम्बाई में रेल की लाइनें हैं।

निम्न अंकों से भारत की दशा का पूर्ण पता चलता है।

प्रति १०० वर्ग मील में रेल की लाइन की लम्बाई

अमेरिका	६.६	मील
अफ्रीका	२.४	,,
रूस	१.५	,,

कनेडा	१.०	,,
बैलजिया	४०.०	,,
ब्रिटेन	२०.०	,,
जर्मनी	२०.०	,,
भारतवर्ष	२.२	,,

भारतवर्ष की रेलों की चाल भी बहुत मन्द है। यहां डाक गाड़ी भी केवल ४५ मील प्रति घन्टा चलती है। परन्तु अमेरिका और इङ्गलैण्ड में इन की चाल ७० और ८० मील प्रति घंटा है। यहां माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने का प्रबन्ध भी उचित नहीं है। रेल की किराये की नीति भी देश के उद्योग के अनुकूल नहीं है। सब रेल की कम्पनियां एक दर मे किराया नहीं लेतीं। भारत के व्यापार तथा शिल्प की उन्नति को दृष्टि में रख कर इन की किराये की नीति निश्चित नहीं की जाती। वर्तमान नीति विदेशों से माल की आयात के अनुकूल है।

प्रति एक लाख जन-संख्या रेल की लम्बाई

कनेडा	४६४ मील	
दक्षिणी अफ्रीका	१६४	,,
अमेरिका	२२५	,,
ब्रिटेन	४६	,,
भारतवर्ष	११	,,

इन सब बातों से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में रेलवे लाइनों की बहुत कमी है और इनकी बहुत अधिक उन्नति होनी चाहिये।

सड़कें—भारतवर्ष में लगभग ६५००० मील पक्की सड़कें हैं और लगभग दो लाख मील कच्ची सड़कें हैं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहां लगभग ८७ प्रतिशत लोग गांव

में रहते हैं सड़कें ही अधिक उपयोगी यातायात का साधन बन सकती हैं। रेल देश के प्रत्येक भाग और प्रत्येक गांव में नहीं पहुँच सकती परन्तु सड़कें पहुँच सकती हैं। सड़कों द्वारा माल को गोदाम से लाद कर ठीक उसी स्थान पर ले जाया जा सकता है जहां उसकी आवश्यकता है परन्तु रेलों में यह बात सम्भव नहीं है। भारतवर्ष के गांव में बैलगाड़ी ही अभी तक यातायात का मुख्य साधन है। यह बैल गाड़ियां केवल सड़कों पर ही चल सकती हैं रेल की सड़कों पर नहीं। पक्की सड़कों द्वारा माल मोटरों में भेजा जा सकता है। यदि गांव में पक्की सड़कों का जाल बिछा दिया जाय तो गांव की उपज मोटरों द्वारा मंडियों में आ सकती है। बैलगाड़ी द्वारा किराया दो आने प्रति मील पड़ता है परन्तु मोटरों द्वारा इस से बहुत कम और इस प्रकार बैल गाड़ी प्रयोग करने वालों को ५५ करोड़ रुपये की वार्षिक बचत हो जायगी। पक्की सड़कें भारत की कृषि और उद्योग की बहुत सहायता कर सकती है। इन की उचित ढंग से उन्नति की जानी चाहिये। भारत की सड़कों में जो अभाव हैं उनका वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

भारत की रेलों के लाभ—सन् १८५४ से भारतवर्ष में रेलों का प्रचार चल रहा है और आज तक यह जाल पर्याप्त मात्रा में फैल चुका है। देश की आवश्यकता को देखते हुए अब भी रेलों की उन्नति की बहुत आवश्यकता है क्योंकि आवागमन के साधनों में उन्नति होने से देश के प्रत्येक काम में उन्नति होती है। देश राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक उपायों से प्रति दिन उन्नति करता है। अब देश में राष्ट्रीय सरकार स्थापित होने से यह आशा की जाती है कि रेलों व सड़कों में पर्याप्त उन्नति होगी जैसे कि लड़ाई के बाद की

आर्थिक योजना (Post-war Reconstruction Scheme) में वर्णन किया गया है। आज तक रेलों ने जो आर्थिक या सामाजिक लाभ देश को पहुँचाए हैं उनका वर्णन नीचे किया जाता है :—

केन्द्रीय सरकार को लाभ—केन्द्रीय सरकार साधारण गाँव से लेकर बड़े २ शहरों तक फैली हुई है। भारत का विस्तार भी बहुत ज्यादा है। रेलों की सहायता के बिना सब प्रान्तों के हिस्सों में सत्ता स्थापित रखना असम्भव हो जाता है। देश की सरकार अपने कार्य को तभी अच्छी प्रकार पूरा कर सकती है जब कि आवागमन के साधन अच्छे हों। लार्ड डलहौज़ी ने अंग्रेजी सरकार को भारत में सफल बनाने के लिये ही रेलें स्थापित करने का प्रश्न उठाया था। पर उसके उपरान्त कई और लाभ भी दृष्टि-गोचर हुए हैं।

(२) देश की आन्तरिक और बाह्य रक्षा के लिये रेलों ने बहुत अच्छा काम किया और आगे कर सकती हैं। देश के जिस भाग में अशान्ति विद्रोह हो वहाँ तुरन्त ही फौजें भेज कर शान्ति स्थापित की जा सकती है और प्रभावशाली व्यक्ति वहाँ जाकर लोगों को समझा सकते हैं। बाह्य शत्रु के विरुद्ध रेलें फौज व खाद्य सामग्री जल्दी एक जगह से दूसरी जगह ले जा सकती हैं। पिछली लड़ाई में और स्वतन्त्रता के बाद के झगड़ों में रेलों ने जो काम किया वह सब जानते हैं। बाह्य आक्रमण से बचाने या और किसी तात्पर्य से, देश को सङ्गठित करना, सरल हो गया है।

(३) देश में अकाल के रोकने में रेलें बहुत लाभदायक सिद्ध हुई हैं। किसी समय में यह दशा थी कि एक वस्तु एक हिस्से में सड़ा करती थी और दूसरे भाग में मनुष्य उसके लिये तरसते थे किन्तु अब रेलें देश की उपज को एक भाग से दूसरे

कमी के भाग में अत्यन्त शीघ्रता से पहुँचा देती हैं। अब देश में अकाल कम पड़ता है।

(४) रेलों ने देश को प्रत्येक काम में उन्नति करने का अवसर दिया। सब वस्तुओं का बाजार (Market) बढ़ गया और बड़े पैमाने पर सामान पैदा करना आवश्यक समझा गया। उत्पादन में भी उन्नति हुई। जब मांग बढ़ी, सप्लाई को बढ़ाना पड़ा और देश उन्नति के पथ पर अग्रसर होने के लिये तत्पर हुआ।

(५) देश के भिन्न २ भागों में एक ही प्रकार की वस्तुओं के मूल्य में ज्यादा भेद नहीं रहा क्योंकि अगर वस्तुओं की कीमत कहीं पर अधिक है तो वह वस्तुएँ रेलों द्वारा सस्ते दामों में वहां पहुँचाई जाती हैं।

(६) रेलों की उन्नति से तरह-तरह के कारखानों में उन्नति हुई, व्यापार बढ़ा, जिसके कारण बहुत से लोगों को मज़दूरी मिली। इस प्रकार बेकारी की समस्या के हल होने में सहायता मिली।

(७) देश की जन-संख्या को ठीक प्रकार विभाजित करने में रेलें लाभदायक सिद्ध हुईं। आजकल हम देखते हैं कि पंजाब से आये हुए लोगों को सरकार ऐसी जगहों पर बसा रही है जहां जन-संख्या कम है। लोग घनी आबादियों से निकल कर खुली हुई जगहों में चले गए और वहीं पर सदैव के लिए रहने लगे।

(८) आन्तरिक और बाह्य व्यापार में रेलों से बहुत उन्नति हुई है। आन्तरिक व्यापार में माल देश के किसी भाग से बड़ी आसानी से फैलाया जाता है और बाहर भेजे जाने वाला माल किसी भाग से बन्दरगाह तक पहुँचाया और बन्दरगाह से लाया जा सकता है।

(६) रेलों ने कारखानों की उन्नति की। लोहा कोयला और कच्चा माल देश के भिन्न २ भागों से कारखानों में लाया जा सकता है और कारखानों में बना हुआ माल देश के प्रत्येक भाग में पहुंचाया जा सकता है।

(१०) रेलों ने इंजीयिरिंग के काम में बहुत उन्नति की। रेलों ने हर वस्तु के बाजार को बढ़ाया जिसके कारण भिन्न २ प्रकार की मशीनें वस्तुएँ बनाने के लिये पर्याप्त मात्रा में तैयार हुईं। रेलों में भी खूब सामान खर्च होने लगा। जैसे कोयला, स्टील, कल-पुर्जे इत्यादि और इसने देश को कल-पुर्जे बनाने में प्रेरित किया।

(११) डाकघर के कामों में रेलों ने बहुत सहायता की। रेलों के ही कारण हम आज एक पत्र देश के ही नहीं बल्कि संसार के किसी भाग में भेज सकते हैं।

(१२) रेलों के चलने से पहले भारतवर्ष के वनों की सम्पत्ति छुपी पड़ी थी और इस सम्पत्ति से वर्षों तक कोई लाभ नहीं उठाया गया। किन्तु अब बहुत से लकड़ी के कारखाने खुल गये हैं। वन-विभाग खुल गया है जो जंगलों की देख-भाल करता है। रेलें स्वयं भी इन वनों की लकड़ी से पर्याप्त लाभ उठाती हैं।

(१३) अब रेलों द्वारा व्यापारिक, और कृषक, स्वास्थ्य, सफाई के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रोपैगेण्डा किया गया है और हर प्रकार की प्रदर्शनीय गाड़ियां देश में घूमती रहती हैं और मनुष्यों को नई २ वस्तुओं, उनके प्रयोग और लाभ से परिचित कराती रहती हैं।

(१४) सरकार को रेलों से दो प्रकार लाभ होता है एक तो सरकार रेलों की आय में भाग लेती है, दूसरे देश में रेलों के कारण जो व्यापारिक, सामाजिक और आर्थिक उन्नति होती

है उस से सरकार के कोष में वृद्धि होती है। आय-कर द्वारा काफ़ी रुपया आता है।

(१५) गाड़ियों में क्योंकि सब प्रकार के लोग बिना जाति-पाति के भेद-भाव के सफर करते हैं इसलिये जाति-पाति का भेद तोड़ने में भी सहायता प्राप्त होती है। आपस में मेल-जोल बढ़ता है।

(१६) रेलों से मनुष्य दूर २ के देशों के लोगों से सम्पर्क स्थापित करने में सफल हुए जिससे उनकी जानकारी और सामाजिक सम्बन्ध बड़े होते चले गये। रेलों ने मनुष्य जीवन को बहुत ऊंचे स्थान पर पहुँचा दिया। जो यात्रा किसी समय महीनों व सालों में होती थी वह अब दिनों और घंटों में समाप्त हो जाती है।

रेलों का ग्रामीण जीवन पर प्रभाव—अब हमको यह भी देखना है कि रेलों से भारत के ग्रामीण जीवन पर क्या आर्थिक प्रभाव पड़ा है :—

(१) रेलों ने भारत की ग्राम-उपज का बाज़ार बहुत बढ़ा दिया है। कच्चा माल कारखानों, देश के हर भागों व अन्य देशों को भी भेजा जा सकता है। इसके अतिरिक्त उन प्राकृतिक शक्तियों का प्रयोग जो पहले ग्रामों में नहीं होता था अब किया जा सकता है। उदाहरणतः बिजली, कोयला इत्यादि। रेलों से पहले ग्रामीण-जीवन किसी जंगल के जीवन से अच्छा न था। मनुष्यों को बाहर की दुनियां का कोई पता न था। वे अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिये थोड़ा सा सामान पैदा किया करते थे परन्तु अब रेलों ने इनके एक-मात्र (अलगाये हुये) जीवन को तोड़ दिया और उनको व्यापारिक जानकारी द्वारा देश के सब भागों और अन्य देशों से मिला दिया है जिससे वे ज्यादा से ज्यादा पैदा करके देश की सम्पत्ति को बढ़ाते हैं।

उनकी अपनी भी आर्थिक दशा अच्छी हो जाती है।

(२) कृषि वाली वस्तुओं के भाव अब देश के हर भाग में बराबर से ही रहते हैं। यह भाग पहले से बने हुए हैं। रेलों द्वारा हर प्रकार की वस्तु सस्ते भाग से महंगे भाग में जल्दी पहुँचाई जा सकती है। इससे ग्राम वालों की आर्थिक दशा पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

(३) रेलों से पहले देहातियों को बाहर जाकर काम करने का समय नहीं मिलता था। अब वह अपने उस समय में जब उन्हें ग्राम में काम न हो रेलों द्वारा बाहर जाकर कारखानों में काम कर सकते हैं। रेलों के कारण मजदूरों को अब एक जगह से दूसरी जगह अपनी जीविका कमाने के लिये बड़ी आसानी हो गई है।

(४) वस्तुओं के व्यापारी अब ग्राम में पहुँच जाते हैं और वहीं पर विक्रय कर लेते हैं। पहले जैसा तरीका नहीं रहा, जब कि लोग वस्तु से वस्तु बदलते थे। अब रुपये का पर्याप्त प्रयोग होता है।

(५) भांति भांति के औजार जिनसे खेती बाड़ी की जाती है, ग्रामों में रेलों द्वारा पहुँच गये हैं। सारे मनुष्य अच्छे बीज अन्य देशों से मंगाकर प्रयोग करते हैं।

(६) छोटी छोटी दस्तकारियां रेलों के होने से उन्नति कर सकती हैं क्योंकि उनका माल अन्य जगहों पर भेजा जा सकता है।

यातायात सम्बन्धी समस्याएँ—

१. रेलों और सड़कों का मुक़ाबला—यों तो कहने को भारतवर्ष में लगभग तीन लाख मील लम्बाई के बराबर सड़कें हैं। परन्तु इन में पक्की सड़कें बहुत कम हैं। देश में चार बड़ी सड़कें हैं जो भिन्न भिन्न भागों को परस्पर मिलाती हैं। इन

सड़कों की लम्बाई लगभग पाँच हज़ार मील है। कुल पक्की सड़कें भारतवर्ष में पिच्चासी हज़ार सात सौ बानवें मील हैं। परन्तु यह सब सड़कें अधिकतर रेलों के समानान्तर चलती हैं। चारों बड़ी सड़कें भी रेलों के समानान्तर देश में उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम को फैली हुई हैं। इस के कारण सड़कों तथा रेलों में संघर्ष अधिक बढ़ गया है। सड़कों पर मोटरों द्वारा अधिक यातायात बढ़ गया है और माल भी बहुत अधिक मात्रा में आने जाने लगा है। इस से रेलों को बहुत हानि पहुँची। मोटरों में सामान लाने तथा पहुँचाने में और यात्रियों के आने जाने में बहुत सी सुविधाएँ हैं। पहले तो मोटर यात्री को उसके घर के दरवाज़े पर उतार देती है। दूसरे समय भी अधिक नहीं लगता, व्यय भी कम होता है, क्योंकि पहले मोटरों में इतना अधिक व्यय न था। इसके विपरीत रेलों में यह सुविधायें नहीं हैं।

इस संघर्ष को कम करने और रेलों की हानि को रोकने के लिये सन् १९३२ में दो अफ़सर मिस्टर 'माइकल' भारतीय सरकार के सड़कों के इन्जिनियर और मिस्टर "कर्कनैस" रेलवे बोर्ड के सदस्य इस बात की छान बीन के लिये नियुक्त किये गये। उन्हों ने सन् १९३३ में अपनी रिपोर्ट रक्खी जिसके अनुसार मोटरों के यातायात को कन्ट्रोल करने का परामर्श किया गया। उन्हों ने इस बात का भी परामर्श किया कि एक (Central Advisory Board of Communications) स्थापित किया जाय। सन् १९३५ मे एक ट्रान्सपोर्ट एडवाईजरी कौनसिल नियुक्त की गई जिसके सदस्य प्रान्तों के यातायात के मन्त्री थे। एक यातायात का नया विभाग भी स्थापित किया गया। इस विभाग के आधीन रेल की सड़कें इत्यादि हुईं। सन् १९३७ में (Wedge-Wood) कमैटी ने भी इस बात पर

सोच विचार किया। उसने भी रेलों को इस हानि से बचाने का विचार किया और साथ साथ मोटरों के यातायात पर पाबन्दी लगा देने की राय दी। सन १९३९ में (Motor Vehicles Act) पास हुआ। इसका लक्ष्य रेल और सड़कों के मुक़ाबले को समाप्त करना था और ऐसी नीति के अनुसार कार्य करना था जो दोनों के लिये लाभप्रद सिद्ध हो। प्रत्येक प्रान्त में (Regional Transport Authorities) को भी स्थापित किया गया जो लाइसैन्स और परमिट इत्यादि के द्वारा मोटर ट्रान्सपोर्ट को देखरेख करती थीं। मोटरों की एक विशेष भाग में यात्रियों को ले जाने और लाने की गति पर पाबन्दी लगा दी गई और बोझ इत्यादि के नियम बना दिये गये। इसके अनुसार मोटरें नौ घंटे प्रतिदिन से अधिक काम नहीं कर सकती थीं। १९४३ के पश्चात् सब मोटरों के लिये बीमा कराना अनिवार्य कर दिया गया। इस प्रकार रेलों के हित को सुरक्षित रक्खा गया।

रेलों तथा सड़कों का संघर्ष

संघर्ष ही जीवन है। यदि संघर्ष न हो तो जीवन निरर्थक है। परन्तु हम इस तथ्य को प्रत्येक स्थान पर प्रयुक्त नहीं कर सकते। यदि किसी देश के यातायात के साधनों में Free Competition रहा तो State के द्वारा उपस्थित किये गये साधनों को हानि उठानी पड़ेगी। हम भारत में देखते हैं कि रेलों पर आठ सौ करोड़ रुपये से अधिक की पूंजी लगी हुई है। यदि यहाँ हमने रेलों और मोटरों के संघर्ष को स्वतंत्र रूप से चलने दिया तो State को हानि के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। पहले ही मोटरों के द्वारा कम किराया लिया जाता था। संघर्ष में आकर वे और भी कम

कर देंगी। अतएव इसकी वैधानिक सहायता आवश्यक है। Socialistic प्रदेशों में तो यह कार्य सरल हो जाता है वहाँ तो सब साधन सरकार के ही होते हैं। किन्तु हमारे देश में तो उन्हें केवल वैधानिक सहायता मिल सकती है।

मोटरों और रेलों के इस संघर्ष से State को आर्थिक हानि तो होगी ही। किन्तु देश की वर्तमान सड़कों की दशा भी अत्यन्त शोचनीय हो जायेगी! मोटर अधिक सामान लाद कर लम्बे मार्ग को तय करने के लिये जब प्रस्तुत होगीं तो निश्चित ही सड़कों की दशा बिगड़ जायेगी। अतएव इस बात को ध्यान में रख कर मोटरों को छोटी और पक्की सड़कों पर चलवाया जाना चाहिये। लम्बे सफर के लिये रेलों का उपयोग होना चाहिये। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में Regional Transport Agencies स्थापित की जानी चाहिये जो• मोटरों की licence के द्वारा उनकी गति विधि पर रोक रख सकें।

भारत में रेलों और मोटरों के संघर्ष को समाप्त करने के लिये Motor Vehicles Act पास किया गया है। Wedge-Wood कमेटी के परामर्श के अनुसार रेलों ने पहाड़ी भागों के लिये Out Agency बनाई है। एक Rail Road Cordination Scheme भी तैयार की गई है जिसके अनुसार इस संघर्ष को समाप्त किया जायेगा। इसके आधीन मिली जुली कम्पनियाँ स्थापित की जायंगी। इन कम्पनियों में यातायात के भिन्न २ साधनों के भाग निम्न प्रकार होंगे :—

१. वर्तमान कार्य करने वाला	२५%
२. प्रोमोटर	१०%
३. रेल	३०%
४. प्रान्त की सरकार	३५%

भारत की शिल्पकारी और खेती बाड़ी की बढ़ती हुई आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के यातायात के साधनों की उन्नति होना आवश्यक है। रेलों और मोटरों में इस प्रकार संघर्ष नहीं होना चाहिये। उन्हें एक दूसरे का सहायक बनना चाहिये।

यह नीति बम्बई में कार्य भी कर चुकी है। इसके अनुसार कुल प्रान्त को ग्यारह हिस्सों में बाँट दिया गया है और भिन्न २ प्रान्तों में दूसरे साधन भी इसी काम के लिये प्रयोग में लाये गए हैं। भारतीय रोड और ट्रान्सपोर्ट डैवलपमैंट एसोसिएशन का कहना है कि रेलवे कम्पनियों को अपने किराए की नीति को ठीक करना चाहिये जिससे यह बात तय हो जाय।

हवाई यातायात

पहली बड़ी लड़ाई के पूर्व नुमायश के रूप में कुछ वायुयान भारतवर्ष में उड़ाये गये। अन्य देशों जैसे यूरोप, अमेरीका इत्यादि में यह ढंग सरकार की सहायता से उन्नति करता जा रहा था। परन्तु भारतीय सरकार ने इसको कोई विशेष महत्व नहीं दिया। केवल कुछ अड्डे अंग्रेज, डच, और फ्रांसिसी हवाई जहाजों के उतरने के लिये बनवाए। १६२६ में कराची और लंदन को हवाई जहाज द्वारा मिला दिया गया। फिर इलाहाबाद, कलकत्ता, और रंगून, सिंगापुर से १६३३ में मिला दिये गये। भारतवर्ष में अब तीन बड़ी २ कम्पनियां कार्य कर रही हैं।

नं० १—दी इंडियन नैशनल एअर वेज लिमिटेड। सन् १६३३

नं० २—दी टाटा एअर वेज़ लिमिटेड सन् १६३२

नं० ३—दी एअर सरविसिज़ औफ़ इंडिया लिमिटेड। यह इम्पीरियल एअर वेज़ की एक शाखा समझी जाती है।

भारतवर्ष के वायु यातायात की विदेशों के वायु यातायात से तुलना की जाय तो निम्नलिखित बातें विदित होती हैं:—

मील हज़ार

	अमरीका	फ्रांस	जर्मनी	बर्तानिया	भारतवर्ष
सन् १६३८ ई०	७१	४१	३३	२५	७

दूसरी लड़ाई से पहले भारतवर्ष में फौजी शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था। सन् १६३८ तक भारतवर्ष में दस (Flying Club) थे। हाल ही में इसके लिये भारत सरकार ने कुछ छात्र वृत्ति (Scholarships) नियुक्त की हैं। अब भविष्य में भारतवर्ष में इसकी उन्नति पर काफी सोच विचार किया जा रहा है। सब ओर से पूरा पूरा प्रयत्न हो रहा है। बैङ्गलौर में हवाई जहाज़ बनाने का कारखाना भी खोल दिया है जो हर प्रकार की मशीनरी से सम्पन्न है। यह फैक्टरी सरकार ने ले ली थी। अब हवाई जहाज़ के इञ्जन के बनाने का प्रबन्ध भारत में ही किया जाना चाहिये, तभी इसकी कुछ उन्नति हो सकती है। इसके अतिरिक्त वाटरेस स्टेशन, रात को उतरने की सुविधाएं और सिमेंट के अड्डे इत्यादि बनाये जाने चाहियें। भारतीय सरकार ने अब वायु यातायात की उन्नति के लिये एक पूरी स्कीम तैयार की है। देश के भिन्न २ भागों में हवाई अड्डे भी बनाए जायेंगे। जिनमें ६१ अड्डे अभी हैं और बीस और बनाये जायंगे। इनमें ७८ में रात की उड़ान का भी प्रबन्ध किया जायगा। इनके द्वारा एक लाख से अधिक जन-संख्या वाले ४६ शहर, इक्यावन हज़ार से अधिक जन-संख्या वाले २६ कस्बे और ३६ दूसरे कस्बों को सुविधाएँ पहुंचाई जायँगी। वास्तव में इसकी उन्नति

के लिये अधिक संख्या में वायुयान होने आवश्यक हैं। फिर ट्रेनिंग पाये हुये चलाने वाले और दूसरे स्टाफ की भी आवश्यकता है, और फिर पूरी तरह से हर सामान से परिपूर्ण वायुयान अड्डों की आवश्यकता है। आशा है बहुत शीघ्र ही इसकी उन्नति होगी।

समुद्री यातायात

भूत काल में भारतवर्ष का अपना निजी जहाजी बेड़ा था और व्यापारी जहाज भी भारतवर्ष का अपना निजी जहाजी बेड़ा था और व्यापारी जहाज भी भारतवर्ष से विदेशों को जाते थे, और वहां से आते थे। व्यापारी जहाजों का बेड़ा भी भारतवर्ष के पास था। इंगलैंड के नेवीगेशन के (Navigation Acts) नियमों ने भारतवर्ष के जहाजी बेड़े को समाप्त कर दिया। अङ्गरेजों के भारतवर्ष में आते ही भारतवर्ष का निजि कोई बेड़ा नहीं रहा। अब यह दशा है कि भारतवर्ष का निजी कोई समुद्री बेड़ा नहीं है। विदेशी व्यापार सब विदेशी जहाजों द्वारा होता है, बल्कि तटीय व्यापार भी विदेशी जहाजों द्वारा होता है। इसमें भारतवर्ष को काफी हानि पहुँची। जहाजों के किराये के रूप में लगभग पचास करोड़ रुपया भारतवर्ष से विदेशों को जाता है। यह अधिकतर इंगलैंड को जाता है। यह हानि बहुत अधिक है क्योंकि विदेशी व्यापार की मात्रा बहुत अधिक है। प्रतिवर्ष २ करोड़ ५० लाख टन सामान जहाजों द्वारा आता और जाता है और लगभग दो लाख यात्री इन जहाजों में यात्रा करते हैं। इसके अतिरिक्त सत्तर लाख टन माल और १५ लाख से अधिक यात्री तटीय यात्रा करते हैं। इस प्रकार लगभग ३८ करोड़ रुपया विदेशी व्यापार, ६ करोड़ तटीय व्यापार और ३ करोड़ रुपया यात्रियों का किराया

विदेशी कम्पनियों के पास जाता है। संसार का कोई भी देश इस बात को सहन नहीं कर सकता। प्रत्येक देश का तटीय व्यापार तो उस देश के जहाजों से ही होता है ।

बर्तानियां के पास भारतवर्ष से १३५ गुने व्यापारी जहाज़ी बेड़े हैं। विदेशों के मुकाबले में भारतवर्ष की निम्नखिलित दशा है:—

संसार के व्यापारी समुद्री बेड़े सन् १६३६ में :—

बर्तानियां	अमरीका	जापापन	जर्मनी	भारतवर्ष
१ करोड़ ८० लाख टन	१ करोड़ ३० लाख टन	५६ लाख टन	४५ लाख टन	१ लाख ३० हज़ार टन

भारतवर्ष के तटीय और विदेशी व्यापार में भिन्न २ देशों के जहाजों का भाग:—

समुद्री व्यापार

बर्तानिया के जहाज़	विदेशी जहाज़	भारतवर्ष में ब्रिटिश कम्पनियों के जहाज़
६६'६ प्रतिशत	३० प्रतिशत	३'४ प्रतिशत

तटीय व्यापार

अंग्रेज़ी कम्पनियाँ	भारतीय कम्पनियाँ
८० प्रतिशत	२० प्रतिशत

देश के भीतरी भाग में नदियों में अधिक जहाज नहीं चलाए जाते। नदियों के अन्दर जहाज़ चलाने के हिसाब से २६०८० मील में जहाज़ चलाने का अनुमान किया गया है। जहाज़ केवल उत्तरी भारतवर्ष की कुछ नदियों में ही चल

सकते हैं। भारतवर्ष की कुछ नदियां सुस्तमय और कुछ शीघ्रगामी हैं, और कुछ गर्मियों में सूख जाती हैं। इन सब बातों के कारण नदियां अधिकतर जहाज़ चलाने योग्य नहीं हैं और देश की प्राकृतिक दशा भी इसमें रुकावट डालती हैं। बंगाल और आसाम में गंगा और उसके मिलने वाली नदियां हजारों मील की लम्बाई तक जहाज़ चलाने के योग्य हैं। पंजाब में सिंध और चुनाब, जहाज़ चलाने के योग्य हैं। जर्मनी और अमरीका जैसे देशों में तो नहरें भी जहाज़ चलाने योग्य हैं और इन नहरों में बड़े-बड़े जहाज़ भी चल सकते हैं।

इन सब बातों के होते हुए भी भारतवर्ष में जहाज़ चलाने की कला की उन्नति अत्यन्त आवश्यक है। प्रथम उत्तरी भारतवर्ष की नदियों में काफ़ी पानी रहता है और हिन्दु और मुस्लिम राजाओं के काल में ये नदियां जहाज़ चलाने के प्रयोग में लाई जाती थीं किन्तु इसके पश्चात् सरकार ने इस में कोई दिलचस्पी न ली। १६३३ में भारतवर्ष में कुल ३० समुद्री जहाज़ थे। भारतवर्ष का तट ४ हजार मील लम्बा है। भारतवर्ष में पैदावार अधिक है। भारतवर्ष का विदेशी व्यापार प्रतिवर्ष लगभग ६०० करोड़ रुपया है। इन सब बातों को देखते हुए समुद्री जहाज़ों की शक्ति का बढ़ाना अति आवश्यक है। नदियों को जहाज़ चलाने के योग्य बनाना चाहिये और इस काम की ट्रेनिंग भी देनी चाहिये।

Indian Mercantile Marine Committee ने १६३२ में इस बात का परामर्श किया कि तटीय व्यापार कुल भारतीय जहाज़ों में ही होना चाहिये। किन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। कराची में (Dufferin) जहाज़ पर कुछ विद्यार्थियों को इसमें शिक्षा दी जाने लगी। परन्तु लड़ाई के मध्य में विज़िगापट्टम में दस हजार टन के जहाज़ बनाने का एक यार्ड

खोला गया। इस शिल्पकारी में विशेष दिलचस्पी डालचन्द और हीराचन्द ने ली है और इसी में भारतवर्ष की पूंजी लगी है। भारतीय सरकार को इसमें विशेष दिलचस्पी लेनी चाहिये और भारतवर्ष का अपना व्यापारी जहाजी बेड़ा होना चाहिये। आशा है कि देशी सरकार के प्रबन्ध द्वारा यह कार्य बहुत शीघ्र पूरा हो जायगा।

यातायात सम्बन्धी योजनाएँ—यातायात की उन्नति के लिये भारतीय सरकार ने एक बहुत बड़ी योजना तैयार की है जिस पर लगभग १२०० करोड़ रुपय व्यय होगा और यह योजना १७ वर्ष में पूरी होगी। पहले सात वर्षों में व्यय का अनुमान ३२० करोड़ रुपये लगाया गया है। इस योजना द्वारा निम्न बातों का प्रबन्ध किया गया है :—

(१) ५००० मील और अधिक रेल की लाइन बिछाई जायेगी

(२) तीसरे दर्जे के मुसाफिरों को अधिक सुविधायें दी जायंगी।

(३) रेल के भिन्न-भिन्न दर्जों में कमी की जायगी।

(४) कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि की जायगी ताकि यात्रियों को कोई कष्ट न हो।

(५) रेलों की फिर से संयुक्त लाइने बनेंगी।

(६) रेलें और अन्य क्षेत्रों में भी कार्य करेंगी।

(७) नये रेल के किराये।

(८) माल, पार्सल आदि के भेजने का और उचित ढंग बना दिया जायगा।

बम्बई, यू० पी०, बिहार आदि की प्रान्तीय सरकारों ने मोटर का यातायात अपने हाथ में ले लिया है इस सम्बन्ध में आवश्यक विधान भी पास कर दिये गये हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१. यातायात का किसी देश की आर्थिक समृद्धि से क्या सम्बन्ध है ? पूर्णतया स्पष्ट कीजिये।

How do the means of communication influence the economic well being of a country ? Explain fully.

२. भारतवर्ष के यातायात के साधनों के क्या-क्या मुख्य दोष हैं ? इन्हें किस प्रकार दूर कि जाया सकता है ?

What are the main defects in the transport system of India? How can it be improved?

३. भारतवर्ष के विभिन्न यातायात के साधनों पर एक लेख लिखिये।

Write an essay on the different means of transport in India.

४. रेलों का भारतवर्ष की आर्थिक अवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

Discuss the economic effects of the railways in India.

(५) निम्नलिखित पर नोट लिखिये :—

(अ) रेल और सड़कों का संघर्ष।

(ब) यातायात सम्बन्धी योजनाएँ।

(स) हवाई यातायात

Explain the following:—

(i)Rail road competition

(ii) Planning in transport

(iii) Air transport.

: १० :

करन्सी

करन्सी किसी देश में विनिमय का मुख्य साधन होता है। किसी 'देश में करन्सी विधि उस देश को समाज के विभिन्न श्रेणी के लोगों की सब आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली होनी चाहिये। व्यापार की दृष्टि से भी करन्सी विधि श्रेष्ठ होनी चाहिये। करन्सी व्यापार के लिये अनिवार्य है। इस कारण करन्सी पद्धति का श्रेष्ठ होना अति आवश्यक है। एक श्रेष्ठ करन्सी पद्धति के निम्न गुण हैं:—

(१) करन्सी विधि आवश्यकतानुसार स्वयंमेव परिवर्तित होती रहनी चाहिये। यह विधि ऐसी होनी चाहिये जिससे सिक्कों की मात्रा और संख्या आवश्यकतानुसार घटती बढ़ती रहे।

(२) करन्सी पद्धति लोचदार होनी चाहिये ताकि समय के अनुसार बिना किसी कठिनाई के उसे परिवर्तित किया जा सके और आवश्यकताअनुसार सिक्कों की संख्या बढ़ाई जा सके।

(३) यह पद्धति सरल होनी चाहिये ताकि प्रत्येक व्यक्ति इसे समझ सके।

(४) पद्धति ऐसी होनी चाहिये जिससे सिक्के बनाने में कम व्यय हो और सिक्के भी कम घिसें।

(५) यह पद्धति ऐसी होनी चाहिये कि लोगों का इसमें पूर्ण विश्वास हो।

(६) सिक्कों के मूल्य में समय २ पर अधिक परिवर्तन नहीं होना चाहिये।

(७) विदेशी विनिमय भी अपेक्षाकृत स्थाई रहना चाहिये।

भारत की करन्सी

भारतवर्ष की करन्सी का भली प्रकार ज्ञान प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि हम अपनी करन्सी के इतिहास का ज्ञान रखें और इस में समयानुकूल जो परिवर्तन होते रहे हैं उनको समझें। करन्सी के इतिहास का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये हम इसको विभिन्न भागों में विभाजित कर लेते हैं।

११८३५ ई० से पूर्व—इस से पूर्व भारतवर्ष में बहुसंख्या में सिक्के प्रचलित थे। ईस्ट इन्डिया कम्पनी के भारत में आने से पूर्व भारतवर्ष में सोने और चाँदी के विभिन्न सिक्के साथ-साथ प्रचलित थे और इन में परस्पर कोई मूल्य अनुपात निर्धारित नहीं था। उन का विनिमय मूल्य उनके वज़न और बनावट पर निर्भर था। प्राय: हिन्दु राजाओं के काल में सोने के सिक्के अधिक प्रचलित होते थे और मुसलमान नरेशों के शासन काल में चाँदी के सिक्कों का अधिक महत्व था। जब मुगल साम्राज्य का पतन हुआ तो सब छोटे-छोटे राजा तथा सरदार लोग स्वतन्त्र होगये और अपनी इस स्वतन्त्रता की घोषणा करने के लिये सब ने अपने अलग-अलन सिक्के प्रचलित किये। यह सब सिक्के वजन और बनावट में भिन्न थे। ईस्ट इन्डिया कम्पनी के समय में लगभग ६६४ चाँदी और सोने के विभिन्न सिक्के प्रचलित थे। यह सिक्के भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों में चलते थे। इन सिक्कों का विनिमय मूल्य प्रति दिन परिवर्तित

होता रहता था और इस कारण सिक्कों का मूल्य बताने वाले सर्राफों की सेवायें अनिवार्य समझी जाती थीं। इस परिस्थिति के कारण ईस्ट इन्डिया कम्पनी को अपने व्यापार में बड़ी कठिनाई अनुभव हो रही थी।

इस दशा को सुधारने के लिये ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने कुछ सुधारों का प्रयत्न किया। कम्पनी ने चाँदी और सोने के सिक्कों का परस्पर अनुपात निर्धारित कर दिया और चाँदी और सोने के सिक्के चलाये। परन्तु सोने और चाँदी के बाजार भाव में परिवर्तन होने के कारण यह अनुपात स्थाई न रह सका। १८०६ में लार्ड लिवरपूल ने एक पुस्तक लिखी जिस में एक धातु के सिक्के प्रचलित किये जाने के लाभ स्पष्ट किये। सर्व प्रथम १८१८ ई० में मदरास के प्रान्त में वहां के पैगोडा सोने के सिक्के के बदले चाँदी का रुपया प्रचलित किया गया। यह रु० वज़न में १८० ग्रेन था और इस में ११/१२ भाग चाँदी थी। पैगेडा सिक्के बनाने बन्द कर दिये गये। १८२३ में बम्बई में भी मद्रास जैसा चाँदी का रुपया प्रचलित किया गया। इस प्रकार इस समय तक कोई ऐसा विधान नहीं था जिसके अनुसार देश की करन्सी की देख भाल की जा सके।

(२) सन १८३५ ई० से १८९८ तक—सन १८३५ ई. से पूर्व भारत में करन्सी का कोई नियमानुसार प्रबन्ध नहीं था। १८३५ ई० में करन्सी का एक विधान पास किया गया जिसके द्वारा देश में चाँदी का रुपया प्रयोग किया जाने लगा। यह रुपया १८० ग्रेन वजन का था इसमें ११/१२ भाग (१६५ ग्रेन) शुद्ध चाँदी थी। यह रुपया प्रधान और कानूनी सिक्का (Standard Coin and Legal Tender) बना दिया गया। इसके पश्चात् वह सोने के सिक्के जो पूर्व काल में भारतवर्ष

में प्रचलित थे कानून द्वारा बन्द कर दिये गये। सरकार ने चाँदी के रुपयों को बनाने के लिये (free coinage) टकसालें खोल दीं। कोई भी व्यक्ति अपनी चाँदी टकसाल में लेजाकर इसके रुपये बनवा सकता था। इस प्रकार भारतवर्ष में Silver Currency Standard स्थापित हो गया। इनके साथ साथ इस विधानानुसार सोने की मोहरें उसी वजन की बनाई जाने का भो प्रबन्ध कर दिया गया और ५, १०, ३० रुपये के चाँदो के सिक्कों के बनाये जाने का भो प्रबन्ध कर दिया गया। करन्सी का यह नियम सन् १८६३ तक चलता रहा। १८७३ के पश्चात् चांदी का मूल्य अत्यन्त कम हो जाने के कारण करन्सी के इस नियम में अनेक कठिनाइयां उत्पन्न होने लगीं। सन् १८६६ से चांदी की मात्रा उत्तरोत्तर वृद्धि कर रही थी। इसलिए सोने की अपेक्षा चांदी का मूल्य कम होना अनिवार्य था। इससे स्थिति अत्यन्त करुणाजनक हो गई। मनुष्य सस्ती चांदी बाज़ार से खरीदकर शीघ्रता से इसके रुपये बनवाने लगे। इस भांति चांदी के सिक्के बहुत बढ़ गये तथा इसके कारण देश के मूल्यों में अत्यन्त वृद्धि हुई। इससे व्यापार व उद्योग को बहुत धक्का लगा। सरकार को भी इससे बड़ी हानि हुई। इसलिये सरकार ने परिस्थिति को समझाने के लिये सन् १८६३ में हरशैल 'कमैटी (Herschell Committee) नियुक्त की। इस कमेटी ने यह परामर्श दिया कि टकसालों में चांदी के सिक्के बनाने जनता के लिये शीघ्र ही बन्द कर दिये जांय और Exchange Rate एक शिलिंग चार पैंस नियत की जावे। सरकार ने इन परामर्शों को स्वीकार कर लिया और तुरन्त ही टकसालों को जनता के लिये बन्द कर दिया। रुपये का सोने में एक निंधारित मूल्य नियत कर दिया। तदनन्तर रुपया प्रधान सिक्के की अपेक्षा छोटा सिक्का (Tken Coin)

रह गया और चाँदी की करन्सी का नियम समाप्त हो गया।

इसके उपरान्त सरकार की पालिसी के कारण देशी तथा बाह्य करन्सी का पारस्परिक मूल्य वही हो गया जो सरकार ने नियत किया था। अब सरकार के सम्मुख यह प्रश्न था कि भविष्य में करन्सी का क्या नियम हो। इसका निर्णय करने के लिये सरकार ने सन् १८६८ में (Fowler Commission) नियुक्त किया। इस कमीशन ने देश के करन्सी के नियम की सर्वोत्तम विधि से जांच पड़ताल की और यह परामर्श दिया कि भारतवर्ष में सोने की करन्सी का नियम प्रचलित होना चाहिये। दोनों देशों की करन्सी का मूल्य १ शिलिंग ४ पैंस ही होना चाहिये।

सन् १८९८ से सन् १९१४ तक—सरकार ने फाउलर कमीशन के परामर्श स्वीकार कर लिये। सन् १८९९ में सिक्के बनाने का एक क़ानून पास किया गया जिसके द्वारा Sovereign को १५ रुपये और Half Sovere gn का साढ़े सात रुपये की दर से क़ानूनी सिक्के बना दिये गये। सोने के सिक्के बनाने के लिये एक टकसाल खोली गई और सन् १९०० में टकसाल के लाभ से Gold Standard Reserve बनाया गया। यद्यपि सरकार ने सोने के सिक्के और करन्सी का नियम चलाने का प्रयत्न किया किन्तु ब्रिटिश ख़जाने के विरोध और जनता के रुपये से अधिक कार्य करने के कारण सोने की करन्सी का नियम स्थापित न हो सका। इसलिये इसकी अपेक्षा एक अन्य करन्सी का नियम स्थापित किया गया। यह Gold Exchange Standard था। वास्तव में यह नियम सरकार ने स्वयं नहीं चलाया बल्कि यह तो करन्सी के प्रबन्ध के फलतः स्वयं प्रगट हो गया। इस नियम में सोना केवल विदेशी व्यापार के लिये मिलने लगा। इसका मूल्य

वही एक शिलिंग चार पैंस था। ऐसे नियम की परमावश्यक बात यही है कि देशी व बाह्य कन्रसी के मूल्य को स्थित रक्खा जाय। पहले महायुद्ध से पूर्व भारतवर्ष में यही नियम प्रचलित रहा किन्तु इस नियम को कोई क़नूनी स्वीकृति प्राप्त न थी। इसमें जनता का भी विश्वास न था, इसलिये उनमें व्यग्रता फैल गई। इसका प्रबन्ध जानने के लिये सरकार ने सन् १६१३ में Chamberlain Commission नियुक्त किया। इस कमीशन ने यह बताया कि करन्सी का वर्तमान नियम जनता की आवश्यकता की पूर्ति करता है और यह सर्वथा उचित है। इसके अतिरिक्त इसने और भी बहुत से परामर्श दिये यह समस्त बातें सरकार ने स्वीकार कर लीं। किन्तु आगामी वर्ष ही महायुद्ध प्रारम्भ हो गया।

सन् १६१४ से सन् १६१६ तक—महायुद्ध के प्रारम्भ होते ही अनेक नवीन कठिनाइयां उत्पन्न हो गईं। नोटों के नकद रुपये लिये जाने लगे और जनता तत्काल ही अपने रुपये बैंक के खातों में से निकलवाने लगी। व्यापार में गड़बड़ हो जाने के कारण दोनों देशों की करन्सी के मूल्य पर भी अत्यधिक जोर पड़ा। क्योंकि सरकार को इन कठिनाइयों की पहले ही से आशा थी इसलिये इनका प्रबन्ध करने में इसे कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। सब से बड़ी कठिनाई सन् १६१६ में रुपयों की मांग बढ़ जाने के कारण हुई। यह मांग अधिक इस लिये बढ़ गई कि देश में आयात् की अपेक्षा निर्यात बहुत बढ़ गई और सरकार का युद्ध का व्यय भी बहुत बढ़ गया। इसी समय चांदी की सप्लाई भी बहुत कम हो गई। इसका कारण यह था कि एक तो युद्ध के कारण वस्तुओं का विनिमय बन्द हो गया और दूसरे मैक्सिको (Mexico) में जो कि सबसे अधिक चांदी उत्पादित करता है, उपद्रव प्रारम्भ हो गए।

इससे चांदी के मूल्य में वृद्धि हुई। चांदी सन् १६१५ में २७ पैंस प्रति औंस, अगस्त १६१७ में ४३ पैंस प्रति औंस, सितम्बर सन् १६१७ में ५५ पेंस प्रति औंस और सन् १६२० में ८६ पैंस प्रति औंस हो गई। इसके कारण मनुष्य रुपये को पिघलाकर इस को चांदी के रूप में बेचने लगे। इससे चांदी का और भी अभाव हो गया। सरकार के लिये एक शिलिंग चार पैंसे में रुपया देना अति हानिकारक हो गया। इसलिये सरकार ने दोनों करन्सी के मूल्य की वृद्धि को रोकने का प्रयत्न बन्द कर दिया और इस प्रकार इस मूल्य को स्वतंत्र कर दिया। इसलिये युद्ध की कठिनाइयों के कारण 'Gold Exchange Standard' टूट गया।

सन् १६१६ ई० से सन् १६३१ ई० तक--युद्ध की कठिनाइयों को दूर करने के लिये सरकार ने सन् १६१६ ई० में 'Babington Smith Committee' नियत की। इस कमैटी ने दोनों देशों की करन्सी का मूल्य स्थापित रखने की अत्यन्त आवश्यक्ता बताई। इसने यह परामर्श दिया कि वर्तमान रुपये को कानूनी सिक्के के रूप में ही रक्खा जाय। इस कमैटी का प्रमुख परामर्श यह था कि दोनों देशों की करन्सी का मूल्य दो शिलिंग प्रति रुपया निर्धारित किया जाय। सरकार ने इस कमेटी के लगभग समस्त परामर्श स्वीकार कर लिये। दोनों देशों की करेन्सी का मूल्य दो शिलिंग ही नियत कर दिया गया और युद्ध काल के सम्पूर्ण प्रतिबन्ध हटा लिये गये।

परन्तु दो शिलिंग का यह मूल्य अधिक दिनों तक काम न दे सका। वास्तव में कमैटी ने यह परामर्श देकर एक बड़ी भूल की थी। वास्तव में चांदी का अधिक मूल्य और निर्यात की अधिक मात्रा स्थायी नहीं थी। वास्तविक परिस्थिति इसके सर्वथा विरुद्ध हुई। चांदी का मूल्य यकायक कम हो गया और

आयात् की मात्रा बढ़ गई। परिणाम स्वरूप दो शिलिंग का मूल्य स्थापित रखना महान् कठिन हो गया। सरकार ने इसको स्थायी रखने का जो तोड़ प्रयत्न किया किन्तु असफल रही। अन्त में बड़ी हानि उठाने के पश्चात् सरकार ने इस मूल्य को २० सितम्बर सन् १६२० को स्वतंत्र कर दिया। इसके अनन्तर यह exchange rate बहुत घट गई। कुछ समय पश्चात् यह पुनः बुद्धि करने लगी। सन् १६२४ ई० में मूल्य फिर १ शिलिंग ४ पैंस तक पहुँच गया।

२५ अगस्त सन् १६२५ को सरकार ने भारतीय करन्सी की जांच पड़ताल करने के लिये Hilton Young Commission नियुक्त किया। इस कमीशन ने यह बताया कि वर्तमान करन्सी के नियम में अनेक दोष हैं। करंसी का यह नियम मूल्यवान है और आवश्यकतानुसार नहीं है। इस कमीशन ने इसकी अपेक्षा Gold Bullion Standard का परामर्श दिया। इस नियम में वस्तुओं के मूल्य का नियम तो सोना है किन्तु देश में चांदी के सिक्के प्रचलित थे। इस कमीशन ने दोनों देशों की करन्सी का मूल्य १ शिलिंग ६ पैंस रखने का परामर्श दिया। इस कमीशन ने यह भी परामर्श दिया कि देश की करंसी और आर्थिक नियम को सम्बन्धित करने के लिये एक Central Bank स्थापित किया जाना चाहिये।

इस कमीशन के परामर्श को सरकार ने स्वीकार कर लिया। सन् १६२७ के क़ानून द्वारा देश में Gold Bullion Standard स्थापित किया गया और दोनों देशों की करंसी का मूल्य १ शिलिंग ६ पैंस नियत कर दिया गया। इसके द्वारा सरकार ४० तोले या इस से अधिक सोना खरीदने और बम्बई या लंदन में ४०० औंस या इससे अधिक स्टर्लिंग अथवा सोना बेचने की क़ानूनी रूप में उत्तरदायी हो गई। क्योंकि सरकार

सोना या स्टर्लिंग बेच सकती थी, इस करन्सी के नियम को Standard Exchange अथवा Gold Exchange Standard कहा जा सकता है।

सन् १६३१ से सन् १६३६ तक—सन् १६२६ ई० में ही संसार की आर्थिक दशा अत्यन्त हीन हो गई। मूल्य बहुत कम हो गये और उद्योग व व्यापार को बहुत हानि हुई। संसार के विभिन्न देशों की करन्सी पर बहुत बोझ पड़ा। २१ सितम्बर सन् १६३१ ई० को इंगलेंड ने सोने का अत्यन्त अभाव होने के कारण Gold Standard त्याग दिया। इसका हमारी करेन्सी और आर्थिक जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा। उससे भारत सरकार ने सोना व स्टर्लिङ्ग विक्रय करना बन्द कर दिया। इसके अतिरिक्त रुपये को १ शिलिंग ६ पैंस के हिसाब से स्टर्लिङ्ग कर सम्बन्धित कर दिया। इस भांति भारतवर्ष ने सन् १६३१ से Gold Standard की अपेक्षा Sterling Exchange Standard धारण कर लिया। परन्तु यह एक बड़ी भूल थी। इससे इंगलैंड के आर्थिक परिवर्तनों का भारतवर्ष में प्रभाव पड़ने लगा। १ शिलिंग ६ पैंस के मूल्य पर विरोध होने लगा और यह विरोध अब तक चल रहा है।

इस समय भारतवर्ष से सोना भी बहुत अधिक मात्रा में बाहर भेजा जाने लगा। भारतवर्ष से लगभग साढ़े तीन सौ रुपये का सोना बाहर भेजा गया। इस प्रकार स्थिति अत्यन्त करुणा जनक हो गई। तथा सरकार पर विरोध होने लगा।

सन् १६३५ से भारतवर्ष में रिज़र्व बैंक ने कार्य करना आरम्भ कर दिया। इस समय से यह हमारी करन्सी का क्रम बद्ध रूप से प्रबन्ध कर रहा है। अब यह भारतवर्ष की करन्सी का प्रबन्ध करने और निर्माण करने की केवल-मात्र संस्था है। दोनों देशों की करन्सी के मूल्य को १ शिलिंग ६ पैंस पर

रखता है। और इसके लिये Sterling का क्रय विक्रय करता है।

सन् १६३६ से वर्तमान समय तक—रिजर्व बैंक को कार्य करते हुए चार वर्ष ही हुए थे कि ३ सितम्बर सन् १६३६ को द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। वर्तमान महायुद्ध में हमारी करेन्सी में बड़े महत्वशाली परिवर्तन हुए हैं।

युद्ध के प्रारम्भ होते ही पहले युद्ध के समान मनुष्य तत्काल नोटों के रुपये लेने लगे एवं तुरन्त अपने बैंक के खातों में रुपया निकलवाने लगे। इस कारण रुपयों का बहुत अभाव हो गया। सरकार ने इस अभाव को दूर करने के लिये एक रुपये व दो रुपये के नोट छापे। आवश्यकता से अधिक रुपया जोड़ने वालों को कानूनी अपराधी घोषित किया। इसके अतिरिक्त चांदी बचाने के लिये रुपये में $\frac{11}{12}$ भाग शुद्ध चांदी की अपेक्षा $\frac{1}{2}$ चांदी रख दी। अर्थात् रुपये में १६५ ग्रेन की अपेक्षा ६० ग्रेन शुद्ध चांदी रह गई। किन्तु रुपये का तोल वही १८० ग्रेन (१ तोला) रहा। अन्य सिक्कों में भी इसी प्रकार बचत की गई। तांबे का मूल्य बहुत बढ़ने के कारण मनुष्य तांबे के पैसे एकत्रित करने लगे। इस भांति उनका बहुत अभाव हो गया। इस अभाव को दूर करने के लिए रिजर्व बैंक ने एक नवीन प्रकार का छेद वाला पैसा निर्माण किया और दो पैसे का एक नया सिक्का प्रचित किया।

इसके अतिरिक्त युद्ध की आवश्यकताओं और अन्य ऐसे ही कारणों के परिणाम स्वरूप देश में रुपये की मांग बहुत बढ़ गई। इस मांग की पूर्ति के लिये रिजर्व बैंक ने तत्काल ही बहुत अधिक मात्रा में कागज के नोट छापने प्रारम्भ कर दिये। देश में युद्ध के कारण मूल्य पहले ही बहुत बढ़े हुए थे। अब

रुपये की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि होने के कारण मूल्य और बढ़ते चले गये। काग़ज़ के नोटों की मात्रा असाधारण उन्नति कर गई। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक ने बड़े नोटों को चांदी के रुपयों को एक रुपये के नोटों में परिवर्तन करना आरम्भ कर दिया। इससे प्रतिदिन जनता का विश्वास करन्सी से उठ गया देश के व्यापार व उद्योग को विशेष हानि हुई। काग़ज़ की करन्सी की मात्रा में असीम वृद्धि हो गई है। यह करन्सी सन् १९३९ में १७८ करोड़ रुपये की थी किन्तु अब इसकी मात्रा १३०० करोड़ से कम नहीं है।

इसके अतिरिक्त रिज़र्व बैंक ने करन्सी के मूल्य को स्थापित रक्खा। इससे विदेशी व्यापार में तो कोई विशेष हानि न हुई। किन्तु देश के साधारण मनुष्यों को बहुत अधिक हानि हुई। अब हमारी करन्सी का सम्बन्ध स्टर्लिंग से नहीं है।

१ शि० ६ पैं० तथा १ शि० ४ पैं० अनुपात की समस्या

(A) सबसे पूर्व १९२६ में हिल्टन यंग कमीशन (Hilton Young Commission) ने भारतवर्ष के रुपये का सम्बन्ध स्टरलिंग से १ शिलिंग ६ पैंस की दर से जोड़े जाने की सिफारिश की। इससे पूर्व १ शिलिंग ४ पैंस का अनुपात (Ratio) था। सर पुरुशोत्तम दास ठाकुरदास जो इस कमीशन के सदस्य थे, ने भी १ शिलिंग ४ पैंस के पक्ष में बहुत कुछ कहा और १ शिलिंग ६ पैंस के अनुपात के विरुद्ध घोर मतभेद प्रगट किया। सन् १९२१ में २ शिलिंग का अनुपात भी असफल रहा। कुछ समय तक इसको थामे रखने से सरकार को लगभग ५० करोड़ रुपये की हानि हुई। कुछ समय के लिये तो अनुपात १ शिलिंग से कम हो गया था। १९२२—२३ में व्यापार की बचत और

अधिक बढ़ जाने के कारण अनुपात फिर १ शिलिंग ४ पैंस हो गया। मई १९२४ में यह १ शिलिंग ६ पैंस हो गया। संसार की अन्य वस्तुओं के भाव और सोने के भाव भी लगभग एक ही स्तर पर आ गये। १ शिलिंग ६ पैंस के अनुपात के पक्ष में निम्नलिखित बातें कहीं गई :—

(१) यह अनुपात बहुत समय तक इसी रूप में ठहर चुका था और इस प्रकार स्थाई और प्राकृतिक है।

(२) मज़दूरों की मज़दूरी भी इस दर के अनुसार ठीक बैठ गई थी। यह इन लोगों के लिये भी लाभदायक है।

(३) अनुपात को १ शिलिंग ४ पैंस रखने से वस्तुओं के मूल्य के बढ़ जाने का डर था। वृद्धि १२½% तक हो सकती थी। इस से देश के व्यापार को हानि पहुँचने का डर था और लोगों को कठिनाइयाँ सहन करने की भी सम्भावना थी।

(४) इस अनुपात से सरकार के बजट में बचत होगी क्योंकि सरकार को Home Charges कम देने पड़ेंगे।

(५) चांदी के रुपयों के सम्बन्ध में भी १ शिलिंग ६ पैंस की अनुपात अधिक लाभदायक थी क्योंकि इस दर के अनुसार ४८ पैंस प्रति आउंस चांदी की दर पर रुपया पिघलाया जा सकता था। इस से करन्सी को हानि होने से रोका गया।

१ शिलिंग ४ पैंस के अनुपात के पक्ष में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं:—

(१) संसार की भिन्न वस्तुओं के भाव का १ शिलिंग ६ पैंस की दर से ठीक होना स्थायी नहीं था। यह बनावटी और करन्सी को कम करके किया गया था।

(२) स्थायी दशा होने से पूर्व १ शिलिंग ६ पैंस की दर से

विदेशी व्यापारियों को लगभग १२½% का लाभ होगा। भारतवर्ष के निर्माण कर्ताओं को हानि होगी। ऋण देने वालों को भी हानि होगी। इसमें किसान लोग भी सम्मिलित हैं।

(३) १ शिलिंग ४ पैंस की दर से Home Charges के बढ़ने से जो हानि होगी इसकी पूर्ति अधिक आय टैक्स (Income Tax) द्वारा हो सकती थी।

(४) १ शिलिंग ६ पैंस की दर से भारतवर्ष को शिल्पकारी को हानि पहुँची क्योंकि यह दर आयात के अधिक पक्ष में थी और निर्यात के प्रतिकूल था। यह आयात बढ़ाने में सहायक है जो देश के लिये हानिकारक है।

(५) १ शिलिंग ४ पैंस की दर से भारतीय करन्सी भली भांति सम्बन्धित की जा सकती है। परन्तु १ शिलिंग ६ पैंस की दर से एक सावरिन १३ रुपये—५ आने—४ पाई के बराबर होता था जिसको याद रखना कठिन था।

इस समय की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए १ शिलिंग ६ पैंस की दर को उचित कहा जा सकता है। परन्तु १ शि० ४ पैं० की दर ही भारतवर्ष के लिये लाभदायक सिद्ध हो सकती है। देश की उन्नति विदेशी सरकार कैसे कर सकती है। अंग्रेजों का ध्येय ही इंगलैंड का व्यापार बढ़ाना रहा है। पर अब अपनी राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो गई है। सरकार को शीघ्र ही उचित समय मिलने पर १ शि० ४ पैं० का अनुपात नियुक्त कर देना चाहिये।

भारतवर्ष की कागज मुद्रा (Indian paper Currency System)–उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भारतवर्ष में नोट नहीं थे। १८०६ में सब से पूर्व बंगाल के बैंक को नोट छापने

का अधिकार दिया गया। फिर बम्बई में १८४० में और मद्रास में १८४३ में बैंक स्थापित किये गये और इन्हें भी नोट छापने के अधिकार दिये गये। प्रत्येक बैंक अपने इलाके में नोट छापकर चला सकता था। प्रत्येक बैंक एक निश्चित रक़म तक के नोट छाप सकता था। बंगाल का बैंक दो करोड़ रुपये से अधिक के नोट नहीं छाप सकता था। प्रत्येक बैंक को नोटों का ३३⅓% सोने चांदी के रूप में रिजर्व रखना पड़ता था। फिर यह रिजर्व २८% कर दिया गया। देश के प्रत्येक भाग में यह नोट नहीं चल सकते थे, और कभी-कभी सरकार भी इन नोटों को लेने से इन्कार कर देती थी। बहुधा यह नोट बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के शहरों में चलते थे। उस समय नोट बहुत कम प्रयोग में आते थे। भिन्न-भिन्न बैंकों में अलग-अलग रकम के नोट छापे जाते थे। उस समय लोग बैंक के अर्थ से भी अपरिचित थे। सब बैंकों को कुल पाँच करोड़ रुपये के नोट छापने का अधिकार था परन्तु सब बैंक मिलकर मुश्किल से दो करोड़ रु० के नोट छापते थे। १७७०—१८६४ के बीच भारतवर्ष में कुल ३५ बैंक थे इनमें से दस बैंक नोट छाप सकते थे।

१८६१ के एक्ट के अनुसार भारत सरकार ने यह काम अपने हाथ में ले लिया और एक 'करन्सी विभाग स्थापित कर दिया गया। इसके अनुसार देश को तीन भागों में बाँट दिया गया, अर्थात् बम्बई कलकत्ता और मद्रास। प्रत्येक भाग के छपे हुए नोट बहुधा उसी भाग में चलते थे। इसके पश्चात यह भाग सात कर दिये गये—लाहौर, कराची, कानपुर और रङ्गून के भी अलग २ भाग कर दिये गये। वह १०, ५०, १००, ५००, १०००, १०००० रुपये तक नोट छाप सकते थे। इस एक्ट के अनुसार चार करोड़ रुपये तक के नोट बिना किसी रिज़र्व के

छापे जा सकते थे। इससे अधिक संख्या में नोट छापने के लिये उतना ही रिज़र्व रखना पड़ता था जितने अधिक के नोट छापे जाते थे।

१९०३ ई० में ५ रुपये का नोट छापा गया जिसको सब भागों में प्रचलित किया गया। १९१० में १० रुपये का नोट और ५० रुपये का नोट, १९११ में १०० रुपये का नोट और १९३१, १९३२ में ५०० और १००० के नोट सब भागों में प्रचलित किये गये। १९१३ में चौदह करोड़ रुपये के नोट बिना किसी रिज़र्व के छापे जा सकते थे। फिर यह रक़म २० करोड़ कर दी गई। प्रथम महायुद्ध में बढ़ती हुई आवश्यकता को पूरा करने के लिये नोटों के छापने की संख्या १२० करोड़ रुपये कर दी गई।

२½ रुपये और १ रुपये के नोट भी चलाये गये। प्रारम्भ में लोगों ने नोट लेने से इन्कार कर दिया परन्तु इसके पश्चात् परिस्थिति सुधर गई। १९१९ में रिज़र्व छापे हुए नोटों का ४०% निश्चित कर दिया गया। इससे कम से कम २० करोड़ रुपया सोने के रूप में रखना अनिवार्य कर दिया गया। अच्छे समय में आवश्यकता अनुसार ५ करोड़ रुपये तक के नोट अधिक छापे जाने की आज्ञा दे दी गई।

१९२६ के एक्ट के अनुसार रिज़र्व ५०% कर दिया गया और रिज़र्व का अधिकतर भाग लन्दन में रक्खा जाने लगा। १९२१ में इम्पीरियल बैंक (Imperial Bank) स्थापित हुआ। इस बैंक को आवश्यकतानुसार १२ करोड़ रुपये तक की करन्सी बढ़ाने की अनुमती दे दी गई। जनवरी १९२६ में १ रुपया और २½ रुपये वाले नोट बन्द कर दिये गये।

१९२७ के एक़्ट के अनुसार कुछ परिवर्तन किये गये। फिर १९३४ में रिज़र्व बैंक स्थापित हुआ और नोट छापने का काम

इस बैंक को सौंप दिया गया। इस बैंक में इस काम के लिये एक अलग विभाग खोल दिया गया। यह बैंक ५, १०, ५०, १००, ५००, १००० और १०००० रुपये के नोट छाप सकता था। १६३६ में भारतवर्ष में १८२ करोड़ रुपये के नोट थे परन्तु दूसरे महायुद्ध के समय में अधिक संख्या में नोट छापे गये। अगस्त १६४५ में ११२३ करोड़ रुपये के नोट भारतवर्ष में थे। इसी समय १ रुपये और २ रुपये के नोट भी प्रचिलित कर दिये गये। थोड़े समय हुए ही १०००० और १००० रुपये के नोट बन्द कर दिये गये। दूसरे महायुद्ध के समय में भारतवर्ष में ६५१ करोड़ रुपये के नोट और छापे गये। इसी समय में स्टरलीङ्ग सेक्योरिटीज़ में ६७५ करोड़ रुपये की बढ़ोतरी हुई।

Home Charges—यह वह रक़म है जो भारतवर्ष को प्रतिवर्ष बर्तानियाँ को देनी पड़ती थी। इसको चुकाने के लिये भारतवर्ष के विदेशी व्यापार का तलपट भारतवर्ष के अनुकूल होना आवश्यक था। इस रुपये में इङ्गलैंड में लिये हुये ऋण का ब्याज, ऋण, अंग्रेज़ अफसरों की पैंशन और बोनस आदि, फौज का व्यय और जहाज़ी कम्पनियों का किराया, इङ्गलैंड में भारत सरकार की ओर से खरीदे हुए माल का मूल्य, भारत के दफ्तर (India Office) का खर्चा सम्मिलित हैं।

Gold Standard Reserve–रुपये के सिक्के छापने से जो लाभ होता था वह अलग इस हिसाब में जमा किया जाता था। इसके स्थापित करने का परामर्श फाऊलर कमैटी ने १८६८ में किया था। सब से पूर्व यह १६०० में स्थापित किया गया। आरम्भ में इसको भारतवर्ष में ही रक्खा गया। फिर १६०६ में इसके दो भाग कर दिये गये। एक भाग भारतवर्ष में रक्खा गया और दूसरा लन्दन में। भारतवर्ष में यह चाँदी के रूप में रक्खा गया और लन्दन में सोने के रूप में। १६३५ में रिज़र्व

बैंक के स्थापित होने पर यह रिजर्व बैंक को दे दिया गया।

Gold Exports from India—सितम्बर १६३१ और जनवरी १६४० के मध्य में भारतवर्ष से बहुत अधिक मात्रा में सोना विदेशों को भेजा गया। लगभग ३५१.४ करोड़ रुपये का सोना विदेशों को भेजा गया। १६१० और १६३१ के मध्य में भारतवर्ष ने ४५७.८६ करोड़ रुपये का सोना विदेशों से प्राप्त किया था। इस प्रकार ८ साल में विदेशों से आये हुए सोने का अधिक भाग विदेशों को भेज दिया गया। यह सब सोना २१ वर्ष में विदेशों से मंगवाया गया था। भारतवर्ष के लोगों ने सरकार को इस बात को रोकने के लिये कहा, परन्तु सरकार ने इस में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं ली। सरकार का यह कहना था कि प्राय भारतवर्ष से सोना विदेशों को जाता है। इसके अतिरिक्त सोना बाहर भेजने से भारतवर्ष की सरकार की साख भी बढ़ी और इससे साधारण लोगों और कृषकों को भी लाभ हुआ। भारतवर्ष के विदेशी व्यापार में भी बहुत बढ़ोतरी हुई परन्तु कुछ लोगों का कहना है कि सोना विदेशों में जाने से भारतवर्ष को बहुत हानि हुई। सर्व प्रथम भारतवर्ष का सोना व्यर्थ नष्ट किया गया। इससे महाजनो को भी हानि हुई। सोने के बाहर भेजे जाने से इस बात के ज्ञान की प्राप्ति को रोक दिया गया कि एक शिलिंग ६ पैन्स का अनुपात भारतवर्ष के प्रतिकूल है। सोने के अधिक मात्रा में भेजे जाने से भारतवर्ष में सोने के सिक्के नहीं चलाये जा सकते थे। दूसरे देश अपने सोने को अपने देश में ही रखने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु भारतवर्ष के लोगों को विवश होकर सोना बाहर भेजना पड़ता था। वास्तव में भारतवर्ष को इससे बहुत हानि पहुँची।

भारतवर्ष की वर्तमान करन्सी—भारत के स्वतंत्र होने से पूर्व करन्सी का स्टर्लिंग एक्सचेंज स्टैन्डर्ड था। परन्तु

अब भारत की करन्सी का स्टर्लिंग से सम्बन्ध अलग कर लिया गया है। यह प्रबन्ध भारत में १९३१ से प्रचलित था। इसके अनुसार करन्सी दो प्रकार की होती है। एक अन्दर की और दूसरी बाहर की, अथवा एक देशी और दूसरी विदेशी। देशी करन्सी में रुपये, नोट और बहुत से अन्य छोटे छोटे सिक्के सम्मिलित हैं। यह देश भर में चलते हैं और इन के द्वारा ही हर प्रकार का क्रय-विक्रय और व्यापार किया जाता है। विदेशी करन्सी स्टर्लिंग के रूप में है। वास्तव में जो व्यापारी या दूसरे लोग विदेशों से व्यापार करते हैं उनको अपनी देशी करन्सी को विदेशी करन्सी में बदलना पड़ता है। इस कार्य के लिये रिज़र्व बैंक की ओर से ठीक प्रबन्ध है अर्थात् रिज़र्व बैंक भारतीय करन्सी को विदेशी करन्सी में बदलने की जिम्मेदारी लेता है। भारतीय और विदेशी करन्सी का अनुपात एक रुपया और एक शि० ६ पैं० (1 Re = 1s.6d.) है। इस के अनुसार करन्सी के बदलने का सारा कार्य रिज़र्व बैंक की ओर से किया जाता है। रिज़र्व बैंक १ शि० ५ ४९/६४ पैं० प्रति रुपये की दर से स्टर्लिंग बेचता हैं और १ शि० ६ ३/१६ प्रति रुपये के हिसाब से स्टर्लिंग खरीदता है। स्टर्लिंग का क्रय-विक्रय करके इसे लन्दन में तुरन्त लिया जा सकता है। परन्तु इस क्रय-विक्रय में दस हज़ार पौन्ड के मूल्य से कम स्टर्लिंग नहीं खरीदा जा सकता। ईसी प्रकार से रिज़र्व बैंक भारतवर्ष के व्यापारियों को विदेशी व्यापारियों के साथ व्यापार करने में सहायता करता है। इस कार्य के लिये रिज़र्व बैंक अपने पास स्टर्लिंग करन्सी का स्टाक प्रत्येक क्षण रखता है। स्टर्लिंग करन्सी का यह स्टाक रिज़र्व बैंक के पेपर करन्सी रिज़र्व में होता है। इस प्रकार हमारी करन्सी का प्रबन्ध स्टर्लिंग एक्सचेंज स्टैन्डर्ड है। रुपया और स्टर्लिंग करन्सी का अनुपात १ शि० ६ पैं० प्रति रुपया है।

परन्तु हमारे वर्तमान करन्सी का स्टैन्डर्ड बनावटी है और आवश्यकतानुसार करन्सी की संख्या को तुरंत घटाना या बढ़ाना बहुत कठिन है। इसलिये प्रायः तत्कालिक आवश्यकता के समय देश को अधिक हानि उठानी पड़ती है। इसके अतिरिक्त हमारी करन्सी के वर्तमान प्रबन्ध में लोगों को पूरा पूरा भरोसा नहीं है। भारतीय करन्सी और विदेशी करंसी में जो अनुपात निश्चित किया गया है वह बिल्कुल बनावटी है। यदि आर्थिक समस्याओं को स्वतंत्रता से छोड़ दिया जाय तो यह अनुपात वर्तमान अनुपात से बहुत भिन्न होगा। वास्तव में स्टर्लिंग अर्थात् विदेशी करन्सी का प्राकृतिक कोई अनुपात निश्चित नहीं है और ना हीं यह सोने में बदली जा सकती है। इसलिए करन्सी की एक सबसे बड़ी आवश्यक विशेषता अर्थात् इसका आर्थिक दशा के अनुसार बदलना हमारी भारतीय करन्सी में नहीं पाया जाता। इसके अतिरिक्त क्योंकि हमारी करन्सी का सम्बन्ध अंग्रेज़ी करन्सी अर्थात् स्टर्लिंग से है इसलिए इङ्गलैंएड या दूसरे देशों में जो भी आर्थिक परिवर्तन या गड़बड़ होती रहती है उसका हमारे देश की करन्सी और आर्थिक दशा पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। रुपया और स्टर्लिंग का जो सम्बन्ध निश्चित किया गया है, उस पर भी लोगों का बहुत मतभेद है। इस रुपये और स्टर्लिंग के अनुपात से भारतवर्ष में माल अधिक से अधिक देश में आने में सहायता मिलती है और माल बाहर भेजने में दिन प्रति दिन कमी होती है। इससे हमारे व्यापार को बहुत अधिक हानि पहुंचती है। इसके अतिरिक्त हमारी विदेशी व्यापार से सम्बन्ध रखने वाली सब हुण्डियाँ स्टर्लिंग में लिखी जाती हैं। उन हुन्डियों में रुपये के अतिरिक्त स्टर्लिंग करन्सी में रक़म लिखी होती है। इसका परिणाम यह होता है कि हमारे देश में हुन्डियों का क्रय-विक्रय नहीं हो सकता।

हुन्डियों का क्रय-विक्रय वर्तमान काल में बैंकों का एक बहुत ही आवश्यक काम बन गया है। परन्तु क्योंकि भारतवर्ष में विदेशी हुन्डियों का क्रय-विक्रय नहीं हो सकता, हमारे बैंकों की उन्नति को एक बहुत बड़ा धक्का लगता है। इसलिए सब बातों को देखकर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान करन्सी के प्रबन्ध से देश की आर्थिक दशा को लाभ होने के अतिरिक्त अत्यन्त हानि पहुंची है। वास्तव में देश की जो भी आशाएँ करन्सी के स्टैन्डर्ड से सम्बन्ध रखती है उनमें से हमारा वर्तमान करन्सी का स्टैन्डर्ड कोई भी पूरी नहीं कर सका है।

अपने करन्सी के स्टैंडर्ड की हानियां देख लेने के पश्चात् अब यह आवश्यक है कि ऐसी युक्तियाँ सोची जांय जिनसे वर्तमान करन्सी के स्टैंडर्ड में एक विशेष उन्नति हो सके। इस दशा को अच्छा बनाने के लिये दो बातें अत्यन्त आवश्यक हैं। सर्व प्रथम भारतीय करन्सी का अंग्रेजी करन्सी अर्थात स्टर्लिंग से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। इससे हमारी करन्सी स्वतन्त्र हो जायगी और फिर उसको भारतवर्ष की आर्थिक दशा को अधिक से अधिक अच्छा बनाने के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि भारतवर्ष की धन सम्बन्धी आवश्यकताएं स्टर्लिंग करन्सी प्रयोग में लाने वाले देशों की आवश्यकताओं से बहुत अधिक भिन्न हैं। हमारी करन्सी का स्टर्लिंग करन्सी से सम्बन्ध होने के कारण देश में धन सम्बन्धी अथवा आर्थिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं और वह देश की उन्नति में बाधा डालती हैं। इसके अतिरिक्त हमारी करन्सी और स्टर्लिंग का अनुपात बहुत अधिक है। यह एक शिलिंग छः पैंस से कम किया जाना चाहिये। इसके कम होने से हमारे विदेशी व्यापार में उन्नति होगी अर्थात् दूसरे देशों को माल अधिक लाभ से

भेजा जा सकेगा। दोनों करन्सी के अनुपात को कम करने से देश की उपज का मूल्य और बाजार भाव भी कम होने में सहायता मिलेगी। इस युक्ति को प्रयोग में लाने से देश में अधिक माल बनेगा और बेकारी दूर हो जायगी। इसका ठीक २ परिणाम भारत की देशी आय को बढ़ाना और देश की दशा को सुधारना होगा।

परन्तु युक्तियां कितनी ही अच्छी क्यों न हों, जब तक उनको प्रयोग में न लाया जाए दशा को उत्तम बनाना बहुत कठिन है। वास्तव में भारतीय गर्वनमेंट ने अभी तक इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। परन्तु समय पड़ने पर हमारी सरकार यह कह देती है कि एक शिलिंग ६ पैंस के अनुपात में कोई विकार नहीं है और ना हीं भारतीय करन्सी को स्टर्लिंग से सम्बन्धित करने से कोई हानि होती है। वे यह भी कहते है कि वर्तमान अनुपात और करन्सी के स्टैंडर्ड से अच्छा और कोई स्टैंडर्ड नहीं है और उन्होंने यह भी कहा है कि वह अपनी इस नीति में अभी कोई अदल बदल करना नहीं चाहते। अब हमारी नेशनल गर्वनमेंट होने पर हमें अपनी नीति में देश के लाभ को दृष्टिकोण में रखने की अधिक से अधिक कोशिश करना चाहिये।

अब भारतीय करन्सी का स्टर्लिंग से नाता तोड़ कर उसे स्वतन्त्र कर दिया गया है।

अभ्यास के प्रश्न

१. अच्छी करन्सी के क्या-क्या गुण हैं ? भारतीय उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।

What are the requisites of a good currency system? Explain with referance to India.

२. किसी देश की करन्सी का देश की आर्थिक समृद्धि में क्या महत्व है ? अपने देश की करन्सी का ज्ञान प्राप्त करने की क्या आवश्यकता है ?

What is the importance of currency in the economic sphere of a country? Why should we study our currency problems ?

३. भारतीय करन्सी के इतिहास पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिये।

Write a critical note on the currency history of India.

४. निम्नलिखित कमैटियों के परामर्शों को आलोचनात्मक दृष्टि से स्पष्ट कीजिये :—

(अ) फाउलर कमैटी
(ब) बैबिगंटन स्मिथ कमैटी
(स) चैम्बर लैन कमीशन
(क) हिल्टन यंग कमीशन।

Write critical notes on the recommendations of the following committes:—

(i) Fowler committee.
(ii) Babington smith committee.
(iii) Chamberlain commission.
(iv) Hilton young commission.

५. २ शि० अनुपात को विस्तार पूर्वक स्पष्ट कीजिये।

Discuss fully the 2sh. ratio.

६. भारतीय कागजी मुद्रा के इतिहास को संक्षेप में लिखिये।

Give a brief history of the paper currency system in India.

७. निम्नलिखित पर टिप्पणियां लिखिये:—

(अ) १ शिलिंग ४ पैंस तथा १ शिलिंग ६ पैंस अनुपात

(ब) गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व

(स) भारत से सोने का निर्यात।

Write short notes on the following:—

(i) 1s. 4d. vs. 1s. 6d. ratio.

(ii) Gold standard Reserve.

(iii) Gold Exports from India.

८. भारत की वर्तमान करन्सी पद्धति को विस्तार पूर्वक समझाओ।

Explain fully the present monetory system in India.

: ११ :

बैंक

बैंक एक संस्था होती है जो मुद्रा में व्यापार करती है। इस के अतिरिक्त बैंक के और भी कई महत्वपूर्ण कार्य होते हैं। बैंक किसी देश के घरेलू तथा बाहरी व्यापार में बहुत सहायता करते हैं। यह देश के उद्योग-धन्धों की भी नाना प्रकार से सहायता करते हैं। वास्तव में बैंक किसी देश की आर्थिक उन्नति ज्ञात करने के यन्त्र हैं। देश की आर्थिक उन्नति देश में बैंकों की उन्नति के साथ बन्धी है। आर्थिक उन्नति के लिये देश में बैंकों का संगठन शक्तिशाली तथा प्रबन्ध श्रेष्ठ होना चाहिये। देश में भिन्न-भिन्न वर्गों की आर्थिक आवश्यकता को पूरा करने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के बैंक होने चाहियें।

भारतवर्ष में एक श्रेष्ठ प्रबन्ध के अधीन बैंक पुराने काल में भी उन्नति करते रहे। भारतवर्ष के देशी बैंकर नरेशों की हर प्रकार से सहायता करते थे और देश के व्यापार तथा उद्योग की उन्नति में भाग लेते थे। हिन्दू राजा लोग तथा मुसलमान नरेश इन के महत्व को समझते थे। औरङ्गजेब ने, मानिकचन्द नाम के व्यक्ति को सेठ की पदवी दी। फर्रुखसयार ने भी फतहचन्द को 'जगत सेठ' की पदवी दी। इन देशी बैंकरों के महत्व को अङ्गरेज भी भली-भांति समझते थे। इस का एक

प्रमाण यह है कि १७५६ ई० में क्लाइव ने १७३७८ रु० व्यय करके जगत सेठ का स्वागत किया था। यह लोग कृषकों की भी सहायता करते थे और देश के अन्य उद्योग धन्धों की भी उन्नति का ध्यान रखते थे। उस समय भी हमारे देश में हुण्डियाँ प्रचिलित थीं। परन्तु मुगल राज्य के पतन के पश्चात, देश में एक केन्द्रीय शक्तिशाली राज्य स्थापित होने, समस्त देश में एक करन्सी पद्धति प्रचलित होने और देश में योरपियन ढंग पर बैंकों की उन्नति के कारण देशी बैंकरों का महत्व बहुत कम हो गया।

जब ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत में आई तो अच्छे बैंकों के न होने के कारण उन्हें बड़ी कठिनाई हुई क्योंकि इस कम्पनी का व्यापार विदेशों से था और विदेशी करन्सी में भुगतान की भी आवश्यकता पड़ती थी। इस कारण उन्होंने बड़े-बड़े एजन्सी हाउसेस स्थापित कर दिये जिन का मुख्य कार्य बैंक का कार्य था। इसके पश्चात योरोपियन ढंग पर बैंकों ने भारतवर्ष में जो उन्नति की उसका अध्ययन हम आगे के पृष्ठों में करेंगे।

भारत का मुद्रा बाज़ार

(Money Market)

जहाँ पूंजी का प्रबन्ध और रुपये पैसे का लेन देन होता है उसे मनीमार्केट कहते हैं। जो भी सोसाइटियां इस कार्य को करती हैं वे इसकी सीमा में आती हैं। भारतवर्ष में आवश्यकतानुसार बैंक प्राचीन काल में भी थे। जब कि इंगलैंड में वर्तमान साधनों पर बैंक इत्यादि चालू नहीं हुए थे, उस समय भी भारतवर्ष में रुपये पैसे का लेन-देन करने के लिये महाजन

थे। भारतवर्ष में निम्नलिखित प्रकार के बैंक और दूसरे रुपये पैसे का लेन-देन करने वाली सोसाइटियां हैं :—

१. **महाजन** (Indigenous Bankers) इस प्रकार के बैंक पहले से ही भारतवर्ष में स्थित हैं। देश के भिन्न-भिन्न भागों में इनको भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। उदाहरण के रूप में महाजन, साहूकार, बनिया, सर्राफ, चेटी, मुलतानी। यह लोग भारतवर्ष की कृषि, व्यापार और शिल्पकारी की भिन्न २ प्रकार से सहायता करते हैं और देश के लिये बहुत से लाभ-दायक और महत्त्वशाली कार्य करते हैं। १९३१ की गिनती के अनुसार इनकी संख्या तीन लाख से भी अधिक थी। देश के आन्तरिक व्यापार जो कि लगभग २५०० करोड़ रुपये के हैं, के अधिकतर भाग के लिये-रुपये पैसे का प्रबन्ध यह ही लोग करते हैं। भारतवर्ष के गांव और शहरों में बहुत अधिक संख्या में महाजन पाये जाते हैं। यह अकेले लोग भी हैं और कुछ मिले जुले परिवार, और साझे की फर्म भी यह कार्य करती हैं। यह सारे भारतवर्ष में फैले हुए हैं। देश के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न २ जाति के लोग महाजन का कार्य करते हैं। कलकत्ता, बम्बई, और देहली जैसे शहरों में भी महाजन पाए जाते हैं। बहुत से महाजन तो केवल अपना रुपया ब्याज पर देते हैं, परन्तु कुछ लोग रुपये के लेन देन के अतिरिक्त असली बैंक का भी कार्य करते हैं। अधिकतर यह लोग कृषि, शिल्पकारी, और छोटे २ सौदागर, जो गांव और शहरों या छोटे २ कस्बों के मध्य व्यापार करते हैं—उनको रुपया उधार देकर उनकी सहायता करते हैं। व्यापारी शहरों में सौदागरों की हुँडियां क्रय करते और भुनवाते हैं। फिर उन हुँडियों को कम कटौती देकर बैंकों में जाकर भुनवाते हैं। यह देश के भीतरी व्यापार

में भी काफी सहायता देते हैं। इनमें से कुछ लोग शिल्पकारी के लिये अधिक समय के लिये भी रुपया उधार देते हैं। यह देश के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। परन्तु वर्तमान प्रकार के बैंकों के स्थापित होने से उनकी महत्वता दिन पर दिन घटती जा रही है। यह भी शिकायत रही कि भारत के किसानों की हीन दशा के प्रमुख कारण महाजन हैं, परन्तु यदि महाजन न हों तो यह कार्य कठिन हो जाय कि वे रुपया पा सकें।

२. (Joint Stock Banks) इन बैंकों में वह सब बैंक सम्मलित हैं जो इंडियन कम्पनी एक्ट के आधीन रजिस्टर कराये गये हैं। सतरहवीं शताब्दी के शुरू में जब अंग्रेजों ने भारत में व्यापारी कारखाने खोले तो उन व्यापारी कारखानों के साथ २ कुछ महाजनी विभाग भी नियुक्त कर दिये। ईस्ट इंडिया कम्पनी के कुछ कर्मचारियों ने Agency Houses स्थापित किये। फिर अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में इंगलैंड और दूसरे देशों की बैंकिंग कम्पनियों ने भारतवर्ष में अपनी शाखाएं स्थापित कीं। सर्व प्रथम १७७० ई० में Bank of Hindustan स्थापित हुआ। शुरू में यह सब बैंक अंग्रेजों के आधीन थे। १८२६—३० के बीच Agency Houses को बहुत हानि पहुँची। १८३०—४० के मध्य में बैंकों की कुछ भी उन्नति न हुई। १८६० में सीमित दायित्व का नियम लागू हुआ। इसी काल में तीन प्रेसीडेंसी बैंक मद्रास, कलकत्ता, और बम्बई में स्थापित हुए। १८६२ से पहले सरकार स्वयं ही इनका प्रबन्ध करती थी। १८६३ में Bank of Upper India, १८६५ में Allahabad Bank, और १८७४ में Alliance Bank of India। १८६८ में बम्बई का बैंक टूट गया। सर्व प्रथम देशी ज्वाइन्ट स्टोक बैंक अवध कौमर्शयल बैंक १८८१ ई० में स्थापित हुआ। फिर १८६४ में पंजाब नेशनल बैंक। और १६०१ ई० में

Peoples' Bank स्थापित हुआ। उन्नीस सौ में भारतवर्ष में केवल ६ ज्वाइन्ट स्टौक बैंक थे। १६०५ की स्वदेशी हलचल ने बैंकों की उन्नति में काफी सहायता दी। करन्सी के बढ़ने और कीमतों के अधिक होने से इन बैंकों की और भी सहायता हुई और बहुत से नये बैंक स्थापित हो गये, परन्तु प्रबन्ध की खराबी और अन्य कारणों से कभी २ यह बैंक फेल होते रहे और इनकी कोई विशेष उन्नति न हुई।

यह बैंक देश के अन्दर के व्यापार की सहायता करते हैं। यह बैंक अधिकतर देश के भीतर ही लेन देन करते हैं। इनके अधिकतर ग्राहक देशी व्यापारी हैं। यह लोगों का रुपया भी जमा करते हैं और बिल और हुन्डियों का रुपया भी देते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान को रुपया भी भेजते हैं। कुछ बैंकों की शाखाँए और एजन्सियां विदेशों में भी हैं। यह बैंक सौदागरों को रुपया भी उधार देते हैं। इस समय भारत में ३५२८ बैंक हैं। लड़ाई के मध्य में ७१३ बैंकों की नई ब्राँचें खोली गईं। इनमें से २५८ ऐसी हैं जो उन थानों पर खोली गईं जहां पर पहले कोई बैंक न था। प्रसिद्ध बैंक, सैन्ट्रल बैंक, आफ इन्डिया, बैंक आफ इन्डिया, पंजाब नैशनल बैंक, बैंक आफ बड़ौदा, बैंक आफ मैसूर, भारत बैंक इत्यादि हैं। १६३६ में और देशों के मुकाबले में भारतवर्ष में बैंकों की निम्नलिखित दशा थी :—

	वर्गमील प्रति बैंकिंग आफिस	जन संख्या के अनुसार प्रति बैंक	जमा की रक़म शिलिंगों में
भारतवर्ष	१३६२	२७६,०००	७ रुपया
इंगलैंड और देश	५.७६	३६००	११६४ शिलिंग
फ्राँस	१०२.७	२०,०००	१६५ शिलिंग
अमरीका	२४२.६	७६००	१३१७ शिलिंग

३. विदेशी एक्सचेन्ज बैंक—इन बैंकों के हैड क्वाटर दूसरे देशों में हैं। वर्तमान लड़ाई से पहले लगभग १८ विदेशी बैंक भारतवर्ष में काम करते थे और इनकी कुल ६६ शाखाएं देश के भिन्न २ भागों में फैली हुई थीं। परन्तु अब कुछ देशों के बैंकों ने काम बन्द कर दिया है। अधिक तर यह बैंक देश की बन्दरगाहों में पाए जाते हैं। इन बैंकों के मालिक दूसरे देशों के लोग हैं। इन बैंकों का विशेष कार्य देश के विदेशी व्यापार की सहायता करना है। जब भारतवर्ष के व्यापारी बाहर से माल मंगाते हैं तो यह उनसे रुपये वसूल करके बाहर के माल बेचने वाले को दूसरे देश के सिक्कों में चुकाते हैं। इसी प्रकार यह विदेशी खरीदारों से माल का मूल्य उनके सिक्कों में वसूल करके भारतवर्ष के माल बेचने वालों को लाकर उसे रुपये में बदल देते हैं। यह एक देश से दूसरे देश में रुपये भेजने का कार्य भी करते हैं। यह कार्य हुन्डियों (Bills of Exchange) द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त देश के आन्तरिक व्यापार में भी यह भारतीय बैंकों का मुकाबला करते हैं। क्योंकि इनको आर्थिक अवस्था पुष्ट है इसलिये हिन्दुस्तानी बैंक इनके मुक़ाबले में जीत नहीं सकते। दुख की बात है कि अब तक कोई भी देशी बैंक इस तरह का नहीं है। इस प्रकार के प्रसिद्ध बैंक निम्नलिखित हैं:—मरकैन टाइल बैंक, गिरिन्ड-ले कम्पनी, टामस कुक एन्ड सन्स, लाईडस बैंक, याको हामा बैंक, हाँग कांग शिंघाई बैंक, नैशनल बैंक न्यूयार्क आदि।

४. इम्पीरियल बैंक—रिजर्व बैंक के स्थापित होने से पहले यह बैंक सरकारी बैंक समझा जाता था। यह बैंक १६२१ में स्थापित हुआ था। यह बैंक पूरा सरकारी बैंक न था क्यों कि यह व्यापार सम्बन्धी कार्यों में और बैंकों का मुक़ाबला

करता था। सरकार की ओर से जो सुविधाएं इस बैंक को मिली हुई थीं उनसे लाभ उठाकर यह और बैंकों से मुक़ाबला कर सकता था। इसलिये दूसरे बैंक इस पर भरोसा नहीं करते थे और नाहीं इससे कोई सहायता लेना चाहते थे। इस लिये इसको आधा सरकारी बैंक कहते थे। १९३४ के पश्चात यह सरकारी बैंक नहीं रहा। परन्तु फिर भी जिन स्थानों पर रिज़र्व बैंक की कोई शाखा नहीं है वहाँ यह उसकी एजेन्सी का कार्य करता है। इसका रिज़र्व बैंक से कुछ सम्बन्ध भी है। अब रिज़र्व बैंक के बाद यही सब से बड़ा बैंक है। यह बैंक भी व्यापारियों को काफ़ी सहायता देता है। इसकी लगभग १६३ शाखाएँ हैं। देश के भीतरी व्यापार में यह काफ़ी सहायता पहुँचाता है।

५. रिजर्व बैंक—यह देश का सरकारी बैंक है। इसकी पूंजी ५ करोड़ रुपया है। यह देश की केन्द्रीय और प्रान्तों की सरकारों का सरकारी बैंक है। यह उनका रुपया जमा भी करता है और उनके द्वारा रुपया चुकाता भी है। दूसरे यह भारतवर्ष में नोट चलाता है और नोटों की रकम नक़द रुपयों में देने का उत्तरदायित्व लेता है। यह भारतवर्ष के बाकी सब बड़े २ बैंकों की जाँच पड़ताल भी करता है। इसके अतिरिक्त यह एक शिलिंग ६ पैंस के अनुपात को स्थिर रखने का कार्य भी करता है। इसकी कई सर्किलें हैं। यह बैंक १९३४ में स्थापित हुआ था।

६. पारस्परिक सहायक बैंक—यह भी बहुत लाभप्रद सिद्ध हुए हैं। १९०४ के पश्चात् भारतवर्ष में बहुत सी कोओपरेटिव सोसाइटियां स्थापित हुई और इस प्रकार के बैंक भी स्थापित हुए। यह गांव और शहरों में पाये जाते हैं।

गांव में ।यह् अधिकतर किसानों की सोसाइटियां हैं। इनके द्वारा किसानों और सदस्यों को सुगमता से कम ब्याज पर रुपया उधार मिल जाता है। इन सोसाइटियों की सहायता जिले के बैंक करते हैं और प्रान्तों के बैंकों की सहायता रिजर्व बैंक करता है।

७. भूमि बन्धक बैंक—(Land Mortgage Banks) इस प्रकार के बैंकों ने भारतवर्ष में कोई विशेष उन्नति नहीं की। बम्बई में इस प्रकार के १४ बैंक हैं। बंगाल में १५, आसाम में ५, मद्रास में ६५ प्राइमरी और एक सैंट्रल बैंक है। यह् बैंक पुराने ऋण को चुकाने तथा भूमि को अच्छा बनाने और भूमि खरीदने के लिये रुपया देते हैं। यह् भूमि के मूल्य के ५०% मूल्य तक ऋण देते हैं। ऋण के समय की सीमा १६ से ३० साल तक है। ब्याज की दर ६ और ९ प्रतिशत के मध्य में है। सब बातों की पूरी तरह् से जांच पड़ताल करने के बाद ऋण दिया जाता है।

८. डाकखाने का सेविंग बैंक—(Post Office Savings Bank) सबसे प्रथम कलकत्ता, बम्बई, और मद्रास में १८३३ और १८३५ में सेविंग बैंक विभाग डाकखानों में खोला गया। १८९० में इसमें और उन्नति की गई और १८९६ तक यह् देश के समस्त भागों में फैला दिये गये। अब सेविंग बैंक का काम डाकखाने के काम का भाग है। रुपया बचाने और जमा करने की सुविधाएँ निम्नलिखित तरीकों से पहुँचाई जाती हैं: (१) सेविंग बैंक में रुपये जमा करके। (२) पोस्टल कैश सर्टीफिकेट के द्वारा। (३) गवर्नमेंट सीक्यूरिटियों का क्रय-विक्रय (४) राज्य के नौकरों के लिये आयु का बीमा कराना।

इससे जन-साधारण को काफी लाभ हुआ। १९०० में सेविंग

बैंक में कुल रुपया सिर्फ चार करोड़ था। १६३८ में यह ७७ करोड़ हो गया। १६३८ में डाकखाना यह काम २३७०० स्थानों पर करता था और रुपया जमा करने वालों की संख्या कोई तीन लाख से अधिक थी। प्रति एक जमा १७० रुपये थी।

एक साल में ७५० रुपये जमा करा सकते हैं। कुल शेष ५०००, नाबालिग़ के लिये अधिक से अधिक रकम जो जमा की जा सकती है एक हज़ार रुपये हैं। लगभग ४० गांव में एक सेविंग बैंक है। कहीं २ तो एक गांव से दस और बारह मील की दूरी पर सेविंग बैंक है। इन सब बातों के होते हुए भी प्रति एक (जन-संख्या के अनुसार से) जमा कुल २ रुपये है। और देशों की अपेक्षा भारतवर्ष बहुत पीछे है। निम्न-लिखित चार्ट से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जायेगी:—

कनाडा	भारतवर्ष	इटली	जापान	न्यूज़ीलैन्ड	बर्तानिया	अमरीका
६	२	६२	४७	४५६	६८	२४

पोस्ट आफिस सेविंग बैंक को बहुत अधिक बढ़ाना चाहिये और भारतवर्ष के प्रत्येक गाँव में इस तरह की सुविधाएँ पहुंचानी चाहियें।

(६) इसके अतिरिक्त इन्शोरैन्स कम्पनियाँ भी यह काय कुछ सीमा तक करती हैं।

भारत के मनीमार्केट की त्रुटियाँ—ऊपर के वर्णन के पश्चात् अब भारतवर्ष की मनीमार्केट की कमियों को समझाना चाहिये। प्रथम भारतवर्ष में बैंकों की उन्नति की आवश्यकता के अनुसार नहीं हुई। दूसरे भिन्न भिन्न प्रकार के बैंक बहुत कम हैं। शिल्पकारी की उन्नति के लिये अधिक समय तक ऋण देने के लिये बहुत कम बैंक हैं। बल्कि हैं ही नहीं। अलग २ जरूरतों को पूरा करने के लिए

सब प्रकार के बैंक होने चाहियें। तीसरे बैंकों की शाखायें बहुत कम हैं। चौथे पूंजी की आवश्यकता का पूरा करने के लिये रुपये की मात्रा नहीं बढ़ाई जा सकती। इसके अतिरिक्त सब प्रकार के बैंक एक दूसरे से ठीक प्रकार से सम्बन्ध नहीं रखते और इस प्रकार बैंकों का प्रबन्ध भी ठीक नहीं है। भिन्न २ स्थानों पर ब्याज की दर और हुन्डियों का रुपया देने के लिए डिसकाऊन्ट की दर भी भिन्न है। इन सब विकारों को दूर करके बैंकों की दशा काफी सीमा तक सुधारी जा सकती है।

भारतवर्ष में पूंजी का अभाव—भारतवर्ष में पूँजी के अभाव के निम्नलिखित कारण हैं :—

१. साधारण जनता को रुपया भिन्न २ कार्यों में लगाने के लिये ठीक सलाह देने का उचित प्रबन्ध नहीं है।

२. बहुत सी कम्पनियों के फेल हो जाने के कारण भी लोग भिन्न २ कार्यों में रुपया लगाने से घबराते हैं।

३. कुछ मनुष्य व्यापार में रुपया लगाने की अपेक्षा भूमि तथा आभूषणों में रुपया लगाना उचित समझते हैं।

४. भारतवर्ष में बीमा कम्पनियाँ भी इस कार्य में विशेष सहायता नहीं देतीं।

५. भारत सरकार की नीति के कारण भी लोग अधिक रुपया व्यापार में लगाना नहीं चाहते, क्योंकि देश की शिल्प-कारियों की उन्नति में सरकार ने अब तक कोई दिलचस्पी नहीं ली।

६. भारतवर्ष के लोगों में रुपये को भूमि में गाढ़ कर रखने की आदत प्रचलित है।

आशा है अब यह बुराइयां दूर हो जायेंगी और देश में पूँजी पर्याप्त हो सकेगी।

भारतवर्ष में बैंकों का फेल होना—यदि भारतवर्ष के बैंकों के इतिहास का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि समय २ पर भारतवर्ष में बैंक फेल होते रहे। निम्नलिखित संख्या से इस बात का ज्ञान भली भाँति हो जायेगा :—

बैंकों के फेल होने की संख्या :—

१६१३-१४	५०
१६२०-२५	५३
१६२१-३०	१४३
१६३१-३६	२३८

दूसरे महायुद्ध के पश्चात् भी भारत में कुछ बैंक टूटे हैं। इस अधिक संख्या में बैंकों के टूटने के निम्नलिखित कारण है :—

१. प्रारम्भ में अनुभव न होने के कारण बहुत बैंक टूट गये और इस बात की सम्भावना भी थी।
२. बैंकों के रजिस्टर्ड सब्सक्राइब्ड और प्राप्त हुई पूँजी में बहुत अन्तर होता था।
३. साधारण मनुष्यों को जाल में फंसाने के लिये धनी मनुष्यों के नामों को बैंकों के नाम के साथ मिला लिया जाता था। हिसाब किताब ठीक प्रकार से नहीं लिखा जाता था, और ऋण भी बिना किसी अच्छी सिक्योरिटी के दे दिया जाता था। डायरेक्टर लोग अपने मित्रों को बिना किसी सैक्योरिटी के ही रुपया उधार दे देते थे। इंडियन स्पीशी बैंक के टूटने का यही कारण था।

४. सट्टेबाजी और बिना लाभ न होते हुए भी लाभ को विभाजित करने के कारण भी बहुत से बैंक टूट गये।

५. बहुत से बैंकों ने एक ही कम्पनी को अधिक समय के लिये अधिक रुपया दे दिया और इस कम्पनी के टूटने पर बैंक भी टूट गया। Peoples बैंक भी इस के कारण दो बार टूटा।

६. लापरवाही से भी बैंक टूट गये।

७. लोगों के जमा किये हुए रुपये का पर्याप्त भाग हर समय नकदी के रूप में बैंक अपने पास नहीं रखते थे। क्योंकि भारतवर्ष के लोगों में बैंकिंग की आदत कम थी इस लिये उनके लिये ज्यादा रुपया आवश्यक था जिससे कि मांग होते ही रुपया मांगने वालों को दे दिया जा सके।

बैंक का विधान—भारतवर्ष में समय-समय पर बैंकों के टूटने के कारण लोगों का बैंकों से विश्वास कम हो गया था। इस कारण प्रारम्भ से ही एक बैंक विधान की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी और फिर इस के लिये प्रयत्न भी किये गये परन्तु सब असफल रहे। फिर इसके पश्चात् भारतवर्ष में बैंकों की उन्नति के लिये और वर्तमान बैंकों की त्रुटियों और कमियों को दूर करने के लिये सर जैम्स टेलर ने बैंक के विधान की एक योजना रखी, जिसमें निम्नलिखित बातें सम्मिलित थीं :—

(१) यह विधान उन सब बैंकों पर लागू होगा जो लोगों का रुपया जमा करते हैं और जिन से रुपया चैक द्वारा निकाला जाता है।

(२) जो कम्पनी भी ऐसा काम करती होगी उसको अपने नाम के साथ बैंक या बैंकर और लगाना पड़ेगा। ऐसी कम्प-

नियों का कोई भी मनुष्य मैनेजिंग एजेन्ट नहीं बन सकेगा और ना ही कोई दूसरी कम्पनी इनकी मैनेजिंग ऐजेन्ट बन सकेगी।

(३) मद्रास, बम्बई और कलकत्ता जैसे शहरों में ब्रांच स्थापित करने के लिये कम से कम पांच लाख प्राप्त की हुई पूंजी होगी और दूसरे स्थानों पर ब्रांच खोलने के लिये जहां और दो बैंकों की ब्रांच पहले से स्थापित हो बैंक की प्राप्ति की हुई पूंजी कम से कम पचास हजार रुपया होना आवश्यक है। प्रत्येक बैंक की प्राप्त की हुई पूंजी (Paid Up Capital) न्यूनतम ५० हजार रुपये कर दी गई।

(४) प्रत्येक बैंक को अपने वर्तमान दायित्व का ३० प्रतिशत गवर्नमैन्ट सेक्योरिटी के रूप में रखना होगा।

(५) बैंकों के टूट जाने पर उनके कार्य को बन्द करने का कार्य भी ठीक होना चाहिये और जल्द हो जाना चाहिये।

(६) पारस्परिक सहायक बैंकों पर यह विधान लागू न होगा। भारतवर्ष में ऐसे विधान की आवश्यकता है। इस भांति के विधान द्वारा भारतवर्ष के बैंकों की हालत को काफ़ी अच्छा बनाया जा सकता है।

बैंकों की कुछ त्रुटियां तो १९३६ ई० के कम्पनी एक्ट के पास होने से दूर हो गई थी।

देशी बैंकर —

महाजन उन मनुष्यों तथा व्यापारियों या अन्य प्रकार की संस्थाओं को कहते हैं जो निजी रूप में रुपये के लेन-देन का कार्य प्रौढ़ रीति से करते हैं। देशी या घरेलू बैंकर्स में वह सब मनुष्य या संस्थायें भी सम्मिलित हैं जो रुपया उधार देने के अतिरिक्त मनुष्यों का रुपया जमा करते हों तथा हुण्डी इत्यादि

का क्रय-विक्रय भी करते हों। भारतवर्ष में घरेलू बैंकर्स प्राचीन काल से कार्य कर रहे हैं। देश के विभिन्न भागों में उन्हें पृथक्-पृथक् नामों से पुकारा जाता है। देश के समस्त भागों में यह काम करने वाले प्रायः बनिये, महाजन, साहूकार तथा सर्राफ़ आदि कहलाते हैं। आजकल ग्रामों में रुपये का प्रबन्ध इन्हीं द्वारा किया जाता है। इनका रुपये के लेन-देन का यह कार्य पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। यह पिता से पुत्र के पास चला आता है और प्रायः इस कार्य में लगी हुई समस्त पूंजी उसी कुटुम्ब की होती है। रुपया उधार देना तो उनका प्रधान कार्य है, परन्तु मनुष्यों का रुपया जमा करने की रीती बहुत कम है। इनकी एक और विशेषता यह भी है कि वह केवल लेन-देन का ही कार्य नहीं करते वरन् इसके साथ-साथ अन्य भाँति के व्यापार भी करते रहते हैं।

घरेलू-बैंकर्स कृषकों व किसानों को रुपया उधार देते हैं। वह यह रुपया इन मनुष्यों की जायदाद इत्यादि की ज़मानत पर उधार देते हैं। वह हुण्डी का क्रय-विक्रय भी करते हैं। देशी व्यापारियों को रुपया देते हैं और देश की उत्पादित वस्तुओं को मंडियों में लाने में सहायक होते हैं। इनसे घरेलू उद्योग को भी बड़ी सहायता मिलती है। वास्तव में ग्रामों में रुपया देने के केवल साधन यही हैं। किसानों का तो एक मात्र यही बैंक है। यह मनुष्य अधिकतर सट्टा आदि भी करते हैं।

किन्तु घरेलू बैंकर्स के इस कार्य में अनेक दोष हैं। उनको वास्तव में बैंक नहीं कहा जा सकता। एक बैंक की विशेषता यह होती है कि उसमें मनुष्यो का रुपया जमा होता है और हुण्डी का क्रय-विक्रय होता है, किन्तु महाजन या देशी बैंक यह दोनों कार्य बहुत कम मात्रा में होते हैं। क्योंकि इनमें मनु-

ष्यों का रु० जमा नहीं होता इसलिये इनकी पूंजी थोड़ी होती है और वह मनुष्यों को उनकी आवश्यकतानुसार रुपया उधार नहीं दे सकते। इसके अतिरिक्त घरेलू बैंकर्स किसी कार्य का नियम दृढ़ हिसाब नहीं रखते। यह मनुष्यों से बहुत अधिक व्याज लेते हैं। इसके अतिरिक्त रुपये के लेन-देन के साथ अन्य प्रकार का व्यापार करने के परिणामस्वरूप यह किसी भी कार्य को भली प्रकार सम्पादित नहीं कर सकते। उनको किसी भी भांति का परामर्श प्राप्त नहीं होता और वह प्रत्येक अवसर पर स्वेच्छानुसार कार्य करते हैं। यह देश की आर्थिक दशा को सुधार सकते हैं, किन्तु इसके लिये उनका नियमानुसार कार्य करना आवश्यक है।

इसलिये इनके दोष ज्ञात होने के अनतर यह पता चलता है कि इनकी दशा में सुधार हो सकता है। इसके लिये सर्वप्रथम इन्हें साधारण बैंकों के समान मनुष्यों का रुपया जमा करना चाहिये। हुन्डियों का क्रय-विक्रय भी करना चाहिये और मनुष्यों को अपना रुपया चैक द्वारा निकालने की सुविधा भी देनी चाहिये। इनको अपना लाभ-हानि खाता एवं चिट्ठा भी प्रतिवर्ष मनुष्यों की जानकारी के लिये अवश्य छपाना चाहिये। व्याज भी कम करना चाहिये और रुपया केवल उन्हीं मनुष्यों को देना चाहिये जो इस से और रुपया कमाना चाहते हों। इनके साथ उनको अपना व्यापार एवं रुपये के लेन-देन के अतिरिक्त सम्पूर्ण अन्य कार्य त्याग देने चाहियें। इनको अपना सम्बन्ध रिज़र्व-बैंक से निश्चय ही स्थापित करना चाहिये। इससे वह उन स्थानों में रिज़र्व-बैंक का कार्य कर सकते हैं जहां रिज़र्व बैंक की कोई शाखा न हो। अभी तक इस विषय पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। अन्य बैंकों को भी उनकी हुण्डियों के क्रय-विक्रय में सुविधाऐं देनी चाहिये। इस

कारण वह कृषकों व बैंकों के मध्य एक लाभप्रद अंग बनकर देश की आर्थिक दशा को बहुत सुधार सकते हैं।

यह घरेलू बैंक अन्य रजिस्टर्ड और रिज़र्व-बैंक से सम्बन्धित बैंकों से बहुत भिन्न हैं। सर्व प्रथम अन्तर जो इनमें तथा अन्य बैंकों में होता है वह यह है कि वह तो सब रजिस्टर्ड होते हैं तथा नियमानुसार कार्य करने के अतिरिक्त अपना लाभ-हानि-खाता और चिट्ठा मनुष्यों की जानकारी के लिये प्रति वर्ष छापते हैं, परन्तु यह बातें घरेलू—बैंकों में नहीं पाई जाती। इनके अतिरिक्त घरेलू या देशी बैंक अपने निजी रुपये से कार्य करते हैं और प्रायः लोगों से रुपया उधार नहीं लेते अर्थात् मनुष्य इनमें अपना रुपया जमा नहीं करते। एक अन्य अन्तर यह भी है कि देशी बैंक रुपये के लेन-देन के साथ साथ व्यापार भी करते हैं। किन्तु अन्य बैंकों में केवल बैंक का ही कार्य किया जाता है। घरेलू-बैंकों में मनुष्यों को रुपया उधार देते समय उनकी जमानत इत्यादि पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता और ना ही यह ध्यान रक्खा जाता है कि रुपया किस कार्य के लिये उधार लिया जा रहा है। जहां तक अन्य बैंकों का सम्बन्ध है वह इस बात का ध्यान रखते हैं। प्रत्येक मनुष्य को रुपया उधार देते समय उस से अच्छी जमानत ली जाती है और यह ऐसी होती है जो सरलता से विक्रय की जा सके। घरेलू बैंकों का कार्य अत्यन्त सादा होता है और इसके प्रबन्ध में इन्हें अधिक व्यय नहीं करना पड़ता। परन्तु वर्तमान बैंकों में बिल्डिंग, फर्नीचर और ऐसी वस्तुओं पर असंख्य रुपया व्यय किया जाता है। इन दोनों प्रकार के बैंकों में एक अन्तिम अन्तर यह भी होता है कि घरेलू-बैंक अत्यधिक ब्याज लेते हैं और प्रचलित बैंक बहुत कम ब्याज लेते हैं।

रिजर्व बैंक—रिजर्व बैंक आफ इण्डिया १९३४ ई० में स्थापित किया गया। इसके स्थापित होने से ही भारतवर्ष में वास्तविक रूप से एक केन्द्रीय (Central) बैंक को स्थापना हुई। रिजर्व बैंक ने १ अप्रेल सन १९३५ ई० से अपना कार्य प्रारम्भ किया। देश की करन्सी का प्रबन्ध इस बैंक के वितरण भाग (Issue Department) ने अपने हाथ में ले लिया है।

भारत सरकार के पास जो गोल्ड स्टैन्डर्ड रिजर्व (Gold Standard Reserve) और पेपर करन्सी रिजर्व थे, वह दोनों रिजर्व बैंक को दे दिये गये। इस बैंक का बैंकिंग डिपार्टमेन्ट तीन मास पश्चात् खोला गया। इस विभाग ने दूसरे बैंकों का रुपया जमा किया।

भारतवर्ष को एक केन्द्रीय बैंक की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता को रिजर्व बैंक ने पूरा किया। इस बैंक के द्वारा देश की करन्सी और बैंक नीति को संगठित किया गया। इस से व्यापार को बहुत लाभ पहुंचा। रिजर्व बैंक के पूर्व यह कार्य इम्पीरियल बैंक औफ इण्डिया (Imperial Bank of India) एक छोटी मात्रा में करता था। परन्तु जो अधिकार रिजर्व बैंक को सौंपे गये वह इम्पीरियल बैंक को प्राप्त नहीं थे, क्योंकि इम्पीरियल बैंक एक साधारण व्यापारिक बैंक भी था और यह अन्य व्यापारिक बैंकों से मुकाबला करता था। यदि इसको केन्द्रीय बैंक के समस्त अधिकार सौंप दिये जाते तो व्यापारिक बैंकों को बहुत हानि पहुँचाने का डर था। इसके अतिरिक्त इम्पीरियल बैंक के चार्टर में भी बहुत से आवश्यक परिवर्तन करने पडते।

१९२० ई० के विधान के अनुसार इम्पीरियल बैंक आधा सरकारी बैंक था। यह व्यापारिक कार्यों के साथ २ सरकारी

काम भी करता था इसलिये इसके काम पर बहुत रुकावटें लगी हुई थीं। इसलिये आवश्यक समझा गया कि नया केन्द्रीय बैंक स्थापित करके इम्पीरियल बैंक के कार्य पर से रुकावट हटाली जाय और इस प्रकार इस को देश के बैंकों को उन्नति देने का मौका दिया जाय। इसलिये रिजर्व बैंक अर्थात् एक बिलकुल नये केन्द्रीय बैंक का स्थापित होना बहुत आवश्यक हो गया। एक दूसरा प्रश्न यह था कि यह नया बैंक हिस्सेदारों का बैंक हो या सरकारी बैंक होना चाहिये। एक ओर यह सलाह दी गई कि केन्द्रीय बैंक सरकारी बैंक न होना चाहिये बल्कि हिस्सेदारों का बैंक होना चाहिये जिससे यह सरकारी बन्धनों से छुटकारा पाकर अपना कार्य सरलता से पूरा कर सके। सरकारी निरीक्षण आवश्यक है परन्तु यदि यह बहुत अधिक हो जावे तो इससे लाभ होने की अपेक्षा हानि होती है। परन्तु दूसरे पक्ष की यह राय थी कि केन्द्रीय बैंक सरकारी बैंक होना चाहिये, जिससे इस पर सब लोगों का विश्वास हो जाये। यह विश्वास ऐसे केन्द्रीय बैंक के लिये बहुत आवश्यक है जिसको करन्सी नोट छापने का भी अधिकार प्राप्त हो और इसको अपने केन्द्रीय बैंक के काम के लिये सरकार के सामने भी उत्तरदायी होना चाहिये। इसलिये अधिक राय यह थी कि केन्द्रीय बैंक एक सरकारी बैंक होना चाहिये। परन्तु गवर्नमेंट ने इस रूप में इसको स्वीकार नहीं किया और इस बैंक को हिस्सेदारों का बैंक बनाने का फैसला किया।

रिजर्व बैंक की शुरू की पूंजी पांच करोड़ रुपये थी, जो कि सौ, सौ रुपये के हिस्सों में बंटी हुई थी। इसके अलग २ रजिस्टर बम्बई, कलकत्ता, देहली, मद्रास और रंगून में रक्खे गये। एक हिस्सेदार के लिये यह आवश्यक है कि वह भारतवर्ष में रहता हो। रिजर्व बैंक के ऑफिस बम्बई, कलकत्ता,

देहली, मद्रास और रंगून में हैं। इसकी एक शाखा लन्दन में भी है। रिजर्व बैंक को अपनी शाखायें भारतवर्ष के किसी भी भाग में खोलने का अधिकार प्राप्त है परन्तु भारतवर्ष से बाहर शाखा खोलने के लिये गवर्नर-जनरल की आज्ञा लेनी आवश्यक होती है। रिजर्व बैंक की प्रबन्ध कमेटी के मैम्बरों की संख्या सीमित होती है।

रिजर्व बैंक निम्नलिखित कार्य करता है:—

(१) यह सरकार, बैंकों और साधारण मनुष्यों का रुपया जमा करता है परन्तु इस पर कोई ब्याज नहीं देता। यह काम दूसरे बैंकों के लाभ का विचार करते हुए किया जाता है। वास्तव में एक केन्द्रीय बैंक को देश के दूसरे व्यापारी बैंको का मुकाबला नहीं करना चाहिये और इसलिये यदि यह रुपया जमा करने पर ब्याज भी देने लगे तो यह सम्भव है कि यह दूसरे बैंकों से मुकाबला करे और इस प्रकार उनको हानि पहुंचाये।

(२) यह हुन्डियों और बिलों का समय से पहले भुगतान करता है और कमीशन काट कर उनका नक़द रुपया देता है जो कि असली व्यापारिक आवश्यताओं से लिखे गये हों। किन्तु इन पर दो हस्ताक्षर होने चाहियें और इनमें से एक किसी शैडयुल्ड बैंक के होने चाहियें। इसके अतिरिक्त ऐसी हुन्डियों का समय नब्बे दिन तक का होना चाहिये। जो हुन्डियाँ कृषि सम्बन्धी कार्यों से लिखी जाती हैं उनका समय नौ मास तक हो सकता है।

(३) यह Scheduled Bank के साथ स्टरलिंग करन्सी का क्रय विक्रय करता है परन्तु यह एक लाख रुपये से कम की रकम के लिये नहीं किया जाता।

(४) यदि Scheduled Bank के साथ कोई व्यापार हुआ हो तो यह उसकी हुन्डियां इंगलैंड में बेचता और माल लेता है।

(५) यह संतोषजनक जमानत लेने पर रियासतों, निश्चित बैंकों और कोपरेटीव बैंकों को रुपया कर्ज देता है। यह रुपया उनसे इसे अधिक से अधिक ६० दिन के बाद मांगने पर मिल जाना चाहिये।

(६) यह गवर्नरजनरल और गवर्नमेंट को भी रुपया देने का प्रबन्ध करता है। परन्तु यह रुपया ६० दिन के अन्तर्गत वापिस हो जाना चाहिये।

(७) यह सरकार की जमानतें (Securities) एक निश्चित रकम तक क्रय विक्रय करता है।

(८) यह सोना चांदी क्रय-विक्रय करने और जनता के कर्जों का प्रबन्ध करने में गवर्नरजनरल के एजेन्ट का कार्य करता है।

(९) यह प्रदेशों के केन्द्रीय बैंकों से ऐजन्सी कार्य के समझौते करता है।

(१०) निश्चित या दूसरे बैंकों से एक मास तक के लिये ऋण लेता है।

(११) कुछ शर्तों के आधीन देश के लिये करंसी नोट छापता है।

(१२) देश की आर्थिक अवस्था को वश में रखने के लिये कभी २ बाजार में भी काम करता है। इन्हें Open Market Operations कहते हैं।

(१३) यह दर्शनी और मिती हुन्डी भी लेता है।

परन्तु इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे काम हैं जिनके करने की इसको आज्ञा नहीं है। इसको किसी व्यापारी बैंक आदि

से मुकाबला करने की आज्ञा नहीं है। यह किसी व्यापार सम्बन्धी कार्य में भाग नहीं ले सकता। इसके अतिरिक्त न तो रिज़र्व बैंक किसी दूसरी कम्पनी के भाग मोल ले सकता है और न ही उन भागों की जमानत पर रुपया उधार दे सकता है।

यह बैंक किसी ऐसी सम्पत्ति या माल पर उधार नहीं दे सकता जो आसानी से न बेची जा सके। यह लोगों का रुपयां जमा करके उसके ऊपर उनको ब्याज नहीं दे सकता, और न ही किसी अधिक समय के लिये कोई हुन्डी लिख सकता है।

जब से रिज़र्व बैंक ने अपना काम आरम्भ किया है इसने देश की आर्थिक दशा को बहुत अधिक लाभ पहुँचाया है। इसने देश के बैंकों और करंसी में अच्छा सम्बन्ध स्थापित कर दिया है जिस से देश को बहुत अधिक लाभ पहुँचा है। यह अन्य बैंकों को बहुमूल्य राय देता है और समय पड़ने पर उनकी सहायता भी करता है। परन्तु उसके साथ २ इन बैंकों के काम की देख भाल भी भली भांति करता है।

इसके परिणाम स्वरूप अन्य बैंकों का कार्य भी बहुत उन्नति कर गया है परन्तु घरेलू बैंकों पर इसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। इसने केन्द्रीय बैंक के कार्य को भली प्रकार चलाया है। ब्याज की दर कम करने में भी यह बैंक बहुत सफल हुआ है। इन सब बातों के होते हुये भी रिज़र्व बैंक भारतवर्ष में एक अच्छा बिल बाजार नहीं बना सका।

महाजन तथा बैंकर

आधुनिक काल में बैंकों में कुछ उन्नति हो चुकी है। इन्होंने व्यापार व उद्योग को अति लाभ पहूँचाया है। इनके कार्य निम्नलिखित है :—

(१) एक वर्तानमान बैंक जनता से रुपया उधार लेता है।

यह रुपया इस भांति लिया जाता है कि मनुष्य बैंक के साथ अपना खाता खोल लेते हैं। यह खाता एक नियत समय के लिये या थोड़े समय के लिये खोला जा सकता हैं। खाते पर रुपया जमा रखने के समयानुकूल ब्याज दिया जाता है।

(२) जिन व्यक्तियों को आवश्यकता होती है उनको बैंक रुपया उधार देता है। यह रुपया किसी अच्छी जमानत पर उधार दिया जाता है और लेने वाले से इसका ब्याज लिया जाता है। यह रुपया जायदाद अथवा माल की जमानत पर प्राय: उधार दे दिया जाता है।

(३) बैंक हुण्डियों का क्रय-विक्रय करता है। इससे उन लोगों को तुरन्त रुपया मिल जाता है जिन्हें आवश्यकता हो।

(४) यह अपने ग्राहकों का कार्य करता है और उनके लिये उनके चैक तथा हुण्डी आदि की रकम वसूल करता है यह उनकी ओर से दूसरे लेनदारों को रुपया भी देता है।

(५) यह देश के व्यापार की उन्नति में सहायक होता है। और इसके लिये रुपये का प्रबन्ध करता है।

(६) यह अपने ग्राहकों को व्यापारी परामर्श देता है तथा उनको अपना रुपया अत्यन्त सुरक्षित रूप में लगाने के साधन बताता है। इसका कारण यह है कि बैंक को बाजार की स्थिति का प्रति क्षण पता रहता है।

(७) बैंक अपने ग्राहकों को अपने हिसाब में से रुपया निकालने के लिये चैक की सुविधा देता है। यह चैक बैंक से रुपया निकालने के लिये बैंक के नियमानुकूल प्रयोग किये जा सकते हैं। किन्तु चैक का साधन अभी प्रसिद्ध नगरों ही में प्रचिलित है।

(८) बैंक प्राय: अपने ग्राहकों के आभूषण व अन्य अमूल्य वस्तुएं भी बड़े सुरक्षित रूप में रखता है।

(६) कभी कभी दो पक्षों में किसी प्रकार का आर्थिक भ्रम होने पर भी बैंक एक न्यायकारी का कार्य करता है। बैंक में हिसाब खोलने से ग्राहकों की आर्थिक दशा अधिक विश्वासनीय हो जाती है।

यह कार्य तो वर्तमान बैंक के होते हैं। अब हमको यह देखना है कि जो महाजन या साहूकार भारतवर्ष के ग्रामों में रुपये का लेन-देन करते हैं, उनकी क्या दशा है ? क्या वह इस कार्य को भली प्रकार सम्पादित कर रहे हैं ? क्या वह वास्तव में इस कार्य के योग्य हैं ? और क्या हम उन्हें वास्तविक रूप में बैंक कह सकते हैं ?

भारतीय महाजन या साहूकार आजकल भारत के ग्रामों में रुपये के लेन-देन के लिये केवल एक ही साधन है। ग्रामों में या उन स्थानों पर जहां वर्तमान बैंकों की उन्नति नहीं हुई है रुपये के लेन-देन में भारतीय साहूकार का एक विशेष हाथ है। किन्तु अभी तक यह अपने अन्दर कोई सुधार नहीं कर सका है। भारतीय महाजन रुपये के लेन-देन का व्यापार प्राय: अपनी निजी पूंजी से ही करता है। इस व्यापार में जो भी रुपया लगा होता है वह उसका निजी होता है। वह लोगों का रुपया जमा नहीं करता जिससे ग्राम वासियों को रुपया बचाने में कोई सहायता नहीं मिलती। रुपया उधार लेना अर्थात् मनुष्यों का हिसाब खोलना जो कि एक बैंक का मुख्य कार्य है साहूकार या महाजन के यहाँ नहीं होता। इसके अतिरिक्त यह रुपया उधार देते समय जमानत आदि पर भी कोई विशेष ध्यान नहीं देता। इनके द्वारा हुण्डियों का क्रय-विक्रय भी होता नहीं। महाजन या साहूकार देश के व्यापार में कोई रुपया नहीं लगाते। वास्तव में यह अधिकतर किसानों व कृषकों के

रुपया उधार देते हैं। इन किसानों से यह बहुत अधिक ब्याज लेते हैं। इसके फलस्वरूप प्रायः जब वह रुपया नहीं लौटा सकते तो अधिकांश उनकी जायदाद आदि नीलाम करनी पड़ती है। यह अपने कार्य का कोई नियम बद्ध हिसाब नहीं रखते और न ही अपना लाभ हानि खाता और चिट्ठा छापते हैं। साहूकार बहुधा रुपये के लेन-देन के साथ व्यापार भी करते रहते हैं। यह एक बैंक के नियमों के सर्वथा विरुद्ध हैं। इसके अतिरिक्त यह मनुष्यों में रुपया बचाने का स्वभाव नहीं बना सकते। इनमें सबसे बड़ा दोष यह है कि यह मनुष्यों का हिसाब खोलकर उनका रुपया जमा नहीं करते और रुपये के लेन देन के साथ साथ व्यापार भी करते रहते हैं। इसीलिये हम भारतीय महाजन या साहूकार को वास्तविक रूप में बैंक नहीं कह सकते।

शैडयूल्ड बैंक—Scheduled Bank उन बैंकों को कहते हैं जिन का नाम रिजर्व बैंक की सूची पर होता है। यह श्रेष्ठ बैंक समझे जाते हैं। इस समय भारतवर्ष में लगभग १०० शैडयूल्ड बैंक हैं। इस प्रकार के बैंकों को Demand Liabilities का ५ प्रतिशत और Time Liabilities का २ प्रतिशत रुपया बिना ब्याज के हर समय रिजर्व बैंक में जमा रखना पड़ता है। इन बैंकों पर रिजर्व बैंक का पर्याप्त निरीक्षण भी रहता है। रिजर्व बैंक इन बैंकों की हुन्डियों का भुगतान करता है और अन्य प्रकार से इन बैंकों की सहायता करता है।

१५ अगस्त १९४७ के पश्चात्—देश के दो फूले-फले प्रान्त पंजाब और बंगाल में बैंकों ने बहुत उन्नति की थी। परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि देश के विभाजन का इनही

प्रान्तों पर अधिक प्रभाव पड़ा है जिस के कारण बैंकों को बहुत धक्का लगा। पाकिस्तान वाले भाग से बैंक भारत में आये। यह बैंक अपनी सम्पत्ति को पाकिस्तान से नहीं ला सके। इस कारण इनको बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। कुछ बैंकों से लोगों का विश्वास उठ गया और इस कारण बैंकों के टूट जाने का भय हो गया। इस समय सरकार ने अक्तूबर १९४७ में एक विधान द्वारा इन बैंकों की सहायता की और देश को हानि से बचाया। इस विधानुसार सरकार ने बैंक से रुपया निकलवाने की कुछ शर्तें लगा दीं और भुगतान करने की अवधि भी बढ़ा दी।

३ सितम्बर, १९४८ को भारत की विधान परिषद् ने रिज़र्व बैंक को सरकार के आधीन (Nationalisation) करने का एक बिल पास किया और १ जनवरी १९४९ से रिज़र्व बैंक पूर्ण रूप से सरकार का बैंक हो गया। प्रति भागीदार को प्रति १०० रु० के भाग पर ११८॥≈) दिये जा रहे हैं।

फरवरी १९४९ में Banking Companies Act of 1948 पास किया गया जिस के अनुसार निम्न प्रबन्ध किये गये :—

(१) बैंकों में Managing Agency System को समाप्त कर दिया।

(२) बैंकों को किसी प्रकार का व्यापार करने की मनाही कर दी गई।

(३) अचल सम्पत्ति वाले बैंकों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

(४) न्यूनतम भुगतान की गई पूंजी तथा बचत कोष की रक़म निश्चित कर दी गई।

(५) भागों के बेचने के कमीशन पर भी कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये गये।

(६) रिजर्व बैंक को अन्य बैंकों के कार्य का निरीक्षण करने के अधिक अधिकार दे दिये गये।

इस प्रकार वर्तमान सरकार भारत की बैंक व्यवस्था को सुधारने का प्रयत्न कर रही है।

१० मार्च १६४६ ई० को बैंक के विधान को गवर्नर जनरल की स्वीकृति मिल गई और १६ मार्च १६४८ से यह विधान बैंकों की आर्थिक दशा को सुधारने तथा सारे बैंकों को उन्नत करने के उद्देश्य से बनाया गया है।

अभ्यास के प्रश्न

१. बैंक किसे कहते हैं? इस के मुख्य कार्य क्या हैं?

What is a bank? What are its main functions?

२. बैंकों की उन्नति का किसी देश की आर्थिक उन्नति से क्या सम्बन्ध है? स्पष्ट कीजिये।

How are banks connected with the economic prosperity of a country?

३. भारत के मनीमारकेट का वर्णन कीजिये तथा इसके अभाव तथा त्रुटियों को समझाइये।

Give a description of the Indian money market. What are its main defects?

४. मनीमार्केट किसे कहते हैं? भारत के मनीमार्केट में क्या क्या समस्याएँ सम्मलित हैं। प्रत्येक का सक्षिप्त वर्णन दीजिये।

What is a money market? What are the constituents of the Indian money market? Give a brief description of each.

५. निम्नलिखित के कारण बताइये :—

(अ) भारत में बैंकों की कम उन्नति।

(ब) देशी बैंकर की अवनति।

(स) भारत में समय समय पर अधिक संख्या में बैंक टूटे।

(क) भारत की पूंजी शर्मीली है।

Account for the following :—

(i) Slow growth of banking in India.

(ii) Decrease in indigenous banking in India.

(iii) Bank failures in India.

(iv) Indian capital is shy.

६. देशी बैंकर किसे कहते हैं? उस के क्या मुख्य काम हैं? उसके कार्य में क्या-क्या त्रुटियां हैं?

What is meant by an indigenous banker?

What are his main functions? What are the defects in his working?

७. देशी बैंकर का भारत के लिये क्या महत्व है? देशी बैंकर तथा जोइन्ट स्टौक बैंक और महाजन में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

What is the importance of indigenous bankers in India? How does an indigenous banker differ from a joint stock bank on the one hand and a money lender on the other?

८. रिजर्व बैंक के मुख्य कार्यों को स्पष्ट रूप से समझाइये। यह बैंक देश की करन्सी तथा साख सम्बन्धी समस्याओं के निवारण करने में कहाँ तक सफल हुआ है?

Explain fully the functions of the Reserve Bank of India. How for has it been successful in solving the credit and currency problems of the country.

९. जोइन्ट स्टैक बैंकों पर एक लेख लिखिये।

Write an essay on the growth of joint stock banking in India.

१०. डाकखाने और बीमा कम्पनियों के बैंक सम्बन्धी कार्यों को समझाइये।

Explain the banking functions of a post office and an insurance company.

११. निम्नलिखित पर नोट लिखिये :—

(अ) शेडयूल्ड बैंक

(ब) रिजर्व बैंक और इम्पीरियल बैंक का सम्बन्ध

(स) भारत के सहकारी बैंक

(क) भारत में ब्रांच बैंकों की उन्नति

(ख) बिल मार्केट और रिजर्व बैंक

(ग) देशी बैंकर और रिजर्व बैंक

Write short notes on the following:—

(i) Scheduled banks.

(ii) Relation between the Reserve Bank and the Imperial Bank of India.

(iii) Co-operative Banking in India.

(iv) Branch Banking in India

(v) Bill Market and the Reserve Bank

(vi) Indigenous banker and the Reserve Bank.

: १२ :

व्यापार

भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है। यहां की जन संख्या भी अपेक्षाकृत बहुत अधिक है। इस कारण देश का घरेलू व्यापार हमारी आर्थिक उन्नति में एक महत्वशाली स्थान रखता है। संसार में ऐसे देश भी हैं जिनकी आर्थिक कुशलता उनके बाहरी व्यापार पर निर्भर है। इनमें इंग्लैंड और जापान मुख्य हैं। इंग्लैंड खाद्य पदार्थों को पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न नहीं करता। अपनी शिल्प के लिये कच्चा माल भी उसे अन्य देशों से मंगाना पड़ता है। इस कारण अपनी मशीनों के बने हुये माल को विक्रय करने के लिये उन्हें बाहरी मंडियों की आवश्यकता है।

परन्तु भारतवर्ष में परिस्थिति भिन्न है। यहां के लोग अधिकतर देश में बना हुआ माल ही अपने प्रयोग में लाते हैं। विदेशों से कम मात्रा में माल आयात किया जाता है। इस कारण भारतवर्ष में घरेलू व्यापार इसके बाहरी व्यापार से कम महत्व नहीं रखता। यद्यपि पिछले पचास वर्षों में हमारे बाहरी व्यापार ने बहुत उन्नति की है तथापि हमारा बाहरी व्यापार घरेलू व्यापार से बहुत कम है। देश में यातायात के साधनों की उन्नति के साथ-साथ हमारे घरेलू व्यापार ने भी उन्नति की। इससे पूर्व हमारा देशी व्यापार स्थानीय था। इस सम्बन्ध में प्रत्येक गांव स्वावलम्बी था। परन्तु समय के

परिवर्तन के साथ-साथ अब इस परिस्थिति में भी काफी अन्तर आ गया है। पुराने समय में सड़कें बहुत कम थीं और जो थीं भी वह उपयोगी कम थीं। रेलवे और मोटर कारें नहीं थीं। अधिकतर व्यापार गधों पर और बैल गाडी द्वारा होता था। परन्तु अब परिस्थिति बहुत बदल गई है। अन्य देशों का बना हुआ माल हमारे गांवों में पहुँचता है और हमारे गांवों का अनाज अन्य देशों को जाता है।

भारतवर्ष में देशी व्यापार निम्न प्रकार का है:—

(१) आभ्यंतरिक (Internal) अथवा भीतरी व्यापार
(२) तटीय व्यापार (Coasting Trade)।

आभ्यंतरिक व्यापार में देश में उत्पन्न या तैयार किये गये पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लेजाकर बेचना अथवा उन्हें विदेशों में बेचने के लिये बड़े-बड़े बन्दरगाहों पर भेजना और विदेशों से बन्दरगाहों पर आये हुए माल को देश के भीतरी भागों में पहुँचाना सम्मिलित हैं। देश के घरेलू व्यापार के इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है कि ज्यों-ज्यों हमारे देश में यातायात के साधनों में उन्नति हुई त्यों-त्यो हमारा घरेलू व्यापार बढ़ा। लोगों की आर्थिक दशा सुधरने पर इसने और भी उन्नति की। यह बात अवश्य ठीक है कि निर्यात करने के पश्चात जो शेष रहता है वह सब हमारे देश के घरेलू व्यापार का सूचक नहीं है क्योंकि उसमें से कुछ भाग तो उत्पादक लोग उपभोग कर लेते हैं, कुछ भाग मंडियों में जाता ही नहीं, वर्तमान दशा में तो हमारे देश के बहुत से किसान निर्धनता के कारण उत्पन्न पदार्थ का कुछ ऐसा भाग भी बेचते हैं जिनकी उन्हें अपने लिये आवश्यकता होती है।

यद्यपि भारतवर्ष का भीतरी व्यापार बाहरी व्यापार का कई गुना है, देश की विशाल जन संख्या को देखते हुये यह

बहुत कम है। अन्य देशों की तुलना में भारतवर्ष का महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। अन्य कारणों के साथ-साथ, इसके मुख्य कारण यहां के निवासियों का सादा जीवन, तथा आय कम होने के कारण उपभोग की कमी है। भारतवर्ष के घरेलू व्यापार के सम्बन्ध में संतोषजनक सूचना का अभाव है। भारतवर्ष का घरेलू व्यापार लगभग १२०० करोड़ रुपये है। इसमें कोयला, दालें, तेल निकालने के बीज, गन्ना और चीनी, कपास और जूट अधिक महत्व रखते हैं।

हमारे घरेलू व्यापार की बाधाएं संगठन की कमी, तोल नाप और सिक्कों की विभिन्नता, क्रय-विक्रय सम्बन्धी असुविधाएं, यातायात के साधनों का अभाव हैं। हमारे देश में बहुत से गांव और कसबे ऐसे हैं जो सड़कों द्वारा शहरों से मिले हुये नहीं हैं। हमारे देश के घरेलू व्यापार का भविष्य बहुत आशा पूर्ण है। इसके मार्ग में जो बाधाएं हैं हमें उन्हें दूर करने के उपाय सोचने चाहियें।

तटीय व्यापार—इस व्यापार में वह सब व्यापार सम्मिलित है जो समुद्र तट के एक स्थान का दूसरे स्थान से होता है। चाहे यह व्यापार स्वदेशी तथा विदेशी वस्तुओं का ही हो, यह तटीय व्यापार ही कहलायेगा। तटीय व्यापार अधिकतर देशी व्यापार का ही भाग है क्योंकि इसमें उन वस्तुओं की मात्रा बहुत कम होती है जिनका देश के भीतरी भागों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। भारतवर्ष के तटीय व्यापार का लगभग ६०% भाग तीन बड़े बन्दरगाहों द्वारा होता है। सब से अधिक यह व्यापार कलकत्ते से होता है, फिर बम्बई, और मद्रास द्वारा। इसके अतिरिक्त यह व्यापार अन्य छोटे छोटे बन्दरगाहों द्वारा भी होता है। भारतवर्ष के समस्त तटीय व्यापार का मूल्य लगभग २०० करोड़ रुपये है।

विदेशी व्यापार

अंगरेजों के भारतवर्ष में आने से पहले कई हजार साल पूर्व भी भारतवर्ष, मिश्र, रोम, अरब, फारिस, चीन, और दूसरे देशों से व्यापार करता था। उस समय भारतवर्ष से सूती कपड़ा, हीरे जवाहरात, खुशबूदार वस्तुएं और अन्य आराम की चीजें बाहर को जाती थीं। दूसरे देशों से सोना, चाँदी, पीतल, तांबा, टीन, तुर्की घोड़े और शराब इत्यादि आती थीं। मुग़ल काल में भी काबुल और कन्धार के मार्ग द्वारा दूसरे देशों से व्यापार होता था। इस काल में भारतवर्ष को दूसरे देशों से रुपया लेना होता था। पश्चिमी तट से जहाज पाश्चात्य देशों से आते और जाते थे। १८६६ में स्वेज़ नहर के खुलने से दूसरे देशों से भारतवर्ष का व्यापार और भी बढ़ गया। इसके साथ २ भारतवर्ष में रेलवे लाइन तैयार होने के कारण उस व्यापार की और भी उन्नति हुई। इंगलैंड ने भारतवर्ष के बारीक कपड़े की यातायात पर बहुत अधिक कर लगाया और इस प्रकार इसको समाप्त किया। आरम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी भारतवर्ष में तैयार किया हुआ माल दूसरे देशों को भेजती थी और क़ीमती वस्तुएं दूसरे देशों से भारतवर्ष में लाती थी। उस समय भारतवर्ष धन का खज़ाना समझा जाता था और संसार का धन इस खज़ाने में जमा होता था। परन्तु बाद में ये सब बातें बदल गईं और अब भारत इंगलैंड के सामने कुछ भी नहीं है। भारतवर्ष के विदेशी व्यापार की निम्नलिखित विशेषतायें हैं:—

(१) भारतवर्ष से कच्चा माल और खाने की वस्तुएं दूसरे देशों को भेजी जाती हैं और मशीनों का बना हुआ माल दूसरे देशों से आता है। भारतवर्ष से कपास, तेल निकालने के बीज,

और खनिज पदार्थ दूसरे देशों को जाते है और मशीनों का बना हुआ कपड़ा, खुशबूदार तेल और मशीनें इत्यादि दूसरे देशों से भारतवर्ष में आती हैं।

(२) प्राय: भारत का निर्यात आयात से अधिक होता है और व्यापार की बचत हमारे पक्ष में होती है। लगभग ५० करोड़ रुपया भारतवर्ष को दूसरे देशों को देना पड़ता है। यह रुपया बीमा कम्पनियों का किराया और दूसरी बातों के वास्ते व्यय होता है।

(३) हमारा लगभग कुल विदेशी व्यापार अन्य देशों के हाथों में है। निर्यात आयात करने वाले अन्य देशों के लोग हैं। एक्सचेंज बैंक भी विदेशी है।

(४) भारतवर्ष का लगभग सभी विदेशी व्यापार समुद्र के द्वारा होता है।

(५) भारतवर्ष का विदेशी व्यापार अधिकतर बम्बई, कलकत्ता, कराची और मद्रास की बन्दरगाहों द्वारा ही होता है। लगभग कुल विदेशी व्यापार का $\frac{6}{7}$ इन ही बन्दरगाहों द्वारा होता है।

(६) बर्तानिया का भारतवर्ष की आयात और निर्यात दोनों में सब देशों से अधिक भाग है।

(७) (Per capita) प्रत्येक भारतवर्ष का विदेशी व्यापार बहुत कम है। बर्तानियां, अमरीका और जापान के मुकाबले में यह बहुत कम है। यह भारत की गरीबी का एक प्रमाण है।

(८) हाल ही में सूती कपड़े और चीनी की आयात में पर्याप्त कमी हो गई है क्योंकि इन दोनों शिल्पकारियों ने भारतवर्ष में ही उन्नति कर ली है।

(९) हमारे देश की अधिकतर निर्यात की हुई वस्तुएं कृषि से पैदा होती हैं। इसलिये हमारे निर्यात की संख्या अधिकतर

वर्षा पर निर्भर है। प्राय: वर्षा न होने से हमारा निर्यात बहुत गिर जाता है और वर्षा पर्याप्त होने पर निर्यात पर्याप्त होता है।

वर्तमान युद्ध के कारण भारतवर्ष के विदेशी व्यापार को बहुत हानि हुई है।

एक प्रकार से दूसरे देशों से व्यापार बहुत कम हो गया है और वस्तुएँ अधिकतर मित्र देशों को भेजी जाने लगीं और वहीं से थोड़ा-बहुत माल आने लगा। भारतवर्ष की सरकार ने विदेशी व्यापार में बहुत अधिक भाग लिया। अधिकतर आयात और निर्यात सरकार की ओर से किया गया। जहाज़ इत्यादि में स्थान न मिलने के कारण भी व्यापार कम हो गया। इङ्गलैण्ड से भी मशीनों का बना हुआ माल अधिक मात्रा में नहीं आ सका। जापान और पूर्व के दूसरे देशों से भी व्यापार बन्द हो गया। भारतवर्ष का आयात, निर्यात की अपेक्षा बहुत कम हो गया। यूरोप के भिन्न २ देशों के साथ भी व्यापारिक सम्बन्ध टूट गए। भारतवर्ष की सरकार ने इसका मुक़ाबला करने के लिये खाने पीने की वस्तुओं की उपज को बढ़ाने का पूरा २ प्रयत्न किया और दूसरे उपायों से भी दूसरे देशों में भारतवर्ष के बने हुए माल को बेचने का प्रबन्ध किया। Gregory और Meek को अमरीका भेजा गया।

दूसरे महायुद्ध के समय में भारतवर्ष के विदेशी व्यापार की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं :—

(१) भारतवर्ष का व्यापार बर्तानिया के देशों के साथ अधिक बढ़ा। उदाहरणतया आस्ट्रेलिया, कनेडा, मिश्र, ईराक़ और दूसरे मध्य-पूर्व के देश।

(२) लगभग प्रत्येक देश से भारतवर्ष के विदेशी व्यापार की बचत भारतवर्ष के अनुकूल रही। केवल ईरान बहरीन इस से अलग हैं इन देशों से लगभग ८४ करोड़ रु० का तेल आया।

(३) भारतवर्ष का व्यापार अमरीका से बहुत बढ़ गया। लगभग ६५ करोड़ रुपये का व्यापार अमरीका से १९४४--४५ में हुआ। उस वर्ष बर्तानिया के साथ १०२ करोड़ रुपये का व्यापार हुआ।

(४) भारतवर्ष की आयात बहुत कम हो गई क्योंकि दूसरे देश युद्ध में लगे रहने के कारण भारतवर्ष को माल न भेज सके। इसलिये व्यापार की बचत अधिक मात्रा में भारतवर्ष के अनुकूल रही।

(५) भारतवर्ष की निर्यात में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। इसके अतिरिक्त अब भारतवर्ष के निर्यात में कच्चे माल और खाने की वस्तुओं का भाग कम होता जा रहा है और मशीनों की बनाई हुई वस्तुओं की संख्या बढ़ती जा रही है। आशा है कि भारतवर्ष भी एक उन्नतिशील देश बन जायगा।

भारत वर्ष के विदेशी व्यापार में निम्नलिखित चीजों का भाग है:—

आयात १९३९—४०

(१) **सूती कपड़ा**—सूती कपड़ा और सूत विशेषकर बर्तानिया और जापान से मंगवाये जाते हैं। १९३९ - ४० में ५७ करोड़ १० लाख गज़ कपड़ा दूसरे देशों से भारतवर्ष में आया, जिसमें से ३९ करोड़ ४० लाख गज़ जापान से आया था। ३५२ लाख रुपये का सूत और ११५३ लाख रुपये के मूल्य

का कपड़ा दूसरे देशों से लाया गया। आयात किये गये कपड़े में से ३१% बंगाल, २८%बम्बई, २५% सिन्ध, और ७%मद्रास का भाग है। परन्तु अब लड़ाई के कारण और भारतवर्ष में स्वदेशी आन्दोलन के कारण इन वस्तुओं का आयात कम हो गया क्योंकि देश ने उद्योग-धन्धों में काफ़ी उन्नति की है।

(२) **मशीन धातु इत्यादि**—प्रति वर्ष भारतवर्ष काफ़ी मात्रा में कच्चा लोहा और पक्का लोहा भी विदेशों से खरीदता है। मशीनें, सूती कपड़ा, जूट और चीनी इत्यादि के लिये मंगाई जाती हैं। यह वस्तुएं बर्तानियां, अमरीका और जर्मनी से आयात की जाती हैं। १६३६—४० में भारतवर्ष में ६६७२ मोटर कारें आयात की गई थीं। भारतवर्ष में कारों की संख्या बढ़ती जा रही है।

(३) **तेल**—मिट्टी का तेल तथा पैट्रोल इत्यादि अमेरिका रूस, और फ़ारिस से भारतवर्ष में आते हैं। पहले इसमें अमेरिका का भाग ६० प्रतिशत था, परन्तु अब यह कम होता जा रहा है और रूस तथा फ़ारिस का भाग बढ़ता जा रहा है। १६३६ से १६४० के मध्य में भारतवर्ष में ४६ करोड़ ३० लाख गैलन तेल विदेशों से मंगवाया गया।

(४) **सिल्क, ऊन इत्यादि**—नकली सिल्क जापान से आती थीं क्योंकि यह काफी सस्ती होती थीं। असली तथा नकली दोनों प्रकार की सिल्क चीन, जापान, और स्विटज़रलैंड से आती थी। ऊन कच्चे माल के रूप में और ऊन का तैयार किया हुआ माल आस्ट्रेलिया, फारिस तथा बर्तानिया से भारतवर्ष में आता है।

(५) **शराब इत्यादि**—शराब ४० लाख गैलन और

स्पिरिट लगभग १० लाख गैलन विदेशों से भारतवर्ष में आती हैं। इन वस्तुओं का प्रयोग बढ़ता जा रहा है, और इन वस्तुओं के मूल्य भी बहुत अधिक बढ़ गये हैं।

(६) **कैमिकल, काग़ज़ तथा दवाईयां**—इन वस्तुओं का आयात भी भारतवर्ष में कम होता जा रहा है।

निर्यात—१६३६—४०

(१) **जूट, कच्चे तथा पक्के माल के रूप में**— कच्चा जूट जर्मनी, बर्तानिया फ्रान्स तथा अमेरिका में भेजा जाता है, और जूट की बोरियां तथा अन्य तैयार किया हुआ माल अमेरिका आस्ट्रेलिया, अर्जेनटाईना तथा दूसरे देशों को भेजा जाता है। बोरियों का निर्यात लगभग १२१ करोड़ है। जूट लगभग १६ लाख ५१ हज़ार (१६,५१,०००) टन विदेशों को भेजा जाता है। कुल निर्यात में लगभग २३·१३% जूट के माल का और ६·७% जूट का भाग है।

(२) **कपास और कपड़ा**—हमारी अधिकतर कपास जापान, चीन बर्तानिया और इटली को जाती है। सूत का विदेशी व्यापार जापान की शिल्प की उन्नति के कारण कम हो गया। सूती कपड़ा फारिस, अफग़ानिस्तान, लंका और ईराक को जाता है। जापान को १०५६००० बोरे कपास भारतवर्ष से गये परन्तु जापान के लड़ाई में सम्मिलित हो जाने और बाद में नष्ट हो जाने से यह निर्यात समाप्त-सा हो गया। कुल निर्यात में कपास का लगभग १५·५ प्रतिशत और कपड़े का ४ प्रतिशत भाग है।

(३) **अनाज दालें तथा आटा**—भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। गेहूं, दालें चावल इत्यादि बर्तानिया, जर्मनी जापान और चीन को जाते हैं। पश्चिमी देशों में इन वस्तुओं का निर्यात कम हो गया है।

(४) **तेल के बीज**—भिन्न-भिन्न प्रकार के तेल के बीज भारतवर्ष से विदेशों को भेजे जाते हैं और वहां से सुगन्धित तेल भारतवर्ष में आता है। परन्तु अब इन तेलों के बीजों का निर्यात घटता जा रहा है। कुल निर्यात में ५·८५ भाग तेल के बीजों का है।

(५) **चाय**—विशेषकर चाय बर्तानिया को जाती है। लगभग चाय की कुल निर्यात का ९० प्रतिशत चाय बर्तानिया को जाता है। शेष केनेडा, फारिस, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया और अमेरिका को जाती है। चाय का निर्यात कुल निर्यात का १२·८२ प्रतिशत भाग है।

(६) **चमड़ा तथा खालें**—चमड़ा तथा खालें भी भारतवर्ष से विदेशों को भेजी जाती हैं किन्तु अब यह निर्यात कम होता जा रहा है।

(७) **लाख और खनिज पदार्थ**—लाख, चपड़ा, अभ्रक और लोहा भी भारतवर्षा से विदेशों को जाता है।

भिन्न भिन्न देशों से विदेशी व्यापार—उन्नीसवीं शताब्दी के बाद तक लगभग समस्त माल बर्तानिया और उसके देशों से भारतवर्ष में आता था। केवल आयात का १० प्रतिशत माल अन्य देशों से भारतवर्ष में आता था। बर्तानिया से ८२% माल आता था। निर्यात में ४६% बर्तानिया के आधीन अन्य देशों और २७% अन्य देशों का भाग था। बीसवीं शताब्दी में और

देशों ने भी भारतवर्ष में अपना माल बेचने का बहुत प्रयत्न किया। पिछले महायुद्ध के आरम्भ होने तक कुल आयात का ७० प्रतिशत भाग माल बर्तानिया और बर्तानिया के आधीन अन्य देशों से, आता था। इसमें ६३ प्रतिशत बर्तानिया का भाग था। निर्यात का ६० प्रतिशत अन्य देशों को जाता था और केवल २५ प्रतिशत बर्तानिया को। १९१३—१४ में निम्नलिखित दशा थी:—

निर्यात—ब्रिटिश राज्य के देश जिसमें २५·१ प्रतिशत भाग बर्तानिया का था, ६·८ प्रतिशत जर्मनी, ७·५ प्रतिशत जापान, ७·५ प्रतिशत अमरीका ६·६ प्रतिशत फ्रांस, ५·३ प्रतिशत बैल्जियम, ३·१ प्रतिशत चीन, ३·५ प्रतिशत आस्ट्रेलिया, और ३·१ प्रतिशत इटली।

आयात—६९ प्रतिशत ब्रिटिश राज्य के देश इसमें ६२·८ बर्तानिया का भाग था, ६·४ प्रतिशत जर्मनी, ६·४ प्रतिशत जावा, ३·१ प्रतिशत अमरीका, २·५ प्रतिशत जापान, २·२ प्रतिशत आस्ट्रेलिया, १·६ बैल्जियम, १·५ प्रतिशत फ्रांस, १ प्रतिशत इटली। इसके पश्चात् अन्य देशों का भाग बढ़ता गया और बर्तानिया तथा ब्रिटिश राज्य के आधीन जो देश थे उनका भाग कम होता गया। १९३९—४० में निम्नलिखित दशा थी।

निर्यात—बृटिश राज्य के देश ५३·६ प्रतिशत इसमें से बर्तानिया का भाग ३४.३ प्रतिशत था; जापान ८.८ प्रतिशत; अमरीका ८.४ प्रतिशत; जर्मनी ५.५ प्रतिशत; फ्रांस ३.७ प्रतिशत बैल्जियम २.५ प्रतिशत।

आयात—५८.१ प्रतिशत बृटिश राज्य के देश जिसमें बर्तानिया का भाग ३०·५ प्रतिशत था; जापान १० प्रतिशत

जर्मनी ८.५७५ प्रतिशत; अमरीका ६.४ प्रतिशत ।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट प्रतीत है कि पिछले महायुद्ध के पश्चात् बर्तानिया का भाग कम होता गया और भारतवर्ष की मण्डी में जापान, जर्मनी, तथा अमरीका की प्रतियोगिता बढ़ती गई और इन देशों ने काफी सीमा तक भारतीय मण्डी पर अधिकार कर लिया। भारतवर्ष के बाह्य व्यापार में लगभग सब देशों से फिर भी बर्तानिया का भाग सबसे अधिक है।

दूसरे महायुद्ध के मध्य में भारतवर्ष के बाह्य व्यापार में बहुत परिवर्तन हुए। शत्रु देशों से व्यापार बन्द हो गया। योरुप के देश और दुनिया के पूर्वी देश (Far East) भी भारतवर्ष की विदेशी व्यापार की सूची से निकल गये। अन्य देशों के निर्यात पर पाबन्दी लगा दी गई। जहाज़ों में स्थान न मिलने के कारण भी विदेशी व्यापार कम हुआ। युद्ध में प्रयोग होने वाले सामान की अधिक माँग हो गई।

आयात तथा निर्यात की निम्नलिखित साधन से प्रतियोगिता की जा सकती है।

व्यापार	आयात: पिछले महायुद्ध के पहले	आयात: दूसरे महा युद्ध से पहले	आयात: १९४२-४३	व्यापार	निर्यात: पिछले महायुद्ध से पहले	निर्यात: दूसरे महा युद्ध से पहले	निर्यात: १९४२-४३
खाद्य पदार्थ	१५%	१२%	७.३%	खाद्य पदार्थ	२९%	२३%	२५.१%
कच्चा माल	७%	१८%	४७.३%	कच्चा माल	४८%	४८%	२३.१%
मशीनों का तैयार माल	७७%	६८%	४४.५%	मशीनों का तैयार माल	२३%	२७.०%	४५.५%

युद्ध के होते हुए भी हमारे निर्यात में बढ़ोत्तरी हुई। १६३६-४० में निर्यात की कीमत १६२.८ करोड़ थी परन्तु १६४३-४४ में यह १६६.२ करोड़ हो गई। इसमें वे निर्यात सम्मिलित नहीं हैं जो राज्य की ओर से हुई थीं। युद्ध काल में मशीनों का तैयार किया हुआ माल अधिक मात्रा में अन्य देशों को भेजा गया। भिन्न भिन्न देशों के साथ व्यापार में भी कुछ परिवर्तन हुआ। वह निम्नलिखित है :—

	प्रतिशत निर्यात	
	१६३८-३६	१६४२-४३
बृटिश साम्राज्य के देश	५८.६	६७०
मिडिल ईस्ट	० ५	१२.५
अमरीका	८.४	१४.७
अन्य देश	३७.५	५.८

अन्य देशों में वह देश सम्मिलित हैं, जो शत्रु से सम्बन्ध रखते थे या जो शत्रु के आधीन आ गये थे। दूसरे महा युद्ध का, तेल के बीज चमड़ा, खालें कपास और जूट के निर्यात पर अधिक प्रभाव पड़ा। यह वस्तुएं अधिक मात्रा में भारतवर्ष में ही प्रयोग होने लगीं।

आयात पर भी दूसरे महायुद्ध का प्रभाव पड़ा है। आयात की संख्या बहुत, घट गई है। आयात में कच्चे माल का भाग २०.४ प्रतिशत से बढ़कर अब ४७.१ प्रतिशत हो गया। मशीन

द्वारा बने हुए माल की आयात ६१ % प्रतिशत से घटकर १५ प्रतिशत रह गया है। भिन्न भिन्न देशों से आयात पर निम्न-लिखित प्रभाव पड़ा है:—

	आयात प्रतिशत	
	१९३८-३९	१९४२-४३
ब्रिटिश साम्राज्य के देश	५८.१	५५.४
मध्य पूर्वी देश	२·३	२४.०
अमेरिका	६·४	१७.०
अन्य देश	३३·२	३.६

इसके अतिरिक्त वर्ष के व्यापार के समतुलन पर भी प्रभाव पड़ा है। आशा है अब भारतवर्ष विदेशी व्यापार में एक महत्व-पूर्ण पद ग्रहण करेगा।

स्वतन्त्र भारत में विदेशी व्यापार

पिछले दो वर्षों में देश के विदेशी व्यापार में बहुत परि-वर्तन आ गया है। इन वर्षों में भारतवर्ष के निर्याति में ३६ प्रतिशत और आयात में ८० प्रतिशत की वृद्धि हुई। अब व्यापार का सम तुलन भारतवर्ष के प्रतिकूल रहता है। निम्न अंकों से यह बात स्पष्ट हो जायगी :—

वर्ष	आयात करोड़ रु०	निर्यात करोड़ रु०	सम तुलन करोड़ रु०
१९४६–४७	२८८	२९८	+१०
१९४७–४८	३९९	३९५	–४
१९४८–४९	५१८	४१६	–१०२

१९४८–४९ में आयात के इतने अधिक बढ़ने का मुख्य कारण Open General Licence की नीति है जो करन्सी के फैलाव को कम करने के लिये प्रयोग में लाई गई थी। भिन्न भिन्न वस्तुओं का निर्याति इस प्रकार है :—

वस्तुएँ	१९४६–४७	१९४८–४९
वैजीटेबल आयल	६० लाख गैलन	१ करोड़ ६० लाख गै०
वैजिटेबल सीड्स	७१ हजार टन	१०४००० टन
माइका	१८५००० हन्डर	३४०००० हन्डर
सूती कपड़ा	३१ क० ८० ला० ग०	३४ क० १० ला० ग०
जूट(मशीनों का माल)	६९६००० टन	८९०००० टन
कपास	१६२००० टन	७६००० टन
जूट	३०६००० टन	८१३००० टन
ऊन	४३ करोड़ पाउंड	९० लाख पाउंड
खालें	२५००० टन	१६००० टन

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे निर्यात में बहुत परिवर्तन आ गया है।

१९४८ के आयात का ब्योरा इस प्रकार है :—

मशीनों के बने हुए माल का मूल्य २९५ करोड़ रु० था जो समस्त आयात का ५९% था; खाद्य पदार्थ ९० करोड़ रु० कच्चा माल १२७ करोड़ रु०। यह दोनों कुल आयात का १७% और २४% थीं। कच्चे माल में कपास, जूट, ऊन, सिल्क, गूदा

लोहा और खानों का मूल्य ७४ करोड़ रु० था जो समस्त कच्चे माल की आयात का ५८·३% था। ३५·३ करोड़ रु० का Mineral oil भी आया जो कच्चे माल के आयात का २७·७ प्रतिशत था। कच्चे माल में ८६ प्रतिशत कच्चे माल के रूप में मशीनों के लिये मंगवाया गया।

मशीनों के माल में ८१ करोड़ रु० की मशीनादि (capital goods)थी जो कुल मशीनों के माल का २७·४ प्रतिशत था रंग, औजार इत्यादि ८१ करोड़ रु०; दवाइयां, काग़ज, कपड़ा, सूत, मोटर गाड़ियां ८६ करोड़ रु० अथवा २६·६ प्रतिशत।

अभ्यास के प्रश्न

१. भारत के व्यापार के इतिहास का आलोचनात्मक वर्णन कीजिये।

Give a critical descritical description of the trade of India.

२. भारत के घरेलू व्यापार को पूर्णतया समझाइये। भविष्य में इसकी उन्नति की क्या आशा है ?

Explain fully the internal trade of India. What are the possibilities of its future progress?

३. भारत के विदेशी व्यापार में क्या-क्या वस्तुएँ सम्मिलित हैं और यह किन किन देशों से होता है ?

What is the composition and dierction of India's foreign trade.

४. देश के विभाजन के पश्चात् देश के विदेशी व्यापार में किस प्रकार का परिवर्तन आया है ?

What changes are noticeable in the foreign trade of India after the partition ?

५. भारत के तटीय व्यापार पर एक लेख लिखिये।

Write a brief essay on the coastal trade of India.

६. भारत का देशी तथा विदेशी व्यापार किस प्रकार उन्नति कर सकता है।

How can the internal and foreign trade of India be improved ?

: १३ :

मूल्य

साधारणतया वस्तुओं के मूल्य में घटा-बढ़ी का देश की आर्थिक दशा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस परिवर्तन का प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि हम सब वस्तुओं का उपभोग करते हैं। जब वस्तुओं के मूल्य बढ़ते हैं तो व्यापार तथा उद्योग की उन्नति होती है। व्यापरियों को अधिक लाभ प्राप्त होता है। परन्तु जिन लोगों की आय निश्चित होती है, इन्हें मूल्य के बढ़ने से नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ जाता है। इस का एक मात्र कारण यह है कि निश्चित आय वाले लोगों की मजदूरी और वेतन में उतनी मात्रा में वृद्धि नहीं होती जितना कि वस्तुओं के मूल्य में। इस के विपरीत वस्तुओं के मूल्य गिरने से व्यापार और उद्योग को हानि होती है। और निश्चित आय वाले लोगों को लाभ होता है। इस का धनोत्पत्ति पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार समय-समय पर मूल्य में घटा-बढ़ी होने का देश के आर्थिक ढाँचे पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस के कारण देश को हानि होती है। देश की आर्थिक दशा को ठीक रखने के लिये यह आवश्यक है कि मूल्य में समय-समय पर अधिक घटा-बढ़ी न हो। भारतवर्ष की स्थिति

को भली प्रकार समझने के लिये मूल्य की घटा-बढ़ी का ऐतिहासिक अध्ययन आवश्यक है।

१. १९१४ से पूर्व की स्थिति

सर्व प्रथम भारत में वस्तुओं के मूल्य में अधिक परिवर्तन उस समय आया जब कि १८९३ में टकसालों को सिक्के बनवाने के लिये साधारण जनता के लिये बन्द कर दिया गया। इस से पूर्व भी मूल्य बढ़ते जा रहे थे। मूल्य बढ़ने का प्रधान कारण चाँदी के मूल्य में कमी हो जानी थी। लोगों की विनिमय शक्ति स्वयं कम हो गई। १८९३-१९१४ के मध्य में मूल्य में लगभग ४० प्रतिशत की वृद्धि हुई। पहले महायुद्ध से पूर्व मूल्य के बढ़ने के दो विशेष कारण थे। प्रथम तो समस्त संसार में ही मूल्य बढ़ रहे थे दूसरे देश में मुद्रा का अधिक फैलाव भी था। १८९३ से पूर्व रुपये का मूल्य सिक्के के रूप में और धातु के रूप में बराबर था। यदि मुद्रा अधिक हो जाती थी तो रुपयों को पिघला कर धातु में बदल लिया जाता था। परन्तु १८९३ के पश्चात् रुपया Tokencoin बन गया। लोगों ने रुपये के सिक्कों को पिघलाना बन्द कर दिया क्योंकि इस से उनको हानि होती थी। प्रति वर्ष फसल के समय सरकार लगभग १० करोड़ रुपये के नये सिक्के प्रचलित करती थी। इस प्रकार मुद्रा की मात्रा बढ़ती गई।

२. पहला महायुद्ध १९१४-१९—इस अवधि में वस्तुओं के मूल्य बहुत अधिक बढ़ गये। इस का मुख्य कारण मुद्रा का फैलाव था। सरकार ने लड़ाई के खर्चे को पूरा करने के लिये अधिक नोट छापे परन्तु इसके विपरीत माल की उत्पत्ति बहुत कम हुई। आयात बन्द हो गई और निर्यात बहुत अधिक बढ़ गई। १९२० ई० तक मूल्य बढ़ कर लगभग दुगने

हो गये थे। परन्तु इस समय भारतवर्ष में योरुप और अमेरिका की अपेक्षा मूल्य में कम वृद्धि हुई थी।

पहले महायुद्ध के पश्चात् मूल्य सब स्थानों पर गिरने लगे। १६२६ तक मूल्य धीरे-धीरे गिरे परन्तु १६२६ के पश्चात् अकस्मात मूल्य गिरने लगे। १६३१ तक भारतवर्ष में मूल्य उससे भी कम हो गये थे जो कि १६१३ में था। १६३४ तक यह मूल्य गिरते गये। फिर मूल्य में कुछ बढ़ोत्तरी हुई परन्तु यह स्थायी नहीं थी और इस के पश्चात् १६८३ ई० तक मूल्य गिरते ही चले गये।

समस्त संसार में मूल्य घटने का कारण आवश्यकता से अधिक उत्पत्ति थी। पहले महायुद्ध के पश्चात् प्रत्येक देश ने अपनी उत्पत्ति बढ़ानी आरम्भ कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्पत्ति बहुत बढ़ गई। मूल्व के इस प्रकार गिरने का भिन्न-भिन्न देशों की आर्थिक दशा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। इस युद्ध के समय में हमारे देश में सब से अधिक मूल्य बढ़े।

१६३६ के पश्चात

वर्तमान महायुद्ध में जो कि सितम्बर १६३६ में आरम्भ हुआ था वस्तुओं के मूल्य में बहुत वृद्धि हो गई है। वर्तमान युद्ध में भिन्न २ वस्तुओं का मूल्य युद्ध से पूर्व के मूल्य से चार आठ तथा दस गुना तक हो गया है। अन्य देशों में जिन्होंने इस युद्ध में वास्तविक रूप में भाग लिया है, वस्तुओं का मूल्य इतना नहीं बढ़ा किन्तु यद्यपि भारतवर्ष ने इस युद्ध में कोई भाग नहीं लिया, फिर भी यहां की वस्तुओं का मूल्य अत्यधिक बढ़ गया है। अगले पृष्ठ पर दिये गये कोष्टक से इस बात का पूर्णतया ज्ञान हो जायगा।

देश	१९३९	१९४०	१९४१	१९४२	१९४३	१९४४	१९४५	१९४६	१९४७
इराक़	१००	—	—	—	६९२	—	—	—	—
भारतवर्ष	१००	११४	१४८	१८०	३१८	२८८	२९०	३२८	३७४
यू. के.	१००	१४२	१५५	१६१	१६७	१६४	१७४	१८०	१८९
कैनेडा	१००	१११	१२४	१२८	१४०	१३६	१४१	१४८	१६४
आस्ट्रेलिया	१००	११३	११८	१३५	१३८	१३७	१४०	१४०	१४२
दक्षिणी अफ्रीका	१००	११२	१२०	१३४	१५४	१५०	—	—	—
यू. ऐस ए	१००	१०३	११९	१३०	१३५	१३३	१६८	१५८	१८६
फ्रांस	१००	—	—	—	२४९	—		—	—
जर्मनी	१००	१०३	१०४	१०७	१०९	१०८		—	—
जापान	१००	१०८	१११	१४२	१४४	१५७		—	—

इसके निम्नलिखित प्रधान कारण हैं:—

(१) १९३७ ई० में ब्रह्मा को भारत से पृथक् कर दिया गया इसके फल स्वरूप खाद्य-पदार्थों का बहुत अभाव हो गया। इसके साथ-साथ युद्ध के दिनों में कच्चा माल व खाद्य-पदार्थ भारतवर्ष से ईराक, लंका तथा दक्षिणी अफ्रीका को भेजे गये। इसके कारण आवश्यक वस्तुओं का मूल्य नित्य प्रति वृद्धि करता चला गया।

(२) युद्ध के कारण भारतवर्ष के बाह्य-व्यापार को एक भारी धक्का लगा। विदेशों का बना हुआ माल भारतवर्ष में आना बन्द हो गया। भारतवर्ष में बनी हुई वस्तुओं का मूल्य वृद्धि करने लगा।

(३) वर्तमान समय के बढ़े हुए मूल्य का एक अन्य कारण यह है कि यहां पर समस्त वस्तुओं में सट्टा अति प्रचलित है। सट्टे के कारण साधारण समय में भी वस्तुओं के मूल्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है। ऐसी दशा में तो यह प्रभाव अनिवार्य था। सट्टे के कारण यह आवश्यक वस्तुएं मनुष्यों के काम आने की अपेक्षा व्यापारियों तथा सट्टा करने वालों के गोदामों में बन्द हो गईं। आवश्यक वस्तुओं को इस प्रकार जोड़ने से बाजार में उनका मूल्य नित्य प्रति वृद्धि करने लगा।

(४) युद्ध के दिनों में साधारण मनुष्यों के स्वभाव व रुचि में परिवर्तन हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य आवश्यक वतुस्ओं को बड़ी मात्रा में एकत्रित करने लगा एवं इस भांति मूल्य में वृद्धि होने लगी।

(५) शान्ति के दिनों में भारतवर्ष की जो भी मिलें व कारखाने जनता के लिये कागज, वस्त्र, रबड़, चमड़ा इत्यादि बनाने में व्यस्त थीं उनका रात दिन युद्ध का सामान बनाने के

लिये प्रयोग किया गया। इस भांति आवश्यक वस्तुओं का प्रति दिन अभाव होता गया तथा मूल्य बढ़ते गये।

(६) युद्ध के दिनों में यातायात के साधनों पर अत्यधिक भार होने के कारण यह अपना कार्य भली प्रकार न कर सके। इनके द्वारा खाद्य-पदार्थ व अन्य आवश्यक वस्तुएं स्थानान्तरित न की जा सकीं। परिणाम स्वरूप अधिकतर स्थानों में वस्तुओं का अभाव हो गया।

(७) वर्तमान असीमित वृद्धि किये हुए मूल्य का एक बड़ा कारण यह भी है कि देश में रुपया बहुत बड़ी मात्रा में हो गया है। देश में रुपये की मात्रा का वस्तुओं के मूल्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि रुपया थोड़ा होगा तो वस्तुओं का मूल्य भी थोड़ा होगा। इस देश में रुपया बहुत बड़ी मात्रा में बढ़ गया है। यदि हम केवल कागज़ के नोट की मात्रा की ओर दृष्टिपात करें तो यही छः सात गुना बढ़ गई है। इस युद्ध के पूर्व भारत में कागज़ के नोट की मात्रा १७८ करोड़ रुपया थी और इस समय यह मात्रा १३०० करोड़ रुपये से कम नहीं है। क्योंकि इसके साथ २ वस्तुओं के उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं हुई है। मूल्य बहुत बढ़ गये।

(८) इन सम्पूर्ण कारण वश मूल्य अत्यधिक वृद्धि कर गये। सरकार ने इनको रोकने के लिये मूल्य पर कन्ट्रोल किया और प्रत्येक वस्तु का मूल्य नियत कर दिया। किन्तु मूल्य का यह प्रतिबन्ध अन्धाधुन्ध, नियम विरुद्ध तथा अज्ञानता से किया गया। इससे लाभ के स्थान पर हानि हुई। जिस वस्तु पर भी कन्ट्रोल किया जाता था वही बाजार से लोप हो जाती थी। इसका वास्तविक कारण यह था कि सरकार ने वस्तुओं की बड़ी मात्रा में उत्पादन का प्रबन्ध किये बिना

ही मूल्य पर कन्ट्रोल लगा दिया। इससे वस्तुएं तुरन्त ही साधारण बाजार से लोप होकर चोर बाजार में बिकने लगीं। फलतः जनता को और भी हानि हुई। एक तो मनुष्यों को सरलता से वस्तुएं अप्राप्त थीं और यदि प्राप्त भी थीं तो चोर बाजार में बिकने लगीं। फलतः जनता को और भी हानि हुई। एक तो मनुष्यों को सरलता से वस्तुएं अप्राप्त थीं और यदि प्राप्त भी थीं तो चोर बाजार में साधारण बाजार से दो तथा चार गुना मूल्य लिया जाता था। इस भाँति सरकार के प्रतिबन्ध से वस्तुओं का मूल्य कम होने की अपेक्षा वृद्धि करता गया।

आधुनिक काल में वस्तुओं के मूल्य में असाधारण वृद्धि देखने के अनन्तर हमारे लिये यह भी अनिवार्य है कि हम उन के परिणाम व प्रभाव पर भी सोच-विचार करें। वस्तुओं के मूल्य में इतनी मात्रा में वृद्धि होने से विभिन्न प्रकार के मनुष्य पृथक्-पृथक् रूप में प्रभावित हुए हैं। भारतवर्ष में अनेक मनुष्यों को अत्यधिक कठिनाई परेशानी व हानि हुई है। परन्तु इसके साथ-साथ अनेक मनुष्यों को अति लाभ भी हुआ। मजदूरों और अन्य प्रकार के वेतन लेने वाले मनुष्यों को अत्यधिक हानि हुई। इसका कारण यह है कि वस्तुओं का मूल्य तो नित्य प्रति बढ़ता गया और उनका वेतन पूर्व की भाँति रहा। इससे वह पहले की अपेक्षा बहुत कम वस्तुएं खरीद सके तथा इस प्रकार उनको बहुत बड़ी हानि हुई। निस्सन्देह इस समय में उनको वेतन के साथ २ महंगाई अलाउंस इत्यादि भी मिलने लगे परन्तु इनसे उनको कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त इस समय में व्यापारियों, जमींदारों व कृषकों को अत्यन्त लाभ हुआ। उनकी वस्तुओं का मूल्य असीम वृद्धि कर गया तथा उनको असाधारण लाभ हुआ। इनके

पास वस्तुएं तो कम थीं तथा इनका उत्पादन शनैः शनैः बढ़ रहा था, किन्तु इनकी माँग तुरन्त ही बढ़ गई और परिणाम स्वरूप मूल्य नित्य ही बढ़ने लगा। इसी भांति अनाज का मूल्य भी अत्यधिक वृद्धि कर गया और जमीदारों व कृषकों को एक बड़ा लाभ प्राप्त हुआ। बढ़ते हुए मूल्य का सरकार की आय पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। सरकार की आय में नाना प्रकार के टैक्सों द्वारा अत्यन्त वृद्धि हुई किन्तु इसके साथ २ सरकार को देश की रक्षा व प्रबन्ध पर अधिक व्यय करना पड़ा। सरकार के बजट में बहुत कमी हो गई तथा इस भाँति सरकार को बहुत हानि हुई।

अब वृद्धि करते हुए मूल्य को रोकना भी अनिवार्य है। इस लिये उन समस्त कारणों को रोकना आवश्यक है जिनसे मूल्य बढ़ जाते हैं। इस विषय में अन्य बातों के साथ-साथ यह परमावश्यक है कि वस्तुओं का उत्पादन अधिक से अधिक मात्रा में बढ़ाया जाय। यातायात के साधनों द्वारा वस्तुओं को प्रत्येक स्थान पर उचित संख्या में पहुँचाना चाहिये और इसके पश्चात् मूल्य पर भी प्रतिबन्ध रखना चाहिये। परमावश्यक बात यह है कि वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया जाय। जब तक वस्तुओं का उत्पादन नहीं बढ़ेगा, मूल्य की वृद्धि का रोकना असम्भव है। इसके अतिरिक्त सरकार को नोटों की संख्या भी कम करनी चाहिये। अनावश्यक रुपये से मूल्य व्यर्थ ही बढ़ जाते हैं। यह सब बातें उसी समय पूर्ण हो सकती हैं जब जनता तथा सरकार मिलकर कार्य करें।

अभ्यास के प्रश्न

१. वस्तुओं के मूल्य में अधिक तथा अकस्मात् घटा-बढ़ी

का किसी देश की आर्थिक परिस्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

How do the great and sudden changes in prices influence the economic conditions in a country ?

२. भारतवर्ष में मूल्य की घटा-बढ़ी पर ऐतिहासिक दृष्टि से एक लेख लिखिये।

Write an essay on the movement of prices in India during the last one hundred years.

३. मूल्य में घटा-बढ़ी का समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।

How do changes in price affect the different sections of society ?

४. दूसरे महायुद्ध के समय में मूल्य के बहुत अधिक बढ़ने के विभिन्न कारणों को विस्तार पूर्वक समझाइये।

Explain the causes that led to an extreme rise in prices during the last Great War.

५. मूल्य के बढ़ने को किस प्रकार रोका जा सकता है ? वर्तमान परिस्थिति में मूल्य को कम करने के लिये क्या करना चाहिये ?

How can the upward tendency in prices be checked ? What should be done to bring down prices under the present circumstances ?

: १४ :

राजस्व

वर्तमान काल में किसी देश की सरकार का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया है। अब सरकार के मुख्य निम्नलिखित कार्य हैं:—

(१) देश की बाहरी शत्रुओं से रक्षा करना।

(२) देश के भीतर शांति और सुव्यवस्था बनाये रखना

(३) जनता को शारीरिक, मानसिक आर्थिक और नैतिक उन्नति के उच्च साधन प्रदान करना।

(४) ऐसे कार्य करना जिनके लिये अधिक पूंजी की आवश्यकता हो और जिन्हें जनसाधारण सुगमता और मितव्ययतापूर्वक न कर सकता हो।

(५) यातायात, बैंक आदि की उन्नति करके देश के उद्योग और व्यापार की उन्नति करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आजकल सरकार के कार्यों का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। प्राचीन काल में तो सरकार का काम केवल रक्षा करना और शांति बनाये रखना ही था। परन्तु आजकल हम प्रत्येक बात के लिये सरकार की ओर देखते हैं। अब जनता चाहती है कि सरकार न केवल शिक्षा, स्वास्थ्य आदि निर्माण-

कारी कार्य करे वरन् सामाजिक और आर्थिक उन्नति के कार्यों में भी जनता की सहायता करे। भारतवर्ष में हरिजनों की सामाजिक बाधाएं हटाना, बाल विवाह आदि का निषेध, किसानों की ऋण ग्रस्तता दूर करना तथा देशी उद्योग धन्धों की उन्नति और उनका संरक्षण करना, देश की बेकारी और निर्धनता को दूर करना बड़ी जटिल समस्याएं हैं और जनता इस बात की आशा करती है कि सरकार इन सब समस्याओं को उचित ढंग से दूर करेगी।

अब प्रश्न यह उठता है कि सरकार यह सब कार्य कब कर सकती है। इस प्रश्न का सीधा उत्तर यह है कि इन सब कार्यों को दूर करने के लिये सरकार को भी रुपये तथा आय की आवश्यकता होती है जो कि सरकार इन कार्यों के करने में व्यय करे। राजस्व विभाग में हम सरकार की आय तथा व्यय सम्बन्धी बातों का ही अध्ययन करते हैं। इसमें केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों के आय व्यय अधिक महत्वपूर्ण हैं। म्यूनिसि-पैलिटियों तथा जिला बोर्डों की आय-व्यय का अध्ययन भी हम इसी विभाग के अंतर्गत करते हैं। साधारण परिस्थिति में भारत सरकार का आय-व्यय लगभग १२० करोड़ रु०, सब प्रांतीय सरकारों का १०० करोड़ रुपये, सब जिला बोर्डों का २० करोड़ रुपये और सब म्यूनिसिपैलिटियों का ४० करोड़ रुपये है।

सरकारी आय-व्यय के अध्ययन का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि हमने यह देखना है कि सरकार उचित ढंग से लोगों पर कर लगा कर अपनी आय प्राप्त करती है और उस आय को देश-निर्माणकारक कार्यों में लगाती है। यदि सरकार ऐसा नहीं करती है तो उसे हम अच्छी सरकार नहीं

कहेंगे। जनता से प्राप्त किया गया रुपया जनता की उन्नति और कुशलता के लिये ही प्रयोग में लाना चाहिये। इस सम्बन्ध में सरकारी आय-व्यय और लोगों के निजी आय व्यय में अन्तर समझ लेना भी आवश्यक तथा लाभप्रद है। एक साधारण व्यक्ति अपनी आय के अनुमान से ही व्यय निश्चित करता है। वह जितनी चादर देखता है उतने ही पाँव फैलाता है परन्तु सरकार पहले अपना व्यय निश्चित करती है। सरकार यह देखती है कि उसे विभिन्न कार्यों को करने के लिये कितने रुपये की आवश्यकता है। फिर वह उस रुपये को प्राप्त करने के उपाय सोचती है। प्रत्येक अर्थमंत्री वर्ष के आरम्भ में एक आय-व्यय का अनुमान पत्र बनाता है जिसे हम बजट कहते हैं। नये कर लगाते समय वह इस बात का अवश्य ध्यान रखता है कि उसकी कर लगाने की पद्धति श्रेष्ठ हो।

प्रत्यक्ष और परोक्ष कर—प्रत्यक्ष कर उसे कहते हैं जिसका भार उसी मनुष्य या संस्था पर पड़ता है जिससे वह लिया जाता है। इसे देते समय कर देने वाले को यह बात मालूम रहती है कि वह कितना कर दे रहा है। जैसे आयकर, मालगुज़ारी आदि प्रत्यक्ष कर हैं। परोक्ष कर वह होती है जिसका भार कर देने वाले दूसरों पर डाल देते हैं जैसे आयात निर्यात कर, बिक्री कर आदि। इस प्रकार का कर व्यापारी अपने ग्राहकों पर डाल देते हैं।

प्रत्यक्ष कर प्रत्येक व्यक्ति को अखरते हैं परन्तु परोक्ष कर इतने नहीं अखरते। इस से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि सब प्रकार के परोक्ष कर उचित होते हैं। जीवन की आवश्यकताओं पर परोक्ष कर लगाना उचित नहीं होता। जहां

तक हो यह कर विलासता की वस्तुओं पर लगाने चाहियें।

एक श्रेष्ठ कर पद्धिति के निम्नलिखित नियम हैं:—

१. **समानता**—इनके अनुसार प्रत्येक प्रत्यक्ष तथा परोक्ष कर का बोझ प्रत्येक व्यक्ति पर समान हो। यह कर आय अनुसार लोगों पर उचित होना चाहिये।

२. **निश्चितता**—कर की पद्धति ऐसी होनी चाहिये कि लोग सरकार को धोका देकर कर से बच न सकें।

३. **सुविधा**—इस प्रकार कर लगाया जाना चाहिये कि लोगों को उसके देने में कोई कठिनाई न हो।

(४) कर ऐसे भी होने चाहियें कि समयानुसार घटाए बढ़ाये जा सकें।

(५) कर वसूल करने का व्यय कम से कम होना चाहिये।

कर लगाते समय इन नियमों को ध्यान में रखना चाहिये।

केन्द्रीय सरकार का आय व्यय

१. **आयात निर्यात कर** (Customs) इस आय में आयात और निर्यात कर सम्मिलित हैं। भारत सरकार की आय का बहुत बड़ा भाग इस कर द्वारा प्राप्त होता है। सरकार की समस्त आय का लगभग ३३.७ प्रतिशत इस के द्वारा प्राप्त होता है। १६०० में यह आय केवल ४.६ करोड़ रुपये थी परन्तु १६३५-१६३६ में यह ७६.७३ करोड़ रुपये के लगभग हो गई है। दूसरे महायुद्ध के समय विदेशी व्यापार के कम हो जाने से यह १६४३-४४ में केवल ३० करोड़ रुपये रह गई थी। १६४८-४६ में इसका अनुमान ८१ करोड़ के लगभग लगाया गया था। इस आय के साधन को अच्छा नहीं समझा जाता क्योंकि इसका अधिकतर बोझ गरीबों पर पड़ता था।

(२) आयकर (Income Tax) भी भारत सरकार की आय का एक बहुत बड़ा साधन है प्रथम महायुद्ध के पूर्व इस से कुल आय तीन करोड़ रुपया थी परन्तु १९३३-३४ में इसके द्वारा आय का अनुमान ४७ करोड़ रुपये लगाया गया था। कुल आय का लगभग १३ प्रतिशत आय इसके द्वारा प्राप्त होती है। आय कर के तरीके में भी कुछ बुराइयां हैं जिनको दूर करना अत्यन्त आवश्यक है।

३. नमक कर (Salt Tax) इस से भी भारत सरकार को लगभग आठ करोड़ रुपये प्रति वर्ष आय थी। बहुत समय से लोग इसका विरोध कर रहे थे इसलिये अब यह कर हटा दिया गया है।

(४) **घरेलू कर** (Fxcise duty) इस आय में लोहे, पेट्रोल, मिट्टी का तेल, चीनी, माचिस आदि का कर सम्मिलित है। १९३४ में यह कर चीनी और माचिस पर लग गया था। १९३७ में चीनी के इस कर को एक रुपये पांच आने से दो रुपये प्रति हन्डरेटवेट कर दिया गया। १९४० में यह कर तीन रुपये प्रति हन्डरेटवेट कर दिया गया १९४४—४५ में इस कर द्वारा पच्चीस करोड़ रुपये की आय सरकार को हुई। कुल आय का लगभग १८.७ प्रतिशत आय इसी साधन द्वारा होती हैं।

(५) इसके अतिरिक्त भारत सरकार की आय के अन्य साधन रेल, डाक और तार, व्याज, करन्सी, जंगल, सिंचाई और सिविल शासन है।

भारत सरकार का व्यय—

१. रक्षा (Defence)—कुल आय का लगभग ४० या

५० प्रतिशत इस पर ही व्यय होता है। युद्ध के समय में यह व्यय और भी अधिक बढ़ गया था। १९४४—४५ में भारत सरकार का कुल व्यय ३६८.८१ करोड़ रुपया था। इसमें से ०१ करोड़ रुपया रक्षा विभाग पर ही व्यय किया गया था।

२. **सिविल शासन**—इस पर प्रति वर्ष १० करोड़ रुपये से अधिक व्यय होता है। यह व्यय अधिकतर शासन सम्बन्धी कार्यों पर ही होता है। शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य अच्छे कार्यों पर बहुत कम व्यय किया जाता है।

३. **ऋण और ऋण का व्याज** (Debt Services)—इस पर लगभग १५ करोड़ रुपया प्रति वर्ष व्यय होता है।

४. **कर वसूल करने पर व्यय**—इस पर भी बहुत अधिक व्यय होता है। इसके अतिरिक्त और अन्य कार्यों पर भी भारत सरकार व्यय करती है।

भारत सरकार के आय और व्यय का भली भांति अध्ययन करने से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि आय और व्यय दोनों ही श्रेष्ठ नियमों के अनुसार उचित नहीं हैं और इनमें बहुत से दोष पाए जाते हैं। आय अधिकतर वस्तुओं पर कर लगाकर प्राप्त की जाती है जिसका भार गरीबों पर अधिक पड़ता है और यह देश की शिल्पकारी की उन्नति के लिये भी हानिकारक है। अधिक आय ग़रीब व्यक्तियों के उपभोग में आने वाली वस्तुओं, उदाहरणतया नमक, तेल, माचिस, तम्बाकू, चीनी, चाय, कौफी से प्राप्त की जाती है। यह कर के नियमों के सर्वथा विरुद्ध है। यह ढंग निर्धनों को और अधिक निर्धन करता है और पूंजी पतियों को और अधिक पूंजी पति बना देता है। इससे देश में असन्तोष और गड़बड़ फैलती है जिससे देश को अत्यन्त हानि पहुँचती है। पूंजीपतियों से

सीधे तरीके से अधिक कर प्राप्त नहीं किया जाता। यदि भारतवर्ष की शिल्पकारी की उन्नति करनी है तो घरेलू कर (Excise Duty) को बन्द कर देना चाहिये और (Custom) या आयात निर्यात को रहने देना चाहिये, और नये प्रकार के कर भी लगाये जाने चाहियें जिनका भार पूंजीपतियों पर अधिक पड़े।

व्यय की भी यही दशा है। रक्षा और सेना आदि पर सब से अधिक व्यय किया जाता है। देश की उन्नति और लोगों की दशा सुधारने के कार्यों पर अत्यन्त कम व्यय किया जाता है जिससे यह देश दूसरे देशों की अपेक्षा बहुत पीछे है। निम्नलिखित चित्र के द्वारा भारतीय सरकार की आय और व्यय की अन्य देशों की आय और व्यय से तुलना करके अधिक बातों को ठीक प्रकार से समझा जा सकता है।

आय

देश	आय कर	उत्तरदायक	घरेलू कर एकसाइज	कस्टम	भूमि	बिक्री कर
	प्र. श.	प्र. श.	प्र. श.	प्र. श.	प्र. श.	प्र. श
बर्तानियाँ	३०.५	६.७	१२.८	२२.८	.०६	—
अमरीका	४०.७	,,	७.३	७.६	५.२	—
जापान	१६.३	२	२१.१	६.८	३.७	६
भारतवर्ष	१२.८	,,	१८.७	३३.७	०.१६	—

व्यय

देश	रक्षा	देश भ्रह विभाग	शिक्षा	स्वास्थ्य	सामाजिक भलाई
	प्र. श	प्र. श	प्र. श.	प्र. श.	प्र. श.
बर्तानियाँ	१५.१	२.१	६.५	२.८	१६.५

अमरीका	१८.	०.६	—	०.३	५.५
जापान	४५.८	८४	६२	—	—
भारतवर्ष	४१.२	२.०	०.६	०.५	

१. आय कर (Income Tax.)—आय कर एक ऐसा कर है जो लोगों को स्वयं देना पड़ता है। सर्व प्रथम १८६० में भारतवर्ष में आय कर ग़दर की हानियों को पूरा करने के लिये लगाया गया था। इसके पाँच वर्ष पश्चात् यह बन्द हो गया। १८६७ में दुबारा एक एक्ट पास हुआ जिसके द्वारा कार्यों और व्यापार इत्यादि पर कर लगा दिया गया। कृषि पर कर नहीं लगाया गया। १८७२ तक ऐसी ही दशा रही। १८७८ में फिर व्यापारी लोगों और दस्तकारों के लिये एक लाइसैंस फीस की दशा में एक कर लगा दिया गया। इसके अनुसार कृषि के अतिरिक्त और सब प्रकार की आयों पर टैक्स लगा दिया गया। एक हज़ार और दो हज़ार की आय पर कर चार पाई प्रति रुपया था और दो हज़ार से अधिक की आय पर पाँच पाई प्रति रुपया था। जातीय कार्यों के लिये जो आय होती थी और जो दान इत्यादि की दशा में प्राप्त होता था उस पर कर नहीं लगता था। सन् १९०३ में कम से कम आय जिस पर टैक्स लग सकता था पाँच सौ से एक हज़ार कर दी गई।

पिछली बड़ी लड़ाई से पहले आय टैक्स से केवल ३ करोड़ रुपया आय की। पूंजी पतियों पर इसका अधिक भार नहीं पड़ता था। १९१७ में दर कुछ बदल दी गई। १९१९ ई० में सब से प्रथम सरकारी टैक्सों में कुछ रिआयत करने का विचार किया गया। १९३१ में भी कम से कम एक हज़ार रुपये पर टैक्स लगता था। १९३७ में आय कर की दर १९३१

वाली थी। केवल कम से कम रक़म जिस पर आय कर लगता था एक हज़ार से दो हज़ार कर दी गई।

सुपर टैक्स—यह भी इनकम टैक्स के रूप में लगाया गया। इसकी दर एक आना नौ पाई प्रति रुपये से छः आने प्रति रुपये तक थी। फिर एक कमेटी स्थापित की गई जिसका कार्य इसके अवगुणों को दूर करना था। १९३९ में सर्व आयकर (Step System) के अनुसार लिया जाने लगा इसके अनुसार पहली अप्रेल सन् १९३९ को इन्कम टैक्स की निम्नलिखित दरें थी :—

इनकमटैक्स की दर

१५०० रुपये से कम आय	कोई कर नहीं
१५०० से—५००० तक	९ पाई प्रति रु०
५००० से—१०००० तक	१ आ० ३ पा० प्रति रु०
१०००० से—१५००० तक	२ आ० प्रति रु०
इसके पश्चात् शेष पर	२ आ० ६ पा० प्रति रु०

विभाग की कोशिशों के परिणाम के अनुसार सरकार को १९३९—४० में लगभग ३२० लाख रुपये का और अधिक लाभ इस दशा में हुआ कि लोग कर से न बच सकें। सितम्बर १९३९ में लड़ाई के आरम्भ होने पर इसमें और कुछ बदल की गई।

फिर लड़ाई के कारण जो लाभ हुआ उस पर $66\frac{2}{3}$ प्रतिशत के हिसाब से अधिक लाभ वाला कर अर्थात् E. P. T. लगा दिया गया। ३६००० हज़ार से अधिक आय पर यह कर लगता था। आय कर को मिलाकर लोगों को लगभग ८० प्रतिशत अपने लाभ पर कर देना पड़ता था। १९४४—४५ के बजट के अनु-

सार शेष २० प्रतिशत भी लोगों से कर के रूप में लिया जाने लगा। १६४३—४४ में इनकमटैक्स से आय का अनुमान १०२ करोड़ रुपये का लगाया गया था, परन्तु यह आय १३८ करोड़ रुपये हुई और ६२ करोड़ रुपये की आय E. P. T. से हुई। १६४१ के पश्चात् सब प्रकार के इनकमटैक्स की दर बढ़ा दी गई। ७५० रुपये से अधिक की आय पर भी ६ पा० प्रति रुपये के हिसाब से आय कर लगा दिया गया। इस कर की $\frac{1}{4}$ रकम पोस्ट औफिस सेविंग बैंक में जमा करके चुकाई जा सकती थी। इस पर २५ प्रतिशत ब्याज मिलेगा परन्तु यह लड़ाई समाप्त होने के एक वर्ष पश्चात् निकाला जा सकता है। फिर दर इस प्रकार हो गई।

१५०० रुपये आय	कुछ नहीं
१५०० से—५००० पर	१५ पा० प्रति रुपये
दूसरे ५००० पर	२ आ० प्रति रुपया
फिर ५००० पर और अधिक पर	३ आ० ६ पा० प्रति रुपया

२००० तक की आय पर कोई कर नहीं होता था। कम्पनियों और कारपोरेशन इत्यादि की आय पर २ आने ६ पाई प्रति रु० आय कर लगता था। इसके अतिरिक्त अधिक आय पर सर चार्ज भी लगता था। इसका परिणाम यह होता था कि जिस आदमी की आय ५ लाख रुपये से अधिक होती थी उसको ५ लाख रुपये से ऊपर आय पर १४ आने ८ पाई टैक्स देना पड़ता था।

इंटैरिम गवर्नमेंट के काल में बजट में कम से कम रकम जिस पर कर लगेगा ५ हजार रुपया करने की राय प्रगट की गई थी। आशा है कि अब इसकी त्रुटियां दूर हो जायगी। ३१ मार्च सन् १६४६ को E. P. T. समाप्त कर दिया गया।

Tax—आवश्यक होता है और प्रत्येक व्यक्ति को देना पड़ता है। यह आवश्यक नहीं कि जितना कर एक व्यक्ति देता है, उसे सरकार की ओर से उतनी ही सुविधाएं पहुँचाई जायें। यह आय पर वा सम्पत्ति पर लगाया जाता है।

House Tax—यह टैक्स मकान के किराये पर लगाया जाता है। यह म्युनिसिपैलिटी की ओर से लिया जाता है। देहली में मकान के किराये पर एक १० प्रतिशत टैक्स देना पड़ता है। यदि मालिक मकान, मकान में स्वयं रहता हो तो भी यह कर देना पड़ता है। परन्तु उसे १५ के किराये तक यह कर नहीं देना पड़ता।

Entertainment Tax—यह टैक्स १९३७ में कांग्रेस सरकारों के प्रान्तों में लगाये गये थे। यह सनेमा और दूसरी दिल बहलाने वाली जगहों पर लगाया जाता है। सिनिमा के टिकटों पर दो आने प्रति रुपया है। इस प्रकार का टैक्स बहुत ही ठीक है।

Inheritance Tax—इस प्रकार के टैक्स लगाने की भी कोशिश की जा रही है। यह टैक्स उन लोगों पर लगाना चाहिये जिनके माता पिता उनके लिये एक बड़ी जायदाद या रुपया छोड़ जाते हैं।

Fee—यह भी सरकार को देनी होती है परन्तु उस समय जब कि देने वाला व्यक्ति कोई विशेष रियायत पाता है या कोई काम करता है जैसे रजिस्ट्री करना इत्यादि की फीस।

Rate—यह भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार दे सकता है। यह उसी समय देनी पड़ती है जबकि वह व्यक्ति किसी वस्तु का उपयोग कर रहा है अथवा उससे लाभ उठा रहा है। यह

उपयोग अथवा लाभ के अनुसार ही दी जाती है। जैसे रेल का किराया, पानी का टैक्स इत्यादि।

Fine—यह भी जरूरी देना पड़ता है। यह उस व्यक्ति को देना पड़ता है जो कि सरकार के नियमों का पालन नहीं करता और उनके विरुद्ध काम करता है। इसका उद्देश्य यह होता है कि वह सरकार के नियमों के विरुद्ध कोई कार्य न करे।

दो वर्ष पूर्व से केन्द्रीय सरकार के बजट में अन्य खर्चों की मदें भी आगई हैं। इनमें खाद्य पदार्थों पर लगभग २९ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष व्यय हो रहा है। शरणार्थियों की सहायता के लिये भी अब सरकार कुछ न कुछ व्यय कर रही है। देश की उन्नति के लिये जो योजनायें बनाई जा रही हैं उन पर भी व्यय हो रहा है। १९४९—५० के बजट में लगभग १५ लाख रु० की बचत रही। २० करोड़ रुपये के नये टैक्स लगाये गये और लगभग १५ करोड़ रुपये टैक्सों में कमी की गई। मुद्रा के फैलाव को रोकने के लिये इस वर्ष केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकारों तथा म्यूनिसिपैल्टियों का भी यही प्रयत्न रहा कि सब के बजटों में व्यय आय से अधिक न दिखाया जाय। इस वर्ष के नये करों में पोस्टकार्ड के मूल्य में वृद्धि, लिफाफे के मूल्य में वृद्धि, कपड़े पर टैक्स आदि मुख्य बातें हैं। प्रान्तों में बिक्री टैक्स लगा दिया गया है। इस से प्रान्तों की आय में वृद्धि हुई है। विभिन्न मदों का ज्ञान कराने के लिये हम केन्द्रीय सरकार के १९४८-४९ के बजट की संक्षिप्त तालिका देते हैं:—

SUMMARY OF ESTIMATES

REVENUE

(In lakhs of Rs.)

	Revised 1947-48	Budget 1948 49
1. Custom ..	54,50	81.75
		—58*
2. Central Excise Duties	20,73	34,00
3. Corporation Tax	40,43	13.10*
		39,50
4. Taxes on Income	74,57	90,50
		—3,92*
5. Salt ...	90	...
6. Opium ...	68	1,40
7. Interest ..	46	1,17
8. Civil Administration	7,29	5,12
9. Currency and Mint	1,25	9,40
10. Civil Works ...	47	81
11. Other sources of revenue	5,11	4 36
12. Contribution from Posts and Telegraphs	2,14	38
		40*
13. Contribution from Railways		4,50
14. Deduct – Share of income-tax revenue Payable to Provinces	—29,74	—37,87
		1,96*
Total Revenue ...	1,78,77	2.56.28

EXPENDITURE

(In lakhs of Rs.)

	Revised 1947-48	Budget 1948-49
1. Direct demands on revenue ..	5,45	8,98
2. Irrigation ...	8	13
3. Debt Services ...	19,24	41,16
4. Civil Administration	2[illegible].75	34,56
5. Currency and Mint	1,14	2,20
6 Civil Works ..	6,28	7,21
7. Pensions	1,57	2,70
Miscellaneous—		
8. Expenditure on refugees	14,89	10,04
9. Subsidy on foodgrain ..	20.16	19,91
10. Other expenditure ..	2,36	2.28
11. Grants to Provinces	1,85	2,96
12. Extraordinary items	1,89	3,16
13. Defence Service (net)	86,63	1,21,08
Total Expenditure	1,85,29	2,57,37
Net Deficit	6,52	1,09

*Budget proposals.

प्रान्तीय सरकारों के व्यय की मदों का ज्ञान कराने के लिये संयुक्त प्रान्त की आय व्यय का वर्णन दिया गया है।

संयुक्त प्रान्त का अनुमानित व्यय

आय (Revenue)	अनुमानिक बजट
आय पर कर (कारपोरेशन छोड़ कर)	१६४६ ४७
मालगुजारी (Land Revenue) ...	६,६,३,८८,०००
प्रान्तीय आबकारी (Prov. Excise)	५,५३,७८,०००
स्टाम्प (Stamps)	२,१३,५६,०००
जंगल (Forests	१,४८,६२,४००
रजिस्ट्रेशन	१५,००,०००
मोटर गाड़ी ऐक्ट के अन्तर्गत आय (Receipts under Motor Vehicles act)	१६,६५,०००
अन्य कर और ड्यूटी	१,४६,५१,०००
सिंचाई (Irrigation)	२,०१,६८,१००
सिविल शासन (Civil Administrations)	
न्याय	२७,५७,१००
जेल	१०,२४,७००
पुलिस	७१,७२,६००
शिक्षा	१६,०१,०००
चिकित्सा	११,७८,१००
स्वास्थ्य	७,६०,१००
कृषि	५६,७१,६००
ग्राम सुधार	८,१००
पशु चिकित्सा (Veterinary)	१५,२७,१००
सहकारिता (Co-operation)	५,०८,६००
उद्योग-धन्धे (Industries)	३८,५०,२००

फुटकर विभाग (Miscellaneous Departments)	२,७९,६००
सिविल निर्माण कार्य (Civil Works.)	३२,६७,०००
फुटकर (Miscellaneous)	
दुर्भिक्ष बीमा फंड से लिया Transfer from Famine Relief Fund)	८१,६००
स्टेशनरी और छपाई	१३,९७,७००
फुटकर आय	३,८२,२००
केन्द्रीय सरकार से सहायता (Aid from central Govt.)	१,१६,६३,३००
असाधारण आय (Extraordinary Receipts	२८,६७,८००
सिविल रक्षा (Civil Defence)	४,६५,०००
कुल आय	२९,१५,०२,२००

व्यय (Expenditure)	अनुमानित बजट १९४६-४७ रु०
मालगुजारी (Land Revenue)	१,३६ ९३,२००
प्रान्तीय आबकारी (Prov. Excise)	५१,१९,१००
स्टाम्प (Stamps)	३,९९ ६००
जंगल (Forests)	६५,७४,४००
रजिस्ट्रेशन	७,१५,६००
मोटर गाड़ी ऐक्ट सम्बन्धी व्यय (Charges on account of Motor vehicle act)	२०,०१ २००
अन्य कर और ड्यूटी	१,०८,७००
सिंचाई (Irrigation)	१,७६,८०,०००
ऋण (Debt) पर व्यय	

अर्थात् सूद (Interest)	६४,६०,३००
सिविल शासन	
साधारण शासन	
(General Administration)	२,४७,०१,५००
न्याय	६८,७३ ५००
जेल	७६,८६,६००
पुलिस	४४५२४,८००
वैज्ञानिक विभाग (Scientific Departments)	५१,४००
शिक्षा	३,१८,४६,८००
चिकित्सा	१,३३.५८,६००
स्वास्थ्य	७५,६०,२००
कृषि	१,७७,५३,७००
ग्राम-सुधार	१६०,०२,३००
पशु-चिकित्सा	५३,४६,२००
सहकारिता (Co-operation)	२५,३६,८००
उद्योग धंधे	७५,६४.८००
वायुयान (Aviation)	१,००,०००,
फुटकर विभाग	१५४०७००
सिविल निर्माण कार्य (Civil works)	१६८,२१,०००
दुर्भिक्ष निवारण (Famine Relief)	८१,६००
पेन्शन (Pensions) इत्यादि	१,३६,६३,३००
स्टेशनरी और छपाई	३०,५२,१००
फुटकर व्यय	६५,०५,०००
असाधारण व्यय (Extraordinary charges)	१,७७,१३,७००
आय रक्षित कोष में जमा	
(Transfer to the Revenue Reserve Fund)	४,६५,०००
कुल व्यय	२६,१५,०२,२००

अभ्यास के प्रश्न

१. केन्द्रीय सरकार के आय व्यय की मदों पर एक विस्तृत लेख लिखिये। उनकी आलोचना कीजिये।

Write a lucid note on the sources of revenue and heads of expenditure of the Central Gvernment. Comment upon them.

२. निम्नलिखित पर नोट लिखिये

(१) बिक्री कर (२) मनोरञ्जन कर (३) फी (४) रेट (५) प्रत्यक्ष कर (६) परोक्ष कर

Write short notes on :—

(i) Sales Tax, (ii) Entertainment Tax, (iii) Fee, (iv) Rate, (v) Direct Taxes, (vi) Indirect Taxes.

३. वर्तमान युग में सरकारके कार्य क्षेत्र में किस प्रकार वृद्धि हो गई है ?

How have the functions of the State increased in modern times ?

४. सरकार को अपनी आय तथा व्यय की मदें निश्चित करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये ?

What things should the Government consider in fixing its items of income and expenditure ?

५. निजी आय व्यय तथा सरकारी आय व्यय में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

Explain the difference between public finance and private finance.

: १५ :

दिल्ली प्रान्त

दिल्ली प्रान्त भारतवर्ष का सबसे छोटा प्रान्त है। हाल ही में इस प्रान्त के क्षेत्रफल को बढ़ाने और इसको ठीक करने की कुछ योजनायें सरकार के सामने रखी गई थीं। इसका वर्तमान क्षेत्रफल ५७४ वर्ग मील है। यह प्रान्त यमुना के पश्चिमी तट पर स्थित है। इसका अधिकतर भाग यमुना के पश्चिमी तट पर है। कुछ गांव पूर्वी तट पर भी स्थित हैं। प्रान्त में कुल ३०५ गांव और ६ कस्बे हैं।

इस प्रान्त की अधिकतम लम्बाई ३३ मील और चौड़ाई ३० मील है। इस प्रान्त में केवल एक ज़िला और एक तहसील है। १६१५ ई० में शहादरा शहर यू. पी. से लेकर इस प्रान्त में मिला दिया गया था।

जलवायु शुष्क और गरम है। प्रान्त की जलवायु लगभग पूर्वी पंजाब की जलवायु के समान है। ग्रीष्म ऋतु यहां जल्दी आरम्भ हो जाती है। इस प्रान्त में गर्मी बहुत पड़ती है। जून के महीने में तापांश ११०° तक पहुंच जाता है। गर्मी भी प्राय: अधिक पड़ती है और तूफान आदि भी खूब आते हैं। धूल आदि भी खूब उड़ती है। इन सब बातों के कारण जलवायु और भी दोषपूर्ण हो जाती है। जाड़ों में बहुत अधिक सर्दी

पड़ती है। कभी-कभी तो तापांश freezing point तक पहंच जाता है।
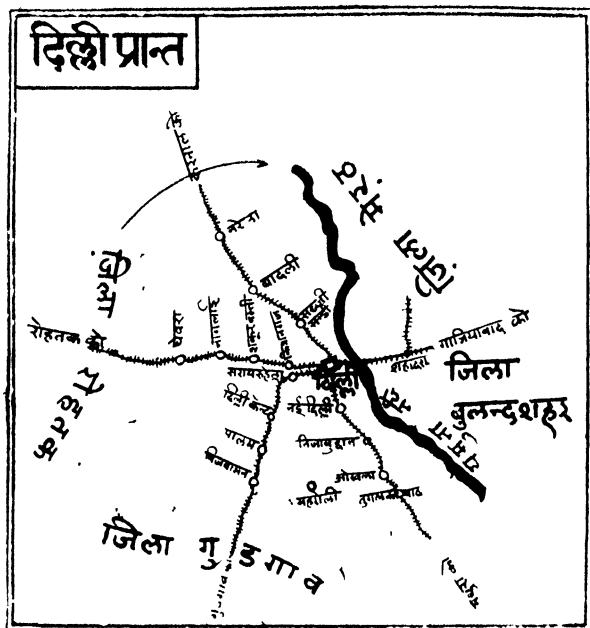
वर्षा—प्रान्त में वर्ष भर में कुल वर्षा २७. ७" के बराबर होती है। यह वर्षा मौनसून पवनों द्वारा होती है। इस कारण अधिकतर वर्षा बहुत तेज़ बौछारों में गर्मी में ही होती है। प्रान्त के भिन्न-भिन्न भागों में वर्षा अविश्वसनीय है और न्यूनाधिक है। कभी तो वर्षा आवश्यकता से अधिक हो जाती है और कभी बहुत कम होती है।

मिट्टी—प्रान्त में अधिकतर रसौली मिट्टी पाई जाती है। यह मिट्टी नर्म होती है और ब्राउन रंग की होती है। डाकर मिट्टी के लिये अधिक नमी तथा वर्षा की आवश्यकता है। यह मिट्टी नजफगढ़ झील के निकटवर्ती भागों में और कुछ बांगर भाग में मिलती है। भोर मिट्टी या तो नदी के पास मिलती है या पहाड़ के पास के भागों में। रेह और शोरा (Shor) एकत्रित होने के कारण बहुत सी भूमि खराब हो गई है। इस के कारण सैंकड़ों एकड़ भूमि कृषि के योग्य नहीं रही। इस प्रकार प्रान्त में रसौली, डाकर और भोर की किस्म की मिट्टी पाई जाती है। डाकर की मिट्टी उपजाऊ होती है और गेहूँ आदि की उपज के लिये अधिक लाभ-दायक है।

दिल्ली शहर बहुत समय से भारतवर्ष की राजधानी रहा है इस कारण इसने अधिक महत्व पा लिया है। व्यापारी भी अधिकतर यहां पर रहना पसन्द करते हैं।

जन संख्या—दिल्ली प्रान्त की जन संख्या का अध्ययन करने से मालूम होगा कि जन-संख्या प्रायः बढ़ती जा रही है। निम्नलिखित अकों से जन-संख्या का काफी पता चल सकता है :—

जन-संख्या लाखों में

१६११	१६२१	१६३१	१६४१	१६४७
४.२ लाख	४.६ लाख	६.४ लाख	६.२ लाख	लगभग १५ लाख

प्रान्त की जन-संख्या के इस गति से बढ़ने के निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) प्रथम तो उत्पत्ति और मृत्यु में पर्याप्त अन्तर है। उत्पत्ति की संख्या ४७.४ प्रति हजार और मृत्यु की

२७.६ प्रति हज़ार है। इस प्रकार १६.८ प्रति हज़ार जन-संख्या बढ़ती है। कुल भारतवर्ष में जन-संख्या में बढ़ोतरी १३ प्रति हज़ार है। इसीलिये यह संख्या काफी अधिक है।

(२) भारतवर्ष की राजधानी होने के कारण केन्द्रीय सेक्रिट्रियेट भी यहीं पर स्थित हैं और भारतीय सरकार के बहुत से दफ्तर यहीं स्थित हैं जिन में हज़ारों आदमी काम करते हैं।

(३) अब दिल्ली एक व्यापार तथा शिल्प का भी केन्द्र बन गया है। बड़े पैमाने पर माल उत्पन्न करने वालों के कारण मील भी स्थापित हो गये हैं और छोटे पैमाने पर भी बहुत से काम होते हैं। इसीलिये आसपास से मज़दूर भी आकर काफी संख्या में आबाद हो गये हैं।

(४) व्यापार का केन्द्र होने के कारण बहुत से सौदागरों और बीमा कम्पनियों ने अपने प्रधान कार्यालय दिल्ली में स्थापित कर लिये हैं।

(५) दूसरे महायुद्ध के कारण बहुत से दफ्तर दिल्ली में स्थापित कर दिये गये। बहुत सी नई २ इमारतें तैयार हुईं। इस लिये बहुत से ठेकेदार अपने स्टाफ व मज़दूरों के साथ देहली में आकर बस गये। दफ्तरों की संख्या बढ़ने से जन-संख्या में अधिकता हो गई।

(६) दिल्ली एक एतिहासिक स्थान है और यहां पर बहुत से देखने योग्य स्थान हैं। इस कारण भी अधिकतर लोग यहाँ पर आगये हैं।

(७) देश के विभाजन के पश्चात् झगड़े आदि का भी दिल्ली की जन-संख्या पर काफी प्रभाव पड़ा है। और इस कारण भी बहुत आदमी दिल्ली में आकर बस गये हैं।

दिल्ली की वर्तमान जन-संख्या प्रति वर्गमील लगभग १७०० है। पुरानी दिल्ली में जन-संख्या प्रतिवर्ग मील ६६५८० है। प्रत्येक गाँव की औसत जन-संख्या ७२० है और नगर की ७७२६८ के लगभग है। इस कारण मकान आदि की काफी तंगी है।

जन संख्या का घनत्व:—दिल्ली प्रान्त की जन संख्या का घनत्व १९४१ में १५९९ था परन्तु अब तो यह १७०० हो गया है। १९३१ में यह घनत्व १११० था। इस से यह प्रतीत होता है कि दिल्ली प्रान्त को जन संख्या भी बड़ी तेजी से बढ़ रही है। प्रत्येक गांव की औसत जन-संख्या ७२० और कस्बे की ७७३०० है। इस प्रान्त में गांव में भी जन-संख्या का घनफल और अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बहुत अधिक है। पुरानी दिल्ली में जन-संख्या का घनफल सब से अधिक है जो ७०,००० के लगभग है। शहर बहुत घना बसा हुआ है जिस के कारण मकानों की समस्या ने एक भयंकर रूप धाररण कर लिया है। मकानों के किराये बहुत अधिक हैं। मृत्यु संख्या भी बहुत अधिक है।

१९४१ में समस्त श्रमिकों की संख्या लगभग ५ लाख ८८ हजार थी। १९३५ में कुल जन-संख्या का ४२.४७ और १९४१ में ६४.२१ लोग उद्योग में लगे हुये थे। नीचे दिये कोष्ठक से इस सम्बन्ध में कुछ बातों का पता चलता है:—

श्रम	१९३१ में श्रमियों की संख्या	१९४१ में श्रमिकों की संख्या	प्रतिशत
उद्योग	७४,०४९	१४८,३२०	२५.२
कृषि	६६,५७६	१२०,२५१	२०.४
व्यापार	३५,६२४	९३,८४३	१५.९

श्रम	१९३९ में श्रमियों की संख्या	१९४१ में श्रमिकों की संख्या	प्रतिशत
सरकारी दफ्तर आदि	२२,७८२	६०,११५	१०.२
फुटकर	४७,६०५	१३२,९८७	२२.७

देश के विभाजन का इस पर भी बहुत प्रभाव पड़ा है। अब उद्योग में संलग्न लोगों की संख्या बढ़ गई है।

दिल्ली प्रान्त में अधिकतर लोग शहर में ही रहते हैं। कृषि में भी अधिक लोग नहीं लगे हैं। केवल २०% लोग कृषि में लगे हैं।

इस प्रान्त में अधिकतर लोग उद्योग और व्यापार में लगे हुये हैं। यहां के मुख्य उद्योग कपड़ा बुनना, लोहे का काम, शीशे का काम, मिट्टी के बर्तन, चांदी, और सीने के तागों का कार्य, रेशमी साड़ियां, बनयान, मिठाई आदि हैं। व्यापार कपड़ा, खाद्य पदार्थ, साबुन, और मकान बनाने के सामान आदि में होता है। अब दिल्ली में भिखारियों की संख्या भी वृद्धि करती जा रही है।

श्रमजीवी—दिल्ली अब शिल्प का केन्द्र बनता जा रहा है। बड़ी २ शिल्पकारियां तथा घरेलू धन्धे भी उन्नति कर रहे हैं। लगभग १७% लोग उद्योग धन्धों में कार्य करते हैं। आरम्भ में श्रमजीवी अहमदाबाद, बम्बई, राजपूताना और मध्य भारत आदि से दिल्ली में लाये गये थे। ये लोग अधिकतर किसान थे परन्तु अब ये यहीं पर बस गये हैं। मिलों में दिल्ली के लोग लिये जाते हैं। किसान लोग थोड़े समय के लिये मिलों में काम करने आ जाते हैं। श्रमजीवी या तो बड़े २ ठेकेदारों द्वारा मिलते हैं या स्वयं मिलों में जाकर काम देखते हैं। बड़े २ मिलों में श्रमियों की दशा अच्छी है।

बिरला मिल और क्लाथ मिल में कूलिंग सिस्टम भी है और अन्य प्रबन्ध भी ठीक है परन्तु छोटे-छोटे कारखानों में श्रमियों की दशा अच्छी नहीं है। इन श्रमियों को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उनके रहने का ठीक प्रबन्ध नहीं है और इस बात का उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। श्रमियों के रहने का प्रबन्ध मिलों की ओर से भी है तथापि अधिकतर श्रमजीवियों को रहने का प्रबन्ध स्वयं करना पड़ता है। मिलों में बुनने वालों का वेतन लगभग ३५ रुपये हैं। इसके अतिरिक्त मँहगाई तथा अलाउन्स भी मिलता है। किन्तु साधारणतया श्रमियों का वेतन कम है। इसीलिये उनका जीवनस्तर बहुत गिरा हुआ है। न तो उन्हें खाने को अच्छा मिलता है न पहनने को और न मकान। इन सब बातों के कारण स्वास्थ्य बहुत खराब रहता है। Punjab Trade Employees Act को दिल्ली में लागू कर दिया गया है। इसके आधीन श्रमियों को विशेष समय तक काम करना पड़ता है और छुट्टियां आदि भी मिलती हैं। इस समय दिल्ली में श्रमियों की २५ यूनियनें हैं। इनमें से प्रसिद्ध All India Trade Union Congress से सम्बन्धित हैं। प्रसिद्ध यूनियनें निम्नलिखित हैं :—

देहली टैक्सटाइल वरकर्स यूनियन। देहली प्रेस वर्क्स यूनियन। देहली प्रोविंशियल शॉप असिस्टैन्ट यूनियन। श्रमी संघ आदि। अच्छे और योग्य नेता न होने के कारण श्रमियों में पर्याप्त संगठन नहीं है। किन्तु अब दशा सुधरती जा रही है।

दिल्ली म्युनिसिपैलिटी के आय तथा व्यय के साधन
Heads of Income and Expenditure of D. M. C.

और म्युनिसिपैलिटियों की तरह दिल्ली म्यूनिसिपैलिटि की

आय का विशेष साधन रेट्स और टैक्स Rates & Taxes हैं। कुल आय का लगभग १/३ इससे प्राप्त होता है। भारतबर्ष की म्यूनिसिपैलिटियां लगभग निर्धन हैं और अपना कार्य चलाने के लिये उन्हें या तो राज्य से ऋण लेना पड़ता है या सहायता लेनी पड़ती है। देहली म्यूनिसिपैलिटि की अधिकतर आय टरमिनल टैक्स और हाउस टैक्स से होती है। टरमिनल टैक्स से लगभग २० लाख रुपया प्रति वर्ष और हाउस टैक्स से ६ लाख रुपया प्रति वर्ष मिलता है। वर्तमान समय ही में कमेटी ने हाउस टैक्स को दुगना कर दिया है और साइकिल आदि पर भी टैक्स लगा देने का निश्चय किया है। पिछले कुछ वर्षों से कमेटी का कार्य भूमि की आय से चलता रहा। पिछले वर्ष के बजट में १८ लाख की कमी का अनुमान लगाया गया था। १९४९-५० में आय का अनुमान १३६·६३ लाख और व्यय १३६·५५ लाख। ३१ मार्च १९५० को १ लाख रुपये की बचत होगी। १९३९-४० के पश्चात् यही पहला बजट है जिसमें घाटा नहीं दिखाया गया।

आय में २६ लाख की वृद्धि इस प्रकार हुई है :—

		लाख
१. हाउस टैक्स	(टैक्स में बढ़ोतरी तथा मकानों की संख्या बढ़ने के कारण)	१०
२. चुंगी	(सर चार्ज की दर के बढ़ने के कारण)	८
३. म्यू. प्रोपरटी	(मार्केट की दुकानों का किराया)	३
४. शिक्षा	(नये स्कूलों का फर्नीचर जिस का मूल्य सरकार से प्राप्त हो जायगा)	२.५

५. मोटर टैक्स	(मोटरों की संख्या बढ़ने के कारण)	०.७५
६. मकान बनाने के प्रार्थना पत्र		०.५०
७. पानी		०.६०

अभी तक सरकार से २५% ग्रान्ट मिल रही है। ६०% के लिये प्रयत्न किया जा रहा है परन्तु अभी तक कुछ नहीं हुआ। केवल १६ लाख आय बढ़ी।

व्यय में सात लाख की वृद्धि इस प्रकार हुई :—

१. साधारण व्यय	२' ६३
२. शिक्षा	५. ६८
३. डाक्टरी सहायता	. ६२
४. पब्लिक हैल्थ	४. ३१
५. न्यू. कार्य	२. ४४
	१६. ५२

शिक्षा विभाग में १०० और अध्यापक रखे गये हैं। पिछले वर्ष तो मार्केट बनाने में १३ लाख व्यय कर दिया गया था परन्तु इस वर्ष इस पर कुछ व्यय नहीं किया जायगा। एक 'X Ray' प्लान्ट मंगवाया जायगा। श्रमिकों की मजदूरी और वेतन में भी वृद्धि कर दी गई। अन्य कार्यों पर इस वर्ष १० लाख व्यय किया जायगा।

पहले १९४८-४६ का व्यय १२७.४८ लाख था। इस वर्ष २.३० लाख मीटर आदि और पानी के नल डालने पर व्यय होगा, इस समय १६००० बिना मीटरों के कनैक्शन हैं। ४. २६ लाख सफाई के लिये निम्न चीजों पर व्यय किया जायगा :—

पब्लिक लेटरिन ७ सेट, २७ सेट पेशाबघर, ५ सैट बाथ, आदि। ३. २३ लाख स्कूलों के लिये बिल्डिग बनाने में व्यय

किया जायगा। करौल बाग में मार्केट बनाने में ३ लाख, ४ लाख सड़कों की मरम्मत आदि। ७ लाख कर्ज भंगियों के मकान बनाने के लिये।

दिल्ली प्रान्त अब उन्नति की ओर जा रहा है। Adult Education, Social Service Education, Co-operation, Compulsory Education आदि द्वारा प्रान्त की हर प्रकार से उन्नति करने का प्रयत्न किया जा रहा है। शिक्षा के लिये १०० स्कूल और खोल दिये गये हैं। घरेलू धन्धों की उन्नति का भी उचित प्रबन्ध किया जा रहा है। अब गावों की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है।

Income & Expenditure of Delhi Municipality

Income.

Heads of Income	Revised Budget for 1944—45	Budget Estimate for 1945-46
1. General Department.	Rs.	Rs.
(A) General	7,000	7,500
Sale of Municipal land	1,00,000	50,000
Sale of Municipal forms	2,000	7,000
Govt. grant for D. A.	15,000	20,500
Grant for Govt. for gardens	18,000	18,000
Miscellaneous Sources	35,750	34,500
(B) Tax & Licensing Dept:-		
Tax on buildings and lands	7,00,000	9,00,000

Terminal Tax	25,27,500	27,27,500
Tolls on Vehicles and animals	17,000	20,000
Taxes on animals	12,200	21,500
Taxes on Vehicles	1,67,000	1,69,000
Eees for vehicle licences	1,13,000	1,18,000
Miscellaneous	44,300	53,300
Property :—		
(C) Income from Municipal	2,39,000	2,81,500
(D) Public Safety and Convenience	9,300	9,300
2. Education:—		
(a) Fees & Fines	47,850	18,000
(b) Contribution from Govt.	2,10,000	2,14,000
3. Medical	30,000	40,000
4. Public Health	56,200	54,760
5. Water Supply	11,30,960	11,73,600
6. Veterinary Department	6,000	5,000
7. Municipal works	50,000	25,000
8. Suspense Account	7,52,050	7,29,500
Total	63,19,310	67,00,260
Opening Balance	291,159	195,099
Grand total	6610,469	68,95 359

Expenditure

Heads of Expenditure	Revised Budget for 1944-45	Budget Estimate for 1945-46
1 General Departments.	Rs.	Rs.
(a) General	402,050	441,825
(b) Tax & Licensing Deptt.	275,250	276,225
(c) Municipal Properties	96,830	96,630
(d) Public Safety & Convenience	4,36,900	431,670
2. Education	8,01,800	8,28,750
3. Medical	5,41,850	4,86,600
4. Public Health	18,55,400.	2,003,250
5. Water Supply	970,000	1,018,200
6. Veterinary Deptt.	10,410	11,500
7. Municipal Work:—		
Establishment	8,6000	93,500
Orignal Works	286,600	420,500
Engineering Branch	1,08,700	92,950
Repairs	1,19,80	1,09 300
Streets	2,41,500	241,109
Captail Expenditure	66,080	1,12,000
8. Reserve for Unforeseen Charges	50,000	50,000
Total Expenditure	63,46,200	67,14,600
Suspense Account	752,050	7,29,500
Grand Total	70,98,250	74,44,100

Revenue Account

Income	Revised 1948-49. lacs.	B.E. 1949-50 lacs,	Exp.	P. 1948-49 lacs.	B.E. 1949-50 lacs.
1. Opening Balance	16.06	11.95	1. Ord. Exp.	105.52	121.65
2. Ordinary income	99.30	122.77	2. Cost of water by book	4.60	4.60
3. Cost of water by book transfer	4.60	4.60	3. Unremner-tive Original works	1.50	1.50
4. Recurring Govt. Grant	4.11	4.77	4. Reserve for unforeseen	.50	.50
			5. Closing Bal..	11.95	15,84
	124.07	144.09		124.07	144.09

Capital Account

Income	Revised 1948-49	B.E. 1949-50	Exp.	P. 1948-49	B.E. 1949-50
1. Opening Bal.	5.10	(—) 7.63	1. Remunerative original works	14 5	5.18
2. Unspent bal. of loan	.16	—	2. Cap. works not from loans	.21	—
3. Sale of land	.25	0.25	3. Unremunerative original works	.62	3 12